हिन्दी साहित्य में हास्य रस

हिन्दी साहित्य में हास्य रस

(आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

नई सडक, दिल्ली।

प्रकाशक
रामकृष्ण शर्मा
हिन्दी साहित्य संसार,
नई सड़क, दिल्ली ।

मूल्य ७॥)
अथवा
"सात रुपये पचास नये पैसे"

मुद्रक
नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चाँदनी चौक,
दिल्ली-६

दो शब्द

हँसना जितना सरल है, हास्य का विश्लेषण करना उतना ही कठिन है। हिन्दी साहित्य में हास्य रस प्रारम्भ से ही उपेक्षित रहा है। मैंने इस रस को प्रतिष्ठित पद पर आसीन करने का प्रयास किया है। भारतेन्दु काल से आधुनिक काल तक के हास्य साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन कर उपलब्धियों को लिपिबद्ध किया है।

भारतेन्दु कालीन हास्य साहित्य जो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रच्छन्न था, उसे प्रकाश में लाया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी-हास्य का इतिहास एवं आलोचना का संगम है।

अन्तिम दो परिशिष्ट मूल प्रबन्ध में नहीं थे। प्रथम परिशिष्ट में उर्दू-साहित्य में हास्य की परम्पराओं का दिग्दर्शन कराया गया है तथा द्वितीय परिशिष्ट में पिछले सात वर्ष के हास्य साहित्य का लेखा-जोखा किया गया है। तदुपरान्त भी जो लेखक रह गये हों, उनसे मै क्षमा-याचना करता हूँ। हास्य काव्य का हास्य के विभिन्न प्रकारों में वर्गीकरण किया गया है इसलिए कुछ हास्य रस के कवियों की पुनरावृत्ति हो जाना स्वाभाविक था।

हिन्दी के हास्य साहित्य पर यह प्रथम शोध-प्रबन्ध है। मेरा विश्वास है कि इस प्रबन्ध पर दृष्टिपात करने से यह भावना मिट जायगी कि हिन्दी वाले हँसना नहीं जानते। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी साहित्य में भी उच्चकोटि के हास्य का अभाव नहीं है।

मुझे इस प्रबन्ध के प्रणयन में डा० सत्येन्द्र, पंडित जगन्नाथ तिवारी, डा० भगवत्स्वरूप मिश्र से समय-समय पर सुझाव मिलते रहे हैं, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। बाबू गुलाबराय, राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त एवं पं० बनारसी दास चतुर्वेदी प्रभृति ने क्रमशः भूमिका लिखकर एवं सम्मतियाँ देकर मेरा उत्साह बढ़ाया है, मैं उनका आभारी हूँ।

वृन्दावन के स्वर्गीय पं० राधाचरण गोस्वामी के पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य समिति पुस्तकालय भरतपुर, विद्यासागर पुस्तकालय एवं सेठ बी० एन० पोद्दार हा० सै० स्कूल लाइब्रेरी मथुरा, नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय, आगरा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनमें मुझे विभिन्न ग्रन्थ एवं पत्रिकाओं की फाइलें प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त हुई। इन पुस्तकालयों के अधिकारी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

आकाशवाणी के दिल्ली, प्रयाग एवं लखनऊ के अधिकारियों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने उक्त केन्द्रों पर प्रसारित हास्य रस सम्बन्धी पाण्डुलिपियाँ मेरे अध्ययन के लिए सुलभ कर दीं। इस सम्बन्ध में श्री महेन्द्र की सहायता विशेष उल्लेखनीय है।

श्री केदारनाथ चतुर्वेदी, श्री प्रयागनाथ एवं रघुनाथ प्रसाद शास्त्री ने भी प्रूफ संशोधन एवं अन्य सुझावों द्वारा सहायता की है, इन सब का भी मै आभारी हूँ।

अन्त में मैं श्री रामकृष्ण शर्मा जैसे उत्साही प्रकाशक का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इतने कम समय में लगन के साथ इस प्रबन्ध को प्रकाशित किया।

रामजीद्वारा,
मथुरा।
२५-५-५७

बरसानेलाल चतुर्वेदी

पूज्यनीया, ममतामयी, माता जी
स्व० श्री चन्दादेवी चतुर्वेदी
की
पुण्य स्मृति
को
सादर समर्पित

भूमिका

जो मनुष्य अपने जीवन में कभी नहीं हँसा उसके लिए रम्भा-शुक सम्वाद की शब्दावली में ही कहना पड़ेगा—'वृथा गतं तस्य नरस्य जीवतम् ।' वह मनुष्य नहीं वह पुच्छ-विषाणहीन द्विपद पशु है क्योंकि हँसना मनुष्य का विशेषाधिकार है। कुछ बन्दर भी हँसते हैं किन्तु सचेतन मनुष्य की हँसी कोरी किलकारी नहीं होती। वह न तो स्वास्थ्य और यौवन के प्रभाव से उत्पन्न अर्धविकसित कलिका की सी सहज मुस्कराहट होती है और न वह गुलगुलाने की सी कृत्रिम खिलखिलाहट। हास्य रस की हँसी में एक मानसिक आधार होता है जो इसके साररूप आनन्द से व्याप्त होता है।

और रसों के आधारभूत अनुभव दुखद भी हो सकते हैं किन्तु हास्य का लौकिक और साहित्यिक अनुभव आनन्दरूप ही होता है। वह रसराज शृङ्गार का सहायक और सखा ही नहीं वरन् स्वयं रसराज कहलाने की क्षमता रखता है। मनोनुकूल अनुभव होने के कारण ही उसको शृङ्गार का सहायक माना गया है। हास्य से शृङ्गार में सम्पन्नता आती है और उसकी श्रीवृद्धि होती है। वह शृङ्गार का भी शृङ्गार है।

जिस आधार पर रसवादियों के परमगुरु आचार्य विश्वनाथ के वृद्ध पितामह नारायण पादाचार्य ने अद्भुत रस की सब रसों में व्यापकता मानी है वैसा ही आधार लेकर वैसी ही उक्ति के सहारे हम हास्य रस को सब रसों में शीर्ष स्थान दे सकते हैं। आचार्य धर्मदत्त ने अपनी पुस्तक में पंडित प्रवर नारायण पादाचार्य को उद्धृत करते हुए बतलाया है कि रस का सार चमत्कार में है और चमत्कार का सार अद्भुत रस में है इसलिए अद्भुत रस की व्याप्ति सब जगह मानना चाहिए।

"रस सारश्चमत्कारः सर्वव्याप्यनुभूयते।
तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्राद्भुतो रसः॥"

इसी प्रकार हम भी कह सकते हैं कि रस का सार आनन्द में है और हास्य आनन्द से ओत-प्रोत है। इसलिए हास्य सब रसों में शीर्ष स्थान पाने का अधिकारी है। इस उक्ति को यदि स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी के तर्कबाणों से काट भी दें तो हास्य-रस का जीवन के लिए जो मूल्य है और लोकसंग्रह में जो उसकी उपादेयता है वह नहीं भुलाई जा सकती। हास्य के बिना जीवन भोग्य नहीं रह जाता। हास्य-प्रिय व्यक्तियों के लिए आपत्तियों के पहाड़ भी राई-से नगण्य हो जाते हैं। उनको घोर-गहनतम कालिमा में भी रजत रश्मियों की झलक मिल जाती है। हँसमुख व्यक्ति का व्यक्तित्व लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है। उसकी बात में फूल से झड़ते दिखाई पड़ते हैं और वह जिधर जाता है उधर प्रकाश की एक लहर दौड़ जाती है। इसकी शुभ्रता और उज्ज्वलता के ही कारण इसके देवता प्रमथेश (शिव) माने गये। वे देवताओं में श्वेत हैं और गिरराज हिमालय पर वे निवास करते हैं। वे विरूपताओं और विषमताओं के निधान होते हुए भी शिव हैं। हास्य के आलम्बन में विषमताएँ विकृतियाँ और असंगतियाँ होती हैं किन्तु वह अनिष्टकारी नहीं होता। अनिष्ट की शंका में विषमताएँ भयानकता का रुप धारण कर लेती हैं और उनके घट जाने पर वह करुण का जनक होता है। हास्य के माध्यम से जीवन की कुँठाओं,ी घृणाओं और द्वेष भावनाओं को भी निरापद विकास मिल जाता है। हास्य क इसी महत्ता को स्वीकार करते हुए संस्कृत के नाटककार नायक के जीवन की कठिनतम दुर्वह परिस्थितियों में हलकापन लाने के लिए विदूषक की सृष्टि कर देते थे। विदूषक को पेटू और ब्राह्मण ही क्यों रखते थे ? इसका भी एक रहस्य था, वह यह कि ब्राह्मण ही एक ऐसा निस्पृह और निर्द्वन्द व्यक्ति हो सकता था कि वह जीवन की विषमतम परिस्थितियों को हास्य की उपेक्षा दृष्टि से देख सके। विदूषक के प्रिय वयस्क राजा की कल्पित और वास्तविक कठिनाइयों से विषमता और असंगति उत्पन्न करने के लिए उसके पेटूपन पर अधिक जोर दिया जाता था। कहाँ विरह की विषम वेदना और रहस्योद्घाटन का दुःसह चिन्ता भार और कहाँ लड्डुओं की पुकार ? वह विषमतामयी स्थिति एक सुखद हास्य की लहर दौड़ा देती थी।

हास्य में हँसी का प्रधान्य तो अवश्य है किन्तु उसकी शास्त्रीय और वैज्ञानिक व्याख्या करना हँसी-खेल नहीं है। प्रेम की भाँति उसके सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है, "हास्य पयोनिधि में धँसिके हँसिके कढ़िबो हँसि-खेल नहीं"। चतुर्वेदी होने के नाते डाक्टर बरसानेलाल जी चतुर्वेदी अपने जन्मसिद्ध अधिकार से हास के सृष्टा तो बहुत पहले से ही थे किन्तु इस ग्रंथ द्वारा वे हास्य

के कुशल विवेचक और सिद्धान्त प्रतिपादक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने हास्य रस के सिद्धान्तारगाव में अवगाहन करने का प्रयत्न किया है और उसमें से कुछ वहुमूल्य रत्न हमारे सामने रक्खे हैं। भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुकूल जितने भेद हो सकते थे उनका उल्लेख किया गया है और कहीं कहीं योरोपीय साहित्य शास्त्र में प्रचलित भेदों से उनका तादात्म्य भी किया गया है। लेखक रूढ़िवादी नहीं है। उनका मत है कि परिस्थितियों के साथ हास्य के आलम्बन बदलते हैं और लोगों की मनोवृत्तियों में भी अन्तर आता है। उसी के साथ हास्य की परिभाषाएँ भी बदलती हैं फिर भी उन्होंने असंगति को ही हास्य का मूलाधार माना है। बर्गसाँ आदि दार्शनिकों की परिभाषाएँ भी असंगति की शब्दावली में घटाई जा सकती है। लेखक अधिकांश में योरोपीय पंडितों से प्रभावित है। इसका कारण भी है कि हमारे यहाँ जितना शृंगार का विवेचन हुआ उतना और रसों का विवेचन नहीं हुआ है। प्राचीन लोगों के इस विषय में उदासीन रहने के कारण हो सकते हैं किन्तु खेद की बात है कि नवीन आचार्यों ने भी इस विषय में बहुत कम अंशदान किया है। इस ग्रन्थ का मूल्य यही है कि वह हिन्दी पाठकों का इस सम्बन्ध में कुछ नेत्रोन्मीलन कर सकेगा और इस दिशा में पाश्चात्य पंडितों के किये हुए प्रयत्न का दिग्दर्शन करा सकेगा। पहले आचार्यों की असमर्थता का एक कारण भी था, वह यह कि उनके सामने हास्य सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के लक्ष्य ग्रन्थ उपस्थित न थे। अब ईश्वर की दया से हिन्दी के साहित्य क्षेत्र की प्रत्येक विद्या में प्रयुक्त हास्य के विभिन्न प्रकारों का, यहाँ तक कि व्यंग्य-चित्रों पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखक ने पैरोडी आदि हास्य के प्रकारों की परिभाषा ही देकर सन्तोष नही किया है वरन् उसके भेद उपभेद भी बताकर विषय को पहले से अधिक पल्लवित किया है। सामग्री यहाँ दी गई है वह स्थाली पुलाक न्याय है। हिन्दी के लक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर अंग्रेजी के सिद्धान्त ग्रन्थों का सहारा लेते हुए हास्य सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थों को तैयार करने की आवश्यकता है। यह ग्रन्थ भी उस दिशा में एक आंशिक प्रयत्न है।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से यह भ्रान्त धारणा दूर हो जाती है कि हिन्दी में हास्य व्यंग्य की कमी है। हिन्दी का निबन्ध-साहित्य हास्य की दृष्टि से पर्याप्त मात्रा में पुष्ट है। उसके विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण की आवश्यकता है। हिन्दी में स्नेह हास्य (जिसको अंग्रेजी में Humour कहते हैं) की अपेक्षाकृत कमी है। लेखकों का ध्यान उस ओर जाना चाहिए। हिन्दी में दूसरी

भाषाओं से अनुवाद अवश्य होना चाहिए। किन्तु उन अनुवादों में भारतीय मनोवृत्ति और प्रकृति एवं संस्कृति की रक्षा होना आवश्यक है। विदेशी भाषाओं के हास्य को हिन्दी में उतारना इसी प्रकार हिन्दी के हास्य का चमत्कार हिन्दी में लाना बहुत कठिन कार्य है। अंग्रेजी तथा योरोपीय भाषाओं से अनुवाद की अपेक्षा भारतीय भाषाओं के हास्य व्यंग्यात्मक ग्रन्थों का अनुवाद होना अधिक वांछनीय है। हास्य का जो शास्त्रीय विवेचन हो वह प्रान्तीय आधार पर न होकर भारतीय आधार पर हो।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी ग्रन्थों का आधार उपस्थित करने में तथा समृद्ध योरोपीय भाषाओं में हास्य विषयक सैद्धान्तिक विचारधारा का दिग्दर्शन कराने में सहायक होगा। इसलिए इस ग्रन्थ का हम हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी जगत में यह ग्रन्थ उचित आदर प्राप्त कर सकेगा।

गौमती-निवास,
दिल्ली दरवाजा,
आगरा।
२५-५-५७

गुलाबराय

विषय-सूची

परिशिष्ट—२

अनुक्रमणिका

●

: १ :

हास्य की महत्ता

हँसना मनुष्य का स्वाभाविक लक्षण है। भोजन में विविध भाँति के व्यंजनों का समावेश होने पर भी यदि उसमें लवण का अभाव हो तो सारा भोजन लावण्यहीन, फीका बन जाता है उसी प्रकार जीवन में समस्त वैभवों के होते हुए भी यदि हँसी का अभाव हो तो जीवन भार-स्वरूप बन जाता है। जीवन के आस्वादन के लिए परिमित हँसी आवश्यक है। हँसी जीवन का विटामिन है। इसके बिना जीवन-रस की परिपुष्टि नहीं। यदि मनुष्य और कुछ न सीख कर केवल हँसना सीख ले—दूसरों को देख कर हँसना नहीं, अपने आप पर हँसना—तो वह सहज ही संसार और घर-गृहस्थी के भार तथा दुःख-झंझटों को झेल सकता है।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक 'थेकरे' ने हास्यप्रिय लेखक की उपयोगिता के विषय में लिखा है—"**हास्यप्रिय लेखक, आप में प्रीति, अनुकम्पा एवं कृपा के भावों को जागृत कर उनको उचित और नियंत्रित्त करता है। असत्य दम्भ तथा कृत्रिमता के प्रति घृणा और कमजोरी, दरिद्रों, दलितों और दुखी पुरुषों के कोमल भावों के उदय कराने में सहायक होता है। हास्यप्रिय साहित्य सेवी निश्चय रूप से ही उदारशील होते हैं। वह तुरन्त ही सुख दुःख से प्रभावित हो जाते हैं। वह अपने पार्श्ववर्ती लोगों के स्वभाव को भली भांति समझने लगते हैं एवं उनके हास्य, प्रेम, विनोद और अश्रुओं में सहानुभूति प्रगट कर सकते हैं। सबसे उत्तम हास्य वही है जो कोमलता और कृपा के भावों से भरा हो।**"*

---

* The humorous writer professes to awaken and direct your love, your pity, your kindness, your scorn for untruth, pretension, imposture for linderness for the weak, the poor, the oppressed, the unhappy. A literary man of the humorous turn is pretty sure to be of philanthropic nature, to

हास्य के विरोधी बहुधा यह तर्क उपस्थित करते हैं कि हास्य की उत्पत्ति असम्बद्धता के कारण होती है और असम्बद्धता तिरस्कार करने योग्य दोष है इसलिए विनोद को उत्तेजना देना मानों बुद्धि-विकलता को उत्तेजना देना है। श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर कृत मराठी के 'सुभाषित आणि विनोद' के हिन्दी के रूपान्तर में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है—"**असंबद्धता-शब्द में साधारणतः थोड़ी-सी गौणता अवश्य मानी जाती है परन्तु सब प्रकार के अपवादास्पद विकारों को मन में आने से रोक कर केवल मन की प्रसन्नता से असंबद्धता या संवादिता ढूंढ़ निकालना बुद्धि-शक्ति के लिए जितना शोभन है, उचित स्थानों पर उपयुक्त असंबद्धता असंवादिता ढूंढ़ निकालना भी बुद्धि-शक्ति के लिए उतना ही शोभास्पद है।**" इस कथन के औचित्य पर किसी को सन्देह के लिए स्थान नहीं है। उदाहरण-स्वरूप स्याही स्वच्छ नहीं होती पर जिस प्रकार लिखने के लिए उसका उपयोग करने में कोई दोष या हानि नहीं है उसी असंबद्धता के दूषित होने पर भी उसका व्यवहार दोषास्पद नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि असंबद्धता के गुणों और दोषों का विचार केवल योजना के हेतु अथवा योजना से होने वाले परिणाम पर ध्यान रख कर किया जाना चाहिए।

हास्य और विनोद का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है—(१) सामाजिक दृष्टि से और (२) व्यक्तिगत दृष्टि से।

सामाजिक दृष्टि से

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के मन से ही समाज का मन बनता है। जिस प्रकार व्यक्ति की बुद्धि और नैतिक कल्पनाओं की वृद्धि होती है उसी प्रकार सारे समाज की बुद्धि और नैतिक कल्पनाओं की वृद्धि होती है। जिन बातों की सहायता से इन दोनों विषयों में समाज अधिक सुशिक्षित हो सकता हो वही बातें समाज के लिये लाभदायक होंगी। प्रत्येक व्यक्ति के मन का झुकाव किसी विशिष्ट बात की ओर होता है जिसके फलस्वरूप उसकी शिक्षा एकांकी होती है। समाज का निर्माण विभिन्न रुचि वाले मनुष्यों से

---

have a great sensibility to be easily moved to pain or pleasure, keenly to appreciate the varieties of temper of people round about him and sympathise in their laughter, love, amusement and tears. The best humour is that which is flavoured throughout with liveliness and kindness. —(**Humour and Humourists—Thackeray**).

मिल कर होता है इसलिए समाज की शिक्षा अनेकांगी होती है। समाज में प्राय: सभी अंगों की वृद्धि होने की आवश्यकता हुआ करती है और इसीलिए उसे अनेक अंगों की शिक्षा की भी आवश्यकता होती है। [यदि कोई मनुष्य कोई बढ़िया सुभाषित अकेला ही पढ़ अथवा सुन ले तो उस से होने वाला लाभ बहुत ही परिमित होता है पर यदि वही सुभाषित दस आदमी साथ मिल कर पढ़ें या सुनें तो उसका लाभ अपेक्षाकृत कहीं अधिक होगा। एक व्यक्ति को तो उससे केवल शिक्षा मिलती है पर यदि दस आदमी साथ मिल कर उस सुभाषित का आनन्द लें तो उन्हें अलग-अलग शिक्षा तो मिलेगी ही, साथ में उनका मेल होगा और उनमें संघ-शक्ति उत्पन्न होगी। हास्यविनोद-शीलता एक सामाजिक गुण है और उसका प्रचार एक दूसरे के सम्पर्क के कारण बढ़ता है। सामाजिक हास्य विनोद से सामाजिक सद्‌गुण और समाज-हित वाली दृष्टि की वृद्धि होती है।]

समाज सुधार का माध्यम

हास्य द्वारा समाज-सुधार का कार्य बहुत दिनों से होता चला आया है। असामाजिक व्यक्ति, समाज की प्रचलित कुरीतियों एवं अन्य विकृतियां सदैव से हास्य रस के आलम्बन बनते आये हैं। वीरगाथा काल में कायर, भक्ति काल में पाखण्डी, रीतिकाल में सूम तथा आधुनिक काल में नेता आदि हास्य के आलम्बन बनाये गए हैं। [फ्रेंच दार्शनिक वर्गसाँ ने लिखा है—**"हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें सामाजिकता की झलक हो। भय, जो यह उत्पन्न करता है, इसके सनकीपन पर रोक लगती है। यह मनुष्य को सदैव अपने पारस्परिक आदान-प्रदान के उन निम्नस्तरीय कार्यों के प्रति सचेत रखता है। सक्षेप में ये यांत्रिक क्रिया के फल स्वरूप किए जाने वाले व्यवहार को मृदुल बनाता है"**।[1]

---

1. Laughter must be something of this kind, a sort of social gesture. By the fear which it inspires, it restrains eccentricity, keeps constantly awake and in mutual contact certain activities of a secondary order which might retire into their shell and to go to sleep, and, in short, softens down whatever the surface of the social body may retain of mechanical inelasticity.]

—(**Laughter—Page 20. By HENRI BERGSON**)

मनुष्य हास्यास्पद बनने से बचता है और जहाँ तक होता है जानकर कोई ऐसा कार्य नहीं करता जिससे कि वह हास्यास्पद बन जाय। व्यंग्य के कोड़े से समाज की बड़ी-बड़ी विकृतियां दूर हो जाती हैं। भारतेन्दु काल में अधिकतर लेखकों ने अंग्रेजी पर यथेष्ट व्यंग्य बाण छोड़े हैं। दमन के उस युग में वे हास्य एवं व्यंग्य माध्यम से ही अपने दिल के फफोले फोड़ सकते थे इसी लिए उस समय के व्यंग्य में तिक्तता की मात्रा अधिक पाई जाती है। कबीर ने अपने समय से पाखंडियों तथा धर्मान्धों पर व्यंग्य बाण छोड़े हैं। हास्य के प्रसिद्ध लेखक जी० पी० श्रीवास्तव ने हास्य की उपयोगिता पर लिखा है—**"तो बुराई रूपी पापों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा गंगाजल नहीं है। यह वह हथियार है जो बड़े-बड़ों के मिजाज चुटकियों में ठीक कर देता है। यह कोड़ा है जो मनुष्यों को सीधी राह से बहकने नहीं देता। मनुष्य ही नहीं, धर्म और समाज का भी सुधारने वाला है, तो यही है...। स्पेन के सर वेंटीज़ ने डानक्यूजोर की रचना करके योरप भर के खुदाई फौजदारों की हस्ती मिटा दी। इंगलैंड के शेक्शपीयर ने अपने शाइलाक द्वारा सूदखोरों की हुलिया बिगाड़ दी। फ्राँस के मौलियर ने अपने पैके और मरफूरिए नामक चरित्रों से तत्वज्ञानियों की खिल्ली उड़वा कर अरिस्टाटिल से मतभेद करने वालों को फाँसी के तख्ते पर से उतार लिया"।**[1] वास्तव में अनीति ढूंढ़ निकालने का काम विनोद की सहायता से जितनी अच्छी तरह हो सकता है उतनी अच्छी तरह और किसी प्रकार नहीं। यदि हम केवल अप्रसन्न होकर अनीति की निन्दा करें तो बहुत सम्भव है कि वह विगड़ैल घोड़े की तरह उलटे और अनिष्ट कर डाले। विनोद की मुलायम सलाई से अनीति की दोषयुक्त दृष्टि में अंजन् लगाया जा सकता है और वह दोष धीरे-धीरे दूर किया जा सकता है। इस तत्व को आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व यूनानी प्रहसनकार अरिस्तेफेनीस ने समझा था। उसके प्रहसनों में बड़े-बड़े आदमियों, सामाजिक रीति-नीतियों और राजकीय विषयों पर टीकाएँ और टिप्पणियां होती थीं। कहते हैं, सायराक्यूज़ के अत्याचारी राजा 'दि आनीशियस' ने एक बार तत्ववेत्ता प्लेटो से एथेन्स की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया था। इस पर प्लेटो ने उसके पास केवल अरिस्तेफेनीस के "मेघ-मण्डल" नामक प्रहसन की एक प्रति भेज दी थी। इस प्रकार आज से दो ढाई हजार वर्ष पहले प्रहसन विषय-गत गुण-दोष पर टीका करने के मुख्य साधन हो गये थे। पाश्चात्य साहित्य के हास्यरस लेखकों की कृतियों का अध्ययन कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने यहाँ इस प्रकार के साहित्य के

१. हास्य-रस—जी० पी० श्रीवास्तव, पृष्ठ १२

अभाव का अनुभव करते हुए लिखा है—"**समाज के चलते जीवन के किसी विकृत पक्ष को, या किसी वर्ग के व्यक्तियों की बेढंगी विशेषताओं को हँसने हँसाने योग्य बनाकर सामने लाना बहुत कम दिखाई पड़ रहा है।**"[१] वास्तव में समाज के मैल के लिए हास्य साबुन का कार्य करता रहा है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

यदि संसार के सब लोगों को यह बात अच्छी तरह से मालूम हो जाय कि हास्य का हमारे स्वास्थ्य पर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है तो फिर आधे से अधिक डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों आदि के लिए मक्खियाँ मारने के सिवा और कोई काम ही न रह जाय। हास्य वास्तव में प्रकृति की सबसे बड़ी पुष्टई है। हास्य से बढ़कर बलवर्द्धक और उत्साहवर्द्धक और कोई चीज हो ही नहीं सकती। हास्य से ही हमारे शरीर में नवीन जीवन और नवीन बल का संचार होता है और हमारे आरोग्य की वृद्धि होती है। श्री केलकर के अनुसार—"**जिस समय मनुष्य नहीं हँसता, उस समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया सीधी और शान्तरीति से होती हैं और हँसने के समय उसमें एक दम व्यत्यय हो जाता है। परन्तु उस व्यत्यय का परिणाम श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियों और शरीर के रक्त प्रवाह पर अच्छा ही होता है।**"[२] हास्य के कारण वक्ष-कपाट पर एक-एक करके कई आघात होते हैं। इनमें से प्रत्येक आघात के समय रक्त-वाहिनी नलियों में का रक्त हृदय तक पहुँचने से रुकता है। यही कारण है कि बहुत देर तक हँसने से मनुष्य का चेहरा किसी अंश में तमतमा उठता है। पर हास्य-क्रिया के बीच-बीच में जल्दी-जल्दी जो श्वासोच्छ्वास होता है, उसकी सहायता से फेफड़े में हवा पहुँचती है जो उसे फुला देती है। इसका परिणाम यह होता है कि रक्त वाहिनी नलियों में का रक्त हृदय की ओर बढ़ता है। हृदय की ओर जोर से रक्त जाने और रुकने की क्रियाओं के बराबर एक-एक करके होते रहने से रक्त में प्राण वायु का अधिक-संचार होता है और उसके प्रवाह की गति भी बढ़ जाती है।

इसके अतिरिक्त हास्य का एक अप्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ता है। जब मनुष्य हँसता है तो उसके मस्तिष्क पर रक्त का दबाव कम पड़ता है। बालक के रूठ जाने पर लोग मुंह चिढ़ा कर उसकी नकल उतार कर अथवा और किसी प्रकार से उसे हँसाते हैं। इसका कारण यही है कि हँसी आने के साथ

---

१. हि० सा० का इतिहास—(संस्करण सं० २००२) पृष्ठ ४७४

२. हास्यरस-मूल श्री केलकर—अनुवाद श्री रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ १४७

ही दिमाग पर खून का दबाव कम हो जाता है और मनोवृत्ति बदल जाती है। अंग्रेजी में एक कहावत है—"**Laugh and grow fat**" (हँसो और-मोटे हो)।

स्पार्टा के भोजनालय में वहाँ के सुप्रसिद्ध नेता लाइकरगस ने हास्य देवता की मूर्ति स्थापित कर रक्खी थी, क्योंकि उसका मत था कि हास्य में हमारी पाचन शक्ति को बढ़ाने का जितना अधिक गुण है उतना और किसी पदार्थ में नहीं है।

लिंकन सदा अपने टेबुल पर हास्य विनोद की एक न एक पुस्तक रखा करता था। जब कभी वह काम करते-करते कुछ थक जाता था, कुछ खिन्न हो जाता था अथवा उसे जी धँसता हुआ जान पड़ता था, तब वह उसी पुस्तक को उठाकर उसके कुछ प्रकरण या पृष्ठ पढ़ जाता था। इससे उसकी सारी शिथिलता और सारा खेद दूर हो जाता था और वह बड़े आनन्द से फिर अपने काम में लग जाता था। मन को स्वाभाविक और सरल स्थिति में लाने और उसका स्थिति-स्थापकता वाला गुण नष्ट होने से बचाने के लिए ही ईश्वर ने हास्य एवं विनोद की सृष्टि की है।

आत्म-स्वभाव का निरीक्षण

दूसरों पर हँसना जितना आसान है उतना अपने पर नहीं। हास्य एक प्रकार का प्रकाश उत्पन्न करता है जिससे बुराइयों रूपी अन्धकार नष्ट होता है। दूसरों पर हँसने वाला मनुष्य उस उजाले से अपनी बुराइयों को भी देख सकता है जिन असंगतियों पर हम दूसरों पर हँसते हैं यदि आत्मनिरीक्षण करके अपनी असंगतियों पर भी हँसे तो हमारा कल्याण हो सकता है। हम प्रायः लोगों को यह कहते सुनते हैं, "हमें आप ही आप हँसी आती है" उसे अपने ऊपर भी कभी न कभी हँसी आवेगी ही।

कष्ट सहने की क्षमता

जीवन-पथ में प्रायः अनेक ऐसे ऊबड़-खाबड़ स्थान मिलते हैं जिनमें लोगों को ठोकरें, धक्के और झटके लगते हैं। जो लोग हँसना और प्रसन्न रहना नहीं जानते, वे उन ठोकरों और झटकों आदि से बहुत कष्ट पाते हैं, परन्तु सदा प्रसन्न रहने वाले लोगों के लिए ऐसे अवसर पर आनन्द और हास्य मानों मुलायम गद्दों का काम देते हैं और वे उन ठोकरों और धक्कों आदि का कुछ भी अनुभव नहीं करते। ऐसे लोगों की जीवन-यात्रा बहुत ही सुगम और सुख-

पूर्ण हुआ करती है। जब हम किसी अप्रिय घटना आदि के कारण अस्वाभाविक परिस्थिति में पहुँच जाते हैं, तब हास्य और आनन्द हमें फिर तुरन्त अपनी स्वाभाविक परिस्थिति में ले आता है। जीवन में जितने क्षत होते हैं उन सबके लिए हास्य बढ़िया मरहम का काम देता है। कहीं बाहर जाने के लिए जल्दी-जल्दी स्टेशन पर पहुँचे और पहुँचते ही गाड़ी छूट गई, ऐसा प्रसंग सभी लोगों को कभी न कभी आता ही है। अब गाड़ी छूट जाने के कारण खिन्न होकर चार आदमियों के समक्ष मुँह लटकाकर बैठने वाले एक मुहर्रिमी को लीजिये और दूसरे एक ऐसे आदमी को लीजिये जो गाड़ी छूटती हुई देख कर तनिक भी दुःखी नहीं होता और हँसता कहता है—"**वाह, हम तो दौड़-धूप करके इतनी दूर से आपके वास्ते यहाँ तक चलकर आये और आपने हमारे लिए एक मिनट की भी मुरौवत न की। यह कहाँ की भलमनसाहत है।**" अब इन दोनों मनुष्यों की तुलना कीजिए और बतलाइए कि दोनों के समान कठिनाई और अड़चन का सामना करने पर भी इनमें से सुखी कौन है और दुःखी कौन? घोड़ा-गाड़ी से उतरते समय अपनी धोती पावदान में फँस जाने और फलतः जल्दी उतर सकने के कारण गाड़ीवान को व्यर्थ गालियाँ देने वाले और क्रुद्ध होकर अकाण्ड ताण्डव करने वाले लोग जिस प्रकार इस संसार में कम नहीं हैं उसी प्रकार ऐसे लोग भी कम नहीं हैं जो ऐसे अवसर पर एकाध विनोद की बात कह कर अड़चन का वह क्षण हँस कर बिता देते हैं। अन्धेरी रात में रास्ते में ठोकर खाकर गिर पड़ने का कारण नगर-पालिका को गालियाँ देकर अपने आपको दुःखी भी किया जा सकता है और हँसते हुए यह कह कर अपना रास्ता भी लिया जा सकता है—"**आजकल हमारे यहाँ की नगरपालिका ने रोशनी का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया है कि उसकी लालटेन देखने के लिए घर से एक लालटेन साथ लाने की आवश्यकता होती है।**" संसार में छोटी-मोटी कठिनाइयों या संकटों का जितना परिहार विनोद से होता है उतना क्रोध, दुःख आदि से नहीं होता। सुकरात की कर्कशा स्त्री ने जब पहले उसे गालियाँ दीं और फिर उसके सिर पर गरम पानी डाल दिया तो उसने कह दिया—"**बिजली चमकने और बादल गरजने के बाद पानी बरसता ही है।**" हम सब लोग यदि इतने विनोदशील न हों फिर भी सब लोग सांसारिक कठिनाइयों और संकटों के बहुत से अवसर इसी प्रकार हँसकर टाल सकते हैं। अनेक प्रकार की परिस्थितियों और विशेषतः कठिन परिस्थितियों का सामना मनुष्य मात्र के लिए विषम होता है क्योंकि उन में एक ओर सर्वशक्तिमान परिस्थिति होती है और दूसरी ओर अल्प शक्तिमान मनुष्य। और जब तक हम जीते रहेंगे तब तक

यह विषम समस्या बराबर बनी रहेगी। जब यह भली भाँति समझ में आ जायेगी तब मनुष्य को विश्वास हो जायगा कि जिस अवसर पर और कोई शक्ति काम नहीं कर सकती, उस अवसर पर विनोद रूपी मायावी शक्ति की आराधना और सहायता से ही हम उस विषम द्वन्द्व में विजय प्राप्त कर सकते हैं।

साधारणत: प्रत्येक बात का परिणाम दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो प्रत्यक्ष होता है और पदार्थ सृष्टि पर पड़ता है और दूसरा वह जो प्रत्यक्ष होता है और अपने मन पर पड़ता है। यह निर्विवाद है कि इनमें विनोद के द्वारा प्रत्यक्ष परिणाम नष्ट नहीं हो सकता परन्तु मन पर पड़ने वाला प्रभाव विनोद की सहायता से बहुत कुछ कम किया जा सकता है। इस विषय में प्रसिद्ध विद्वान् 'सली' का मत है।[1]

स्वभाव में कोमलता

प्रसिद्ध तत्ववेत्ता कारलाइल ने एक स्थान पर कहा है कि[2] जो मनुष्य अपने जीवन में एक बार भी खिलखिला कर और खुले मन से हँसा हो, वह कदापि अत्यन्त बुरा नहीं हो सकता। विनोद को हम चाहे सद्गुण कहें चाहे न कहें पर इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि अनेक प्रकार के दूसरे सद्गुणों के होते हुए भी जब तक मनुष्य में विनोद-प्रियता न हो तब तक वह पूर्ण सद्गुणी

---

1. In much of this alleviating service of humours, the laugh which liberates us from the thraldom of the monetary, is a laugh at ourselves. Indeed, one may safely say that the benefits here alluded to presuppose a habit of reflective self-quizzing. The blessed relief comes from the discernment of the preposterous in the foregoing of our claims, of a folly in yielding to the currents of sentiment which diffuse their mist over the realm of reality.

The coming of the smile announces a shifting of the point of view, the mal-adjustment which a moment ago seemed to be wholly on the side of the world showing itself now to be on our side as well.—(**Sully P. 329**)

2. No man who has once wholly and heartily laughed, can be altogether irreclaimably bad. In cheerful souls, there is no evil.—(**Carlyle**)

नहीं कहा जा सकता। जब तक सद्गुणों और सुस्वभाव का जोड़ न हो तब तक काम ही नहीं चल सकता। सुस्वभाव की सबसे अधिक उत्पत्ति विनोद शीलता के कारण होती है। विनोदी मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणों से अकारण दूसरों का चित्त नहीं दुखाता। इस प्रकार वह स्वयं भी प्रसन्न रहता है और दूसरों की प्रसन्नता का कारण भी होता है। शुद्धभाव के विनोद से स्नेहियों का स्नेह और कुटुम्ब के लोगों का पारस्परिक प्रेम अधिक दृढ़ होता है। परस्पर केवल आदरपूर्वक व्यवहार करने वाले स्नेहियों का स्नेह विनोद-युक्त आदर से व्यवहार करने वाले स्नेहियों के स्नेह की अपेक्षा कम रम्य, कम सुखकर और कम स्थायी होता है। अंग्रेजी कवि 'टैनीसन' ने कहा है कि गृहस्थी में अच्छा हास्य सूर्योदय के समान होता है। विद्यालयों के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि शिक्षक और छात्र परस्पर विनोद करें तो यह न समझना चाहिए कि गुरू-शिष्य सम्बन्ध को छुट्टी मिल गई। यही नहीं, बल्कि जो शिक्षक विद्वान होने के अतिरिक्त विनोदप्रिय भी होता है, शिष्यों के लिए वही सबसे अधिक प्रिय और मान्य होता है।

उपसंहार

अन्त में यह प्रश्न रह जाता है कि क्या हास्य दोषरहित है? ऐसी बात नहीं है। 'अतिसर्वत्र वर्जयेत' वाली उक्ति हास्य एवं विनोद पर भी चरितार्थ होती है। हर समय हँसी-दिल्लगी करने से स्वभाव में एक-देशीयता आती है और एक-देशीयता का आना दोष है। यह बात निर्विवाद है कि मनुष्य में गम्भीरता की बहुत बड़ी आवश्यकता है। यदि विनोद अधिक किया जाय तो इन दोनों गुणों की बहुत कुछ चोट पहुँचने की सम्भावना है। जिन लोगों को हम बहुत विनोदप्रिय समझते हैं उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें संसार की सभी बातें तुच्छ जान पड़ती हैं। वे सब बातों की दिल्लगी ही उड़ाया करते हैं। उन्हें किसी बात में कोई सार नहीं जान पड़ता। ऐसे लोगों को संसार में कोई चीज़ पवित्र अथवा वन्दनीय नहीं जान पड़ती। जिस प्रकार किसी दरबार में मसखरे के हँसी-ठट्ठा करते रहने पर भी राजा साहब अपनी गद्दी पर और दरबारी लोग अदब-कायदे से अपनी-अपनी जगह पर बैठे रहते हैं, उसी प्रकार विनोद के होते हुए भी मनुष्य के मानसिक दरबार में श्रेष्ठता, गम्भीरता, विचारशीलता अथवा सत्य-प्रियता में से किसी एक न एक सद्गुण का मनः प्रवृत्ति पर पूर्ण रूप से अधिकार रहना चाहिए। विनोद चाहे कितना ही प्रिय और इष्ट क्यों न हो तो भी उसके मूल्य या महत्व की एक निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिए। यदि

सद्‌गुणों के साथ विनोद का मेल होगा तो मानों दूध में मिसरी भी पड़ जायगी अथवा उनकी जोड़ी में वैसी ही उज्ज्वलता और दैदीप्यता आ जायगी, जैसी स्फटिक पर सूर्य की किरणें पड़ने से आती है।

बुद्धिमान, राजनैतिक, तत्ववेत्ता, शूर-वीर, सहृदय, विद्वान, व्यवहार-चतुर, पण्डित, सद्-असद्-विवेकी अथवा ऐसे और लोगों के लिए तो हमारे हृदय में आदर होता ही है पर यदि उन लोगों में से प्रत्येक में सौभाग्य से विनोद-प्रियता भी हो तो हमारी आदर-बुद्धि में एक प्रकार के मधुर प्रेम का भी छींटा पड़ जाता है। केवल आदर-बुद्धि के कारण, जो लोग हमें पराये या दूरतः सेव्य जान पड़ते हैं, वे ही उक्त प्रेम उत्पन्न होने के कारण हमारे साथ एक-दिल हो जाते हैं और उनके सद्‌गुण आकर हममें संक्रमित होते हैं।

: २ :

हास्य-रस का शास्त्रीय विवेचन

रस की कल्पना संस्कृत में हुई है। अंग्रेज़ी साहित्य में रस का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता। वस्तुतः परिपुष्ट भाव का नाम ही रस है। अंग्रेज़ी में भाव को 'इमोशन' कहते हैं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में ही इसका प्रथम बार नियमबद्ध उल्लेख हुआ है। आचार्य भरत का कहना है कि 'द्रुहिण' नामक किसी आचार्य द्वारा इसका आविष्कार हुआ। वे लिखते हैं—**"अष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।"** इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अभिनय देखने से दर्शकों में जो तन्मयता आती है, रस की कल्पना उसी के आधार पर हुई प्रतीत होती है।

अग्नि-पुराण के अनुसार मुख्य रस चार माने जाते हैं--शृङ्गार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। इन चारों के आधार से शेष रसों की उत्पत्ति होती है। शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुणा, वीर से अद्‌भुत् और वीभत्स से भयानक का आविर्भाव हुआ।[१] भरतमुनि ने भी पहले चार रस की उत्पत्ति मानी है—शृङ्गार, रौद्र, वीर और वीभत्स ;[२] तथा उन्होंने भी शृङ्गार से हास्य की उत्पत्ति मानी है।[3] भरतमुनि के अनुसार—**"शृङ्गार रस की अनुकृति हास्य है।"** अनुकृति का अर्थ है अनुकरण अथवा नकल करना। नकल हँसी की जड़ है। किसी की बातचीत, चाल-ढाल, वेष-भूषा आदि की नकल जब विनोद के लिए की जाती है तब हँसी का प्रादुर्भाव होता है। यह हास्य और व्यापक होता है, इसी कारण बाद में यह भी रस माना जाने लगा। डाक्टर

---

१. "शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रातु करुणोरसः।
वाराच्चाद् मुतनिष्पत्तिः स्याद् वीभत्साद् भयानकः" ॥ **—(अग्निपुराण)**

२. "तेषामुत्पत्ति हेतवश्चत्वारो रसः शृङ्गारो रौद्रौवीरो वीभत्सइति"।
—(नाट्य शास्त्र)

३. शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो।

रामकुमार वर्मा ने भरत के उक्त सूत्र में कि हास्य शृङ्गार से प्रेरणा पाता है, अपना संशोधन रक्खा है। हास्य केवल शृङ्गार से प्रेरणा नहीं पाता, जीवन की अनेक परिस्थितियों से बल ग्रहण करता है। इस विषय पर आगे निवेदन किया गया है।

दशरूपककार ने सर्वप्रथम शान्तरस को स्थान देकर इस विकास को जन्म दिया था। तदुपरान्त हमें साहित्य-दर्पण में वात्सल्य रस पर पर्याप्त विवेचन मिल जाता है। इस प्रकार रसों की संख्या १० हो गई है। नवीन रसों की कल्पना एवं उद्‌भावना बराबर होती रही है और अब भी हो रही है। हास्य रस के उद्रेक के सम्बन्ध में 'धनंजय' ने कहा है—

"विकृता कृति वाग्विशेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात् परिपोषोस्य हास्याभि प्रकृतिः स्मृतः॥"

—(दशरूपक, ४ प्रकाश, पृष्ठ ७५)

इसके अनुसार हास्य का कारण अपनी अथवा दूसरे की विचित्र वेष-भूषा, चेष्टा शब्दावली तथा कार्य-कलाप है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी हास्य के उद्रेक के सम्बन्ध में कहा है—

"विकृताकार वाग्वेषचेष्टादेः कुहकां वदेत्।
हास्यो हास स्थायिभावःश्वेतः प्रमथ देवतः॥"

—(साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, पृष्ठ २१४)

उक्त लक्षण के अनुसार वाणी, चेष्टा तथा आकार आदि की विकृति से हास्य रस का आविर्भाव होता है। धनंजय एवं विश्वनाथ के लक्षणों में केवल अन्तर यह है—धनंजय के लक्षण में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वेष-भूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा कार्य-कलाप में विचित्रता अपनी भी हो सकती है और अन्य की भी। यथा—

"रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणापितम्।
वागादिवै कृताच्चेतो विकसो हास उच्यते॥"

—(साहित्यदर्पण)

उपर्युक्त श्लोक में भी वाणी आदि के विकार पर बल दिया गया है और उसी के कारण हास बताया गया है।

स्थायी भाव

जो भाव चिरकाल तक चित्त में रहता है, एवं जो काव्य, नाटकादि में आद्योपान्त उपस्थित रहता है, प्रभावशीलता और प्रधानता में औरों से उत्कर्ष रखता है, साथ ही जिसमें विभावादि से सम्बन्धित होकर रस रूप में परिणित होने की शक्ति रहती है, स्थायी भाव कहा जाता है। भरत मुनि ने स्थायी भाव की परिभाषा अपने नाट्यशास्त्र में इस प्रकार की है—

"यथा नाराणां नृपतिः शिष्यनां च यथा गुरुः।
एवंहि सर्वभावानां भावः स्थाय महानिह ॥"

—(नाट्य शास्त्र)

अर्थात् जैसे मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु, वैसे ही सव भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है।

हास्यरस का स्थायी भाव हास माना है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार- **"वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हास इष्यते"** अर्थात् वाणी, वेष, भूषणादि की विपरीतता से जो चित्र का विकास होता है, वह हास कहलाता है।

देव जी के 'शब्द-रसायन' में भी स्थायी भावों का वर्णन करने वाला एक दोहा है, जिसमें हास्यरस को स्थायी भाव माना है—

"रति हाँसी अरु सोक रिस, अरु उछाह भय जानु।
निन्दा विसमय शान्त ये, नव थिति भाव बखानु ॥"

हास्य के विभाव

विभाव, कारण, निमित्त और हेतु पर्याय हैं—

"विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः।"

—(नाट्य शास्त्र)

हास्य की उत्पत्ति के कारण वस्तुमात्र में देखी हुई विकृति अथवा विपरीतिता, व्यंग्य दर्शन, परचेष्टा अनुकरण, असंबद्ध प्रलाप आदि हैं। साहित्य-दर्पणकार ने लिखा है--

"विकृता कार वाक्चेष्टं ममालोक्य हसेज्जनः।
तदनालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥"

—(साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, पृष्ठ १५१)

जिसकी विकृति-आकृति, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि को देख कर लोग हँसे वह यहां आलम्बन और उसकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं।

हास्य-रस के अनुभाव

जो स्थायी भावों का अनुभव कराने में समर्थ हों, अनुभाव कहलाते हैं—

"अनुभावयन्ति इति अनुभावा।"

अमरकोषकार ने "अनुभाव" शब्द का अर्थ किया है—**"अनुभावो भाव बोधकः"** अनुभाव वास्तव में शारीरिक चेष्टाएँ हैं। इन्ही के द्वारा आदि स्थायी-भाव काव्य में शब्दों द्वारा और नाटक में आश्रय की चेष्टाओं द्वारा प्रकट होते हैं। अनुभाव रस-उत्पन्न हो जाने की सूचना भी देते हैं और रस की पुष्टि भी करते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने हास्य रस के अनुभाव इस प्रकार बताये हैं—

"अनुभावोऽक्षिसंकोच वदन स्मेरतादयः।"

—(साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, पृष्ठ १५८)

नयनों का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना इसके अनु-भाव हैं।

हास्य-रस के संचारी भाव

साहित्यदर्पणकार ने संचारीभावों की व्याख्या इस प्रकार की है:—

"विशेषादभिमुख्येन चरणाद्वयभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदः॥"

जो विशेषतया अनियमित रूप से चलते हैं वे व्यभिचारी कहलाते हैं। ये स्थायी भाव में समुद्र की लहरों की भांति आविर्भूत तथा तिरोभूत होकर अनुकूलता से व्याप्त रहते हैं। संचारी भावों को अन्तर-संचारी वा मनः संचारी भी कहा है। इन्हीं को व्यभिचारी भाव भी कहा है क्योंकि एक ही भाव भिन्न-भिन्न रसों के साथ पाया जाता है। इनकी संख्या कुल मिलाकर ३३ मानी गई है। महाकवि देव ने एक चौंतीसवाँ 'छल' संचारी भाव भी माना है। नाट्य शास्त्र में भी इसका उल्लेख है। अर्थ-गोपन, आलस्य, निन्द्रा, तन्द्रा स्वप्न आदि हास्य के व्यभिचारी भाव माने गये हैं। साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—

"निद्रालस्या वहित्थाद्या अत्र स्तुर्व्युभिचारिणः।"

अर्थात् निद्रा, आलस्य एवं अवहित्था आदि इसके संचारी होते हैं।

आचार्य शुक्ल जी ने आलस्य, निद्रा आदि को त्याज्य ठहरा दिया है। विवादास्पद प्रश्न यह है कि हास्य के आलम्बन में निद्रा, आलस्य आदि का होना तो समझ में आता है किन्तु आश्रय में आलस्य, निद्रा आदि की संचारी स्थिति कैसे होगी ? वास्तव में यह शंका निर्मूल है। एक पण्डित जी की नीरस कथा सुनते-सुनते श्रोता सो जाते हैं तो पण्डित जी आलम्बन के रूप में होते ही हैं। साथ में आश्रय के रूप में श्रोतागण भी निद्रा संचारी के शिकार हो ही जाते हैं। इसी प्रकार आलस्य संचारी की स्थिति है। किसी धूर्त ज्योतिषी के बहकाने में आकर कोई मनुष्य मकान में धन निकलने की आशा से खोदता चला जाता है और निराशा होने से बन्द कर देता है, श्लथ होकर बैठ जाता है तथा पण्डित जी के लाख प्रोत्साहन देने तथा पड़ौसियों के समझाने तथा मन्त्रोच्चारण पर भी उसे सिवाय जंभाई के कुछ बात नहीं सूझती। उसका आलस्य ज्योतिषी के झूठे वायदों के विरुद्ध प्रतिक्रिया है। यहाँ पर पण्डित जी भी हास्य के आलम्बन थे तथा आश्रय के रूप में यह मनुष्य भी आलस्य का शिकार हो जाता है। अवहित्था संचारी की भी यही दशा है। एक व्यक्ति का परिचित उसके पुत्र की मूर्खतापूर्ण बातों की ओर आकर्षित होता है। पिता अपनी लज्जा छिपाने के हेतु परिचित से उसके कुशल समाचार पूछने लगता है। यहाँ पुत्र के प्रति पिता की अवहित्था पुत्र के साथ पिता को भी हास्यास्पद बनायेगी।

हास्य के संचारियों का व्यवहार तथा प्रभाव की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण अधिक समीचीन प्रतीत होता है—

(१) **स्नेहन**—जहां करुणा संचारी होकर आलम्बन के प्रति हास्य को सरल तथा स्वीकार्य बनाती है।

(२) **उपहासक**—जहाँ संचारी आकर हास्य आलम्बन को तिरस्कार्य भी बना देता है।

(३) **विभावसंक्रमिति**—जहां संचारी आश्रय को भी स्वतन्त्र आलंबन बना देता है। लाड प्यार से बिगड़ा लड़का बाप की दाढ़ी मूंछ उखाड़ता है। बाप का ऐसे बेटे पर प्यार आना उसे (बाप को) आश्रय से आलम्बन बना देता है।

(४) **परिहासक**—खरस्वर संगीतकार के गाने पर धीरे-धीरे लोगों का सो जाना; अरुचि से उत्पन्न यह निद्रा संगीत के माधुर्य पर व्यंग्य है।

(५) **रेचक**—लक्ष्मण को उग्रता तथा अमर्ष से परशुराम हास्यास्पद भी हो जाते हैं, उनके प्रति प्रतिशोध की भावना का भी रेचन होता चलता है।

(६) **उहामूलक**—जैसे वितर्क, पहेलिका, विमूढ़ता आदि।"[1]

हास्य-रस पर पुरुषत्व का आरोप

जिस प्रकार हिन्दू संस्कृति में चार वर्ण होते हैं और उनके गुण विभिन्न माने जाते हैं उसी प्रकार रसों का भी वर्गीकरण किया जा सकता है। हास्य से मनुष्य का चित्त सदैव प्रसन्न रहता है। जिस समय मनुष्य हास्य का अनुभव करता है अपने सब दुखों को भूल जाता है। ब्राह्मण के गुणों में भी यह है कि वह सुख तथा दुःख में आसक्त न होकर सदैव प्रसन्नता से अपना कार्य करता है इसीलिए हास्य का वर्ण ब्राह्मण माना जा सकता है।

इसी प्रकार रसों के देवता भी अलग-अलग माने गये हैं। विष्णु भगवान ने नारद जी को बन्दर का चेहरा देकर एक षोड़शी से उनका उपहास करवाया था। इसी पौराणिक कथा के प्रसंग में जब वह कन्या नारद जी के उस रूप को देखकर डर गई तथा जिस पंक्ति में नारद जी बैठे थे उधर ध्यान ही नही दिया तथा विष्णु भगवान के गले में माला डाल दी तो नारद जी यह देखकर बहुत क्रोधित हुए और वहां से चल दिए। मार्ग में शिवजी के प्रथम नायक गण ने इनसे दिल्लगी की और कहा, "आप अपने रूप को दर्पण में तो देखिए"। नारद जी ने जब अपना रूप देखा तो और भी क्रोध बढ़ा और विष्णु तथा प्रथम दोनों को श्राप दिए। इसी हास्य के सम्बन्ध से प्रथम को हास्य का देवता माना है।

जिस प्रकार मनुष्यों के मित्र एवं शत्रु होते हैं उसी प्रकार रसों के भी होते हैं। हास्य के मित्र शृङ्गार तथा अद्भुत एवं शत्रु भयानक, करुणा, रौद्र तथा वीर माने जाते है। करुण रस तथा हास्यरस के विरोध के सम्बन्ध में विवाद है जिसका विवेचन आगे किया जावेगा।

हास्य के भेद

साहित्य-दर्पण में हास्य के ६ भेद किये गये हैं—

"ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसिता बहसिते च।
नीचानामपहसितं तथापि हसितं तदेष षड्भेद॥

---

१. हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य—जगदीश पांडे, पृष्ठ ६४

ईर्षाद्विकामिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताधरम् ।
किंचिल्लक्ष्यद्विमं तत्र हसितं कथितं बुधैः ॥
मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पमवहसितम् ।
अपहसितं सास्त्राक्षं विक्षिप्ताङ्ग (च) भवत्यति हसितम् ॥"[1]

अर्थात् (१) स्मित, (२) हसित, (३) विहसित (४) उपहसित, (५) अपहसित, (६) अतिहसित। इनमें से स्मित और हसित श्रेष्ठ लोगों के योग्य हैं, विहसित और उपहसित दोनों प्रकार मध्यम श्रेणी के माने गये हैं, और अपहसित तथा अतिहसित हासों की गणना अधम कोटि में की गई है।

जिस दशा में कपोलों पर तनिक सिकुड़न पड़ती है, आँखें कुछ विकसित होती हैं, नीचे का होंठ कुछ हिलने या फड़कने लगता है, दाँत दिखलाई नहीं पड़ते, दृष्टि कुछ कटाक्षपूर्ण हो जाती है और इन सब कारणों से चेहरे पर एक प्रकार का माधुर्य्य आता है तो उसे "स्मित" हास्य कहते हैं। जिस हास में मुंह, गाल और आँखें फूली हुई जान पड़ती हैं और दाँतों की पंक्तियाँ कुछ दिखलाई पड़ती हैं उसे हसित कहते हैं। विहसित में हँसने की क्रिया शब्द-युक्त होती हैं और लोग उसे सुन लेते हैं और इसमें आँखें कुछ सिकुड़ जाती हैं। उपहसित में नथने फूल जाते हैं, सिर और कन्धे सिकुड़ जाते हैं और दृष्टि कुछ वक्र हो जाती है। जिस हास्य के कारण आँखों में जल आ जाय, सिर तथा कन्धे स्पष्ट रूप से हिलने लगें और मनुष्य अपना पेट पकड़ ले उसे अपहसित कहते हैं। अतिहसित में हास्य के सब लक्षण और परिणाम बहुत ही स्पष्ट होते हैं और मनुष्य को हँसते-हँसते पेट पकड़ना पड़ता है।

रामचरन तर्कवागीश ने अपनी टीका में इन भेदों को हास्यरस के स्थायी भाव हास का भेद माना है। **"हास्यरस स्थायिभावस्य हासस्य भेदानाह--ज्येष्ठानामिति"**—जो कि सर्वथा असंगत है। स्थायीभावों का निवास अंतःकरण या आत्मा में है, शरीर में नहीं। स्मित आदि भेदों के उपरोक्त लक्षणों से ही स्पष्ट है कि वे शरीर में रहते हैं। अतः ये हसन क्रिया के ही भेद हैं, हास (स्थायी भाव) के नहीं।

पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रस-गंगाधर' में हास्य के भेद अन्य प्रकार के माने हैं :—

---

१. साहित्यदर्पण—शालिग्राम जी की टीका--पृष्ठ १५८, श्लोक २१७।

"आत्मस्थः परसंस्थश्चेत्यस्य भेद द्वयं मतं ।
आत्मस्थो दृष्टुरुत्पन्नो विभावविक्षण मात्रतः ।।
हसतं मपरं दृष्ट्वा विभावश्चोप जायते।
योऽसौ हास्य रस्तज्जै परस्थः परिकीर्त्तितः ।।
उत्तमानां मध्यमानां नीचानामप्य सौ भवेत् ।
व्यवस्थः काचितस्तस्य षड्भेदाः सन्तिचापराः ।।"

हास्य-रस दो प्रकार का होता है—एक आत्मस्थ, दूसरा परस्थ। आत्मस्थ उसे कहते हैं जो देखने वाले को हास्य के विषय को देखने मात्र से उत्पन्न हो जाता है और जो हास्य-रस दूसरे के कारण ही होता है उसे रसज्ञ पुरुष परस्थ कहते हैं। यह उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार के व्यक्तियों में उत्पन्न होता है। अतः इसकी तीन अवस्थाएँ कहलाती हैं एवं उसके और छः भेद हैं। उत्तम में हसित और स्मित, मध्यम में विहसित और उपहसित तथा नीच में अपहसित और अतिहसित होते हैं।

आचार्य भरत ने हास्य के दो विभाग किये हैं—आत्मस्थ और परस्थ। जब पात्र स्वयं हंसता है तो आत्मस्थ है, जब दूसरे को हँसाता है तो परस्थ है। पंडितराज जगन्नाथ ने हास्य के विभाव को देखने से जो हास्य उत्पन्न होता है उसे आत्मस्थ माना है और किसी अन्य को हँसता हुआ देख कर जो हास्य उत्पन्न होता है उसे परस्थ माना है।

डा० रामकुमार वर्मा ने दोनों प्रकार के भेदों का सम्मिश्रण करते हुए लिखा है—**"वस्तुतः अपने प्रभाव की दृष्टि से हास्य तीन प्रकार का माना गया, उत्तम, मध्यम और अधम। इन तीनों प्रकारों में प्रत्येक के दो भेद हैं। उत्तम के भेद हैं स्मित और हसित, मध्यम के भेद हैं विहसित और उपहसित तथा अधम के भेद हैं अपहसित और अतिहसित। ये प्रत्येक भेद आत्मस्थ और परस्थ हो सकते हैं। इस प्रकार निम्नलिखित प्रकार से हँसने की क्रिया बारह तरह से हो सकती है—**[1]

---

१. दृश्य-काव्य में हास्य-तत्व—"आलोचना", जनवरी १९५५ पृष्ठ ६४
—डा० रामकुमार वर्मा

हास्य रस-राज है

संस्कृत साहित्य के आचार्यों तथा हिन्दी साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों के लेखकों ने शृङ्गार रस को ही रस-राज माना है। लक्षण ग्रन्थों में अधिकतर शृङ्गार रस के ऊपर ही सबसे अधिक विवेचन मिलता है, अन्य रसों का वर्णन तो परम्परा-पालन के हेतु ही किया गया प्रतीत होता है।

महाकवि देव ने शृङ्गार को रसराज कहा है—

"निर्मल शुद्ध सिंगार रस, देव अकास अनन्त।
उडि-उडि खग ज्यों और रस, विवस न पावत अन्त॥"

उत्तररामचरित के रचयिता संस्कृत साहित्य की विभूति महाकवि भवभूति ने—"**एको रसः करुण एवः**" और आचार्य विश्वनाथ ने अपने एक गुरु-जन पितृदेव या पितृकधर्म दत्त जी का एक श्लोक—

"रस सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कार रसासत्वे सर्वत्राप्यद्भुता रसः॥"

उद्धृत कर अद्भुत-रस को शीर्षस्थान दिए जाने की ओर संकेत किया। हास्य-रस को रसराज बनाने का प्रयास सर्वप्रथम श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने अपनी पुस्तक "सुभाषित आणि विनोद" में किया। इसी पुस्तक के आधार पर सन् १९१५-१६ में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में "हास्य रस" शीर्षक एक लेखमाला निकली थी जिसमें हास्य रस को रस-राज सिद्ध किया गया था। यह विवेचन उसी आधार पर है।

शृङ्गार रस के समर्थकों का कहना है कि मानव सृष्टि की परम्परा चलाने के लिए रतिभाव ही शृङ्गार रस का स्थायी भाव है इसलिए शृङ्गार रस को ही पहला स्थान मिलना चाहिए। जिस प्रकार प्रजोत्पत्ति के लिए रति-भाव आवश्यक है उसी प्रकार प्रजा-संरक्षण के लिए "वात्सल्य भाव" आवश्यक है। यदि प्रजा का पालन ही नहीं होगा तो सृष्टि-परम्परा चल ही नहीं सकती। पाश्चात्य देशों में स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रीति के कारण सन्तति की कामना का भी कुछ अंशों में विरोध या ह्रास ही होता है। जब वात्सल्य रस सृष्टि चलाने में इतना आवश्यक है तो वात्सल्य रस ही शृङ्गार रस से अधिक महत्वपूर्ण ठहरता है।

शृङ्गार रस के समर्थकों का यह भी कथन है कि साधारणतः उसकी व्याप्ति समस्त सजीव जगत में पाई जाती है जब कि हास्य-रस केवल मनुष्य जाति तक ही सीमित है। किन्तु थोड़ा विचार करने से स्पष्ट हो जायगा कि यह तो हास्य-रस के रसराज होने का सबसे बड़ा कारण है। मनुष्य जाति सब जातियों में श्रेष्ठ है क्योंकि उसको बुद्धि मिली हुई है। मनुष्य ही रस का आनन्द ले सकता है। दूसरे हास्य रस का सम्बन्ध मन से है। मन इन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ है। शृङ्गार रस का आनन्द लेने वाली इन्द्रियाँ पशुओं में भी पाई जाती है लेकिन हास्य का सम्बन्ध मन से तथा बुद्धि से है। यह मनुष्यों में ही पाई जाती है। मनुष्य मात्र को शृङ्गार का अनुभव केवल कुछ नियमित काल तक ही रहता है जब कि हास्य रस का अनुभव जन्म से मृत्यु तक रहता है। श्री केल-कर ने लिखा है—

"चाहे मनुष्य मात्र के जीवन में होने वाली भावजागृति के विचार से देखिए, चाहे उससे होने वाले आनन्द और उसके उपयोग की दृष्टि से देखिए, हास्य, करुण और वीर ये तीनों रस शृंगार रस की अपेक्षा अधिक महत्व के प्रमाणित होंगे क्योंकि प्रायः हास्य और शोक में ही मनुष्य मात्र का अनुभव बंटा हुआ है। आनन्द उत्पन्न करने वाला पदार्थ प्राप्त करने से दुःख उत्पन्न करने वाली बात टालने में ही मनुष्य मात्र की सारी प्रवृति रहती है। हां, यदि यह कहा जाय कि हास्य और करुण रस का अनुभव मनुष्य को पग-पग पर हुआ करता है तो कुछ अनुचित न होगा।" [1]

करुण और हास्य में भी मनुष्य को हास्य रस का अनुभव ही अधिक होता है। करुण रस का स्थायी भाव इष्ट का नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति

---

१. केलकर द्वारा रचित 'हास्य-रस'—पृष्ठ ९८—अनुवादक—श्री रामचन्द्र वर्मा

है। वास्तव में मनुष्य अपने दुःख में ही दुःखी नहीं होता वरन् दूसरे के दुःख को देख कर भी दुःखी होता है। लेकिन ऐसे लोगों की संख्या कम है जो कि दूसरे के दुःख को देख कर भी उतने ही दुःखी हों जितने अपने दुःख से दुःखी होते हैं। परन्तु हास्य के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। "असम्बद्धता" हास्य का मूल है। संसार में असम्बद्धता प्रायः पग-पग पर दिखलाई पड़ती है और वह असम्बद्धता चाहे अपने से सम्बन्ध रखती हो और चाहे पराये से, उसे देख कर मनुष्य को मनोविनोद अवश्य होता है।

श्री हरिऔध ने "रस-कलश" में उपरोक्त विवाद पर अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—

"हास्य रस मनुष्य तक परिमित है इसलिए न तो वह शृङ्गार के इतना व्यापक है और न उसके इतना आस्वादित होता है। उसमें सृजनशक्ति भी नहीं है अतएव वह अपूर्ण और गौणभूत है। यदि शृङ्गार रस जीवन है तो वह आनन्द, यदि वह प्रसून है तो यह है विकास, जिससे दोनों में आधार आधेय का सम्बन्ध पाया जाता है। आधेय से आधार का प्रधान होना स्पष्ट है।" [1]

शृङ्गार रस यौवन तक परिमित है परन्तु हास्य रस समान भाव से बाल्यावस्था, यौवन और वृद्धावस्था, तीनों में उदित होता है इसका उत्तर वे देते हैं—**"इस विचार में एक देश-दर्शन है क्योंकि शृङ्गार का एक देशी रूप सामने रक्खा गया है। तर्ककर्ता ने सर्व देशी शृङ्गार रस के व्यापक रूप पर दृष्टि नहीं डाली। यदि उसके उद्दीपन विषयों को ही सामने रक्खा जाता तो ऐसी बात न कही जाती। क्या मलयानिल युवकों को ही मुग्ध बनाता है, बाल वृद्ध को नहीं? क्या हँसता हुआ मयंक, रस बरसाते हुए घन, पुष्प-संसार-विलसित वसंत, पपीहे की पिहक, कोकिल की काकली और मयूर का नर्तन, बालक और वृद्ध को आनन्द निमग्न करने की सामग्री नहीं है?...किसी किसी का यह कथन भी है कि जीवन सुख-दुख पर ही अवलम्बित रहता है, दुःख का रोदन और सुख का हास सम्बल है। इसलिए जीवन का सम्बन्ध जितना करुण रस और हास्य से है अन्य किसी रस से नहीं। किन्तु शृङ्गार अस्तित्व में आए बिना दुःख-सुख की कल्पना हो ही नहीं सकती। अग्निपुराण के आधार से यह बात प्रतिपादित हो चुकी है और किस प्रकार शृङ्गार से हास्य रस और करुण रस की उत्पत्ति होती है यह भी बतलाया जा चुका है। मेरा विचार है कि जिस पहलू से विचार किया जाएगा शृङ्गार पर हास्य को प्रधानता न मिल सकेगी।** [2]

१. रस कलश—हरिऔध—पृष्ठ १०३
२. रसकलश—हरिऔध—पृष्ठ १०४

श्री बाबूराम वित्थारिया ने अपने 'नवरस' ग्रन्थ में इस शंका का समाधान करते हुए लिखा है—**"मनुष्य की चारों अवस्थाओं में सर्वश्रेष्ठ मानी जाने वाली युवावस्था के सम्बन्ध में निश्चित किया जाना चाहिए। युवावस्था में श्रृङ्गार रस ही प्रधान है। ...... लोग हास्य और करुणा के लिए कहते हैं कि उनका आविर्भाव बाल्यावस्था में ही हो जाता है और सदैव रहता है। इसका कारण वह प्रधान है। परन्तु यह कहते समय स्यात् वह यह नहीं सोचते कि श्रृङ्गार की मुख्य जड़ प्रेम भी तो बाल्यावस्था से ही अंकुरित होता है। प्रथम बालक प्रेम, माता-पिता, भाई-बन्धु इत्यादि से होता है फिर वही प्रेम यथावसर स्त्री में होता है। प्रेम वस्तुतः एक ही है।"** [1]

वास्तव में देखा जाय तो उपरोक्त विद्वानों के पक्ष विपक्ष के प्रतिपादन से तत्व यह निकलता है कि हास्य रस भी कम महत्वपूर्ण रस नहीं है। एवं अब तक इसकी जो उपेक्षा की गई है वह अवांछनीय है। जीवन में श्रृङ्गार रस का जितना महत्व है हास्य रस का महत्व भी उससे कम नहीं है। हास्य रस श्रृङ्गार रस से व्यापक अधिक है यह भी निर्विवाद है। यह बात भी माननी पड़ेगी कि भारतीय विद्वान् ही नहीं वरन् श्रृङ्गार की महत्ता विदेशी विद्वान भी मानते हैं जिनमें फ्रायड के सिद्धान्त इसके साक्षी हैं। हरिऔध जी का यह कथन कि यदि श्रृङ्गार प्रसून है तो हास्य विकास भी इस बात को पुष्ट करता है कि हास्य रस का महत्व श्रृङ्गार रस के महत्व से कम नहीं। पुष्प का यदि विकास ही न होगा तो उसमें सुन्दरता कैसे आ सकती है? जहाँ तक रसों के अनुभव का प्रश्न है, मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक अनुभव हास्य रस का ही होता है, अन्य किसी रस का नहीं। श्री वित्थारिया जी का कथन कि युवावस्था ही मनुष्य की सब से महत्वपूर्ण अवस्था है और श्रृङ्गार रस युवावस्था में महत्वपूर्ण होता है, तर्क सम्मत इसलिये नहीं कि युवावस्था का महत्व मनुष्य के पूरे जीवन से अधिक महत्व का नहीं माना जा सकता। मनुष्य के चरित्र निर्माण एवं शरीर निर्माण में युवावस्था के पूर्व का भाग भी कितना महत्वपूर्ण है इस पर दो मत नहीं हो सकते। बालपन से ही मनुष्य के जीवन में हास्य का कितना महत्वपूर्ण स्थान है यह किसी से छिपा नहीं है।

"आहार निद्रा भय मैथुनानि, सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणां।"

आदि सर्व-मान्य वचन से यह बात स्पष्ट है कि अन्य सब इन्द्रियों की

---

१. हिन्दी काव्य में नव रस—बाबूराम वित्थारिया—पृष्ठ २५५.

क्रियाओं की अपेक्षा मन-इन्द्रिय और उसकी क्रिया का अधिक महत्व है। हास्य रस मन की क्रिया पर अवलम्बित है। इस बात का खण्डन अभी तक कोई नहीं कर सका। इसमें हास्य रस के महत्व का स्पष्टीकरण हो जाता है। रस का प्राण आनन्द में है, आनन्द का मूल प्रसन्नता है और प्रसन्नता हास्य में प्रत्यक्ष और मूर्तिमती हो जाती है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि हास्य को रसराज भले ही न माना जाय किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करने में किसी को भी सन्देह न होना चाहिए कि हास्य रस का महत्व किसी भी अन्य रस से कम नहीं है और यदि रसराज किसी रस को बनाना ही अभीष्ट है तो हास्य रस भी अपना नाम अन्य रसों के साथ चुनाव में भेजने का अधिकारी है और उसकी जीत में किसी को सन्देह न होना चाहिए।

हास्य के प्रकारों के उदाहरण निम्नलिखित हैं--

(१) स्मित—**"विवशन ब्रज बनितान के, सखि मोहन मृदुकाय।**
चीर चोरि सुकदम्ब पै, कछुक रहे मुसिक्याय॥"
—(जगद्विनोद-पद्माकर)

(२) हसित—**"जाने को पान खवावन क्यों हूँ गई लगि आँगुली ओठ नवीने,**
तें चितयौ तबही तिहिं भाँति जु लाल के लोचन लोलि से लोने।
बात कही हर ये हँसि कै सुनि में समुझी वे महारस भीने
जानति हौं पिय के जिय के अभिलाष सवै परिपूरण कीने॥"
—(केशव–रसिक प्रिया)

(३) विहसित—**"हँसने लगे तब हरि अहा, पूर्णेन्दु सा मुख खिल गया,**
हँसना उसी में भीम अर्जुन, सात्यकी का मिल गया।
थे मोद और विनोद के सब, सरल झोके झेलते,
भगवान भक्तों से न जाने, खेल क्या क्या खेलते।"
—(मैथिलीशरण गुप्त—जयद्रथ वध)

(४) उपहसित–**"ज्यों ज्यों पट झटकति हंसति, हटति नचावति नैन,**
त्यों त्यों परम उदारहू, फगुवा देत बनैन।"
—(विहारी)

(५) अपहसित–**"चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराय सुनाय सुहोरी,**
वेदी विशाखा रची पद्माकर अंजन आँजि समाजि के रोरी।

लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह कौ कंचुकी केसरि बोरी,
हेरि हरे मुसकाइ रही अंचरा मुख दे वृषभान किशोरी।"
—(पद्माकर-जगद्विनोद)

(६) अतिहसित--"सुनकर निज सुत के वचन विलक्षण ऐसे,
कर अट्ट--हास घन घट्ट नाद हो जैसे।
बोला ओ उद्धत असुर राज उत्पाती,
उन्मत्त सुरापी सर्वलोक-संघाती॥"
—(मैथिलीशरण गुप्त—प्रह्लाद)

अब हास्य रस का एक उदाहरण लीजिये—

"कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू, बिनु पद कर कोउ बहुपद बाहू,
विपुल नयन कोउ नयन विहीना, रिष्टपुष्ट तन कोउ अति छीना;
शिवहिं शंभु गरण करहिं सिंगारा, जटा मुकुट अहि मौर सम्हारा,
कुंडल कंकरण पहिरे व्याला, तन विभूति पट केहरि छाला;
गरल कंठ उर नर शिरमाला, अशिव वेष शिवधाम कृपाला,
कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा, चले वृषभ चढ़ि बाजहिं बाजा;
देखि शिवहिं सुरतिय मुसकाहीं, वर लायक दुलहिन जग नाहीं॥
विष्णु कहा अस विहंसि तब, बोलि सकल दिशिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहुं सब, निज निज सहित समाज॥"
—(महाकवि तुलसीदास-रामचरितमानस)

यहाँ महादेव जी के गरण आलम्वन विभाव हैं, क्योंकि उनको देख कर हँसी आती है। उद्दीपन उनके शरीर की असम्वद्धता, कुरूपता और विकृति इत्यादि हैं क्योंकि इसके द्वारा हँसी उद्दीप्त होती है। उनकी उक्त दशाओं द्वारा मध्योच्चस्वर से हँसना जो हास्य का अनुभव करता है, अनुभाव तथा हर्ष संचारी भाव हैं। इस विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के मिलने से 'हास्य' स्थायी हुआ, अतः हास्य रस है।[1]

हास्य का पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि से विवेचन

"प्रसिद्ध कलाकार होगार्थ ने किसी प्रहसन का अभिनय देखते हुए कुछ पाश्चात्य हास्य रसाचार्यों का एक चित्र अंकित किया है जिसमें उन्होंने बड़े कौशल के साथ उनकी भाव-भंगी का सजीव चित्रण करते हुए वहाँ के हास्य-

---

१. हिन्दी काव्य में नवरस—बाबूराम बित्थारिया।

साहित्य की अपने ढंग से विशद आलोचना की है। एक ओर अरिस्टोफेनीज़ की उन्मुक्त हँसी है दूसरी ओर जुवेनल का उद्दीप्त कठोर हास्य; इधर सर्वन्टीज़ यथेष्ट संयम के साथ बड़े आदमियों की भांति हँस रहे हैं उधर मिल्टन की आत्मा एलीज़ा की भांति आंग्ल-स्वातन्त्र्य के विरोधियों पर अपने भयंकर और घृणापूर्ण अट्टहास के द्वारा प्रहार कर रही है। इसी प्रकार उन्होंने और लेखकों का भी दिग्दर्शन कराया है। पश्चिमी साहित्य में सदैव हास्य का एक प्रमुख स्थान रहा है। उनका घात प्रतिघातमय भौतिक जीवन रोना और हँसना ही अधिक जानता है इसीलिए रस का विवरण वे करुण (Pathos) और हास्य (Humour) पर लिख कर ही प्राय· समाप्त कर दिया करते हैं।"[1]

विदेशी विद्वानों ने हास्य के पाँच प्रभेद किये हैं—(१) स्मित हास्य (Humour), (२) वाक्छल (Wit), (३) व्यंग्य (Satire), (४) वक्रोति (Irony), और (५) प्रहसन (Farce).

हास्य (Humour)

हास्य का यह सर्वोत्तम स्वरूप है। अपने यहां के "स्मित" से अधिक साम्य होने के कारण इसे "स्मित" कह सकते हैं। वास्तव में "स्मित" एक अत्यन्त सूक्ष्म और तरल मानसिक वृत्ति है। उसकी तरलता के कारण ही उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता सली के अनुसार यह एक मनोविकार होते हुए भी बौद्धिकता का पर्याप्त अंश लिए हुए है––"Humour is distinctly a sentiment yet at the same time it is markedly intellectual". वास्तव में इसकी प्रकृति का निर्माण संयम, सहानुभूति, चिन्तन तथा करुणा—इन चारों गुणों द्वारा हुआ है। ए. निकाल ने अपनी पुस्तक "An Introduction to Dramatic Theory" में स्मित की व्याख्या करते हुए लिखा है—"If insensiblity is demanded for pure laughter, sensibility is renderd necessary for true humour. However we shall find it is often related to melancholy of a peculiar kind, not a fierce melancholy and a melancholy that arises out of pensive thoughts and a brooding on the ways of mankind." अर्थात् स्मित के लिए समझदारी आवश्यक है जब कि हँसना बेसमझदारी का हो सकता है। इसके लिए एक विशेष प्रकार के चिन्तन की भी आवश्यकता है जो कि रूखा चिन्तन ही न हो वरन् मनुष्यत्व पर सहानुभूतिपूर्ण विचार करने के उपरान्त उत्पन्न हुआ हो।

१. हिन्दी साहित्य में हास्य-रस—डा० नगेन्द्र–वीणा नवम्बर १९३७ पृष्ठ ३१

आलम्बन के प्रति सहानुभुति स्मित की जड़ है। शोपनहावर का कथन है कि विनोद के पीछे गुरु-गम्भीरता हो तो वहाँ स्मित की स्थिति होती है। स्मित के लिए घातक होते है—(१) प्रयोजन (२) सामान्यता (३) अतिवादिता (४) ईर्षा और (५) अस्वीकृति। ईर्षा से प्रेरित होकर कोई कलाकार सब कुछ कर सकता है, "स्मित" को जन्म नहीं दे सकता। "स्मित" का सम्बन्ध हास्यास्पद के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति से है। जब हास्य में कटुता आजायगी अथवा हास्य सौद्देश्य हो जायगा तव वह व्यंग्य अथवा वक्रोति हो जायगा, स्मित नहीं रह सकेगा। जहाँ हास में ममता रहती है जिस पर हम हँसें वह हमारा प्रिय भी होता है वही तरल हास "स्मित" कहा जाता है। मेरिडिथ ने लिखा है—"If you laugh all round him, tumble him, roll him about, deal him a smack, and drop a tear on him, own his likeness to you and yours to your neighbour, spare him as little as you shun. pity him as much as you expose, it is a spirit of humour that is moving you."[1]

इसका भावार्थ यही है कि हास्यस्पद के प्रति उसकी हँसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने में सन्तुलन नहीं खोना चाहिए। उसकी हँसी उड़ाई जाय तो उसे प्रेम भी किया जाय। इन्हीं महाशय के अनुसार—"The stroke of the great humourist is world-wide with lights of tragedy in his laughter.[2] अर्थात् आलम्बन के प्रति करुणा के भाव भी आवश्यक हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हास्य एवं करुणा रसों के सम्बन्ध में मत प्रकट करते हुए लिखा है—

"जो बात हमारे यहाँ की रस-व्यवस्था के भीतर स्वतः सिद्ध है वही योरप में इधर आकर एक आधुनिक सिद्धान्त के रूप में यों कही गई हैं कि उत्कृष्ट हास वही है जिसमें आलम्बन के प्रति एक प्रकार का प्रेम भाव उत्पन्न हो अर्थात वह प्रिय लगे। यहाँ तक तो बात बहुत ठीक रही पर योरप में नूतन प्रवर्त्तक बनने के लिए उत्सुक रहने वाले चुप कब रह सकते हैं। वे दो क़दम आगे बढ़ कर आधुनिक 'मनुष्यतावाद' या 'भूतदया-वाद' का स्वर ऊँचा करते हुए बोले—'उत्कृष्ट हास वह है जिसमें आलम्बन के प्रति दया एवंकरुणा उत्पन्न हो'। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह होली-मुहर्रम सर्वथा अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक और रस विरुद्ध है। दया या करुणा दुःखात्मक भाव हैं,

1. An essay on Comedy—Meredith page 79
2. An essay on Comedy—Meredith page 84

हास आनन्दात्मक। दोनों की एक साथ स्थिति बात ही बात है। यदि हास के साथ एक ही आश्रम में किसी और भाव का सामंजस्य हो सकता है तो प्रेम या भक्ति का ही।"[1] रस-पद्धति के अनुसार हास्य रस तथा करुण रस में विरोध है कन्तु पाश्चात्य लेखकों की धारणा है कि हास्य के साथ करुणा का संगम सोने में सुगन्ध का कार्य करता है। उनकी मान्यता है कि हमारे जीवन में हास तथा करुणा का बहुत अधिक सम्बन्ध है। मि. सली का कथन है—**"हँसी तथा रुदन पास ही पास हैं। एक से दूसरे पर जाना बहुत सरल है। जब कि वृत्ति और कार्य में पूर्ण रीति से संलग्न हो तो कुछ उसी के समान दूसरे कार्य पर बड़ी जल्दी जा सकती है।"**[2] वास्तव में करुण रस से आक्रान्त मानव को यदि बीच-बीच में हास्य का सहारा मिल जाता है तो वह थकान अनुभव नहीं कर पाता। इस लाभ के प्रति प्रसिद्ध नाटककार "ड्राइडन" ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—"A continued gravity keeps the mind too much bent, we must refresh it sometimes as we wait in a journey; has the some effect upon us which our Music has betwixt the acts, which we find a relief to us from the heat; plots and language of the stage if the discources have been long."

अर्थात निरन्तर की गम्भीरता मस्तिष्क को आक्रान्त किये रहती है। हमें अपने मस्तिष्क को कभी-कभी उसी तरह स्वस्थ तथा सजीव बना लेना चाहिए जिस प्रकार हम अधिक सुविधापूर्वक चलने के लिए मार्ग में ठहरते हैं। करुणा से मिश्रित हास्योत्पादक स्थल हमारे उपर उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार कि अङ्कों के बीच संगीत का विधान और इससे हमें लम्बे कथावस्तु तथा कथोपकथन में—चाहे वह अत्यन्त विशिष्ट हो और उसकी भाषा अत्यन्त सजीर्व हो—विश्रान्ति भी मिलती है।

हम शुक्ल जी के मत से सहमत नहीं। उसका कारण यह है कि यदि आलम्बन इतना निर्लज्ज तथा चिकना है कि प्रेम द्वारा उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो उसके प्रति घृणा का जाग्रत करना अनिवार्य सा हो जाता है।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण पृष्ठ ४७५।

2. The fact is that tears and laughter be in close proximity. It is but a slip from one to other. The motor centres engaged when in full swing of one mode of action may readily pass to the other and partially similiar action.

दूसरे जब जीवन में सदैव से हँसने रोने का साथ रहा है, मनुष्य एक क्षण रोता है दूसरे क्षण हँसने लगता है तो क्या कारण है साहित्य में इन दोनों का ऐसा विरोध रहे। इसके अतिरिक्त गम्भीर नाटकों आदि में हास्य का पुट रेगिस्तान में नखलिस्तान का काम देता है। इस विरोध का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि भारतीय शास्त्रीय पद्धति में हसन-क्रिया के भेद मिलते हैं, गुण और प्रभाव की दृष्टि से वर्गीकरण पाश्चात्य साहित्य में ही मिलता है। व्यंग्य (Satire) में द्वेष की भावना छिपी रहती है इसलिए जब आलम्बन का चित्रण उस दृष्टिकोण से किया जाता है तो आलम्बन के प्रति जब तक समाज में घृणा तथा करुणा के भाव जाग्रत न होंगे तब तक लक्ष्य की सिद्धि होना असम्भव है।

स्मित हास्य वास्तव में करुणासिक्त हास है, मुक्तक हास है तथा सजल है। उदाहरण के लिए जंगल में रहने वाले चित्रकूट में जब अपनी प्रशंसा सुनते हैं तो कहते हैं—

"यह हमारि अति बड़ सेवकाई, लेहि न बासन बसन चुराई।"

ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि किरात अपने को चोर कह कर विनोद कर रहे हों, परन्तु वस्तुतः राम के सामने वे अपने को वैसा ही समझते हैं। वे वध करते हैं, उनके तन पर वस्त्र नहीं, पेट खाली है, हिंसक हैं, अधार्मिक हैं, इसलिए राम की कोई बड़ी सेवा तो वे कर नही सकते। उनका असंतोष गुरु भाव से है। विनोद के पीछे ऐसी साधु गम्भीरता तथा गुरु भाव उन्हें स्मित हास का आलम्बन बनाता है।

हिन्दी में ऐसे निष्प्रयोजन, संवेदनशील, एवं करुणासिक्त हास्य की कमी रही है जिसके कारणों का उल्लेख आगामी अध्याय में किया जावेगा।

वाक्-वैदग्ध्य (Wit)

शब्दों में विवेक की मितव्ययिता वैदग्ध्य को जन्म देती है। वचनों की विदग्धता के कारण जो उक्ति-चमत्कार होता है उसे "विट" (wit) कहते हैं उक्ति-चमत्कार अथवा वाक्-वैदग्ध्य हास्य का एक बौद्धिक श्रोत है। इसके लिए विचारों का चमत्कारपूर्ण प्रयोग आवश्यक है। अरस्तू के अनुसार जिन "चटकीले शब्द-प्रबन्धों" की लोग बहुत प्रशंसा करते हैं, वे अनुभवी और चतुर मनुष्यों के रचे हुए होते हैं और मुख्यतः साधर्म्य, वैधर्म्य, विशद स्वभाव-वर्णन आदि के कारण उत्पन्न होते हैं। जिस चटकीले शब्द-प्रबन्ध का स्वरूप हमारे

यहाँ के सुभाषित और विनोद से मिलता जुलता है, उसमें हास्यरस का होना वह आवश्यक नहीं वतलाता। जान पड़ता है कि उसका तात्पर्य वहुत कुछ यही है कि उसमें अर्थ का चमत्कार अवश्य होना चाहिए। "चमत्कृति जनक रूपक" नाम का एक विशिष्ट प्रकार अरस्तू को बहुत पसन्द था जिसका वर्णन उसने इस प्रकार किया है—"**ऐसा आनन्ददायक साम्य ढूंढ़ निकालना जो पहले कभी न देखा गया हो।**" तथापि एसे चमत्कारिक और आनन्ददायक शब्द प्रयोग से हास्य रस की उत्पत्ति वहुत होती ही है, इसलिए यह कहने में विशेष आपत्ति नहीं दिखाई देती कि यह प्रकार निस्सन्देह अंग्रेजी के "Wit" अथवा हिन्दी के "उक्ति-चमत्कार" या चोज़ की ही प्रतिकृति है। "एडिसन" के "Six papers on wit" नामक लेखमाला में "Humour" नामक निवन्ध में उसने नीचे लिखे अनुसार वंशावली दी है—

"Truth was the founder of the family and the father of good sense. Good sense was the father of wit who married a lady of a collateral line called Mirth, by whom he has issue humour. Humour being the youngest of this illustrious family, and descended from parents of such various dispositions, as very various and unequal in his temper. Sometimes you see him putting on grave looks and a solemn habit, sometimes airy in his behaviour and fantastic in his dress, in so much that at different times he appears as serious as a Judge and as jocular as a Meary Andrew. But as he has a great deal of the mother in him, whatever mood he is in, he never fails to make his company laugh".

इसका आशय यह है कि "परिहास" या "विनोद" के श्रेष्ठ घराने का मूल पुरुष "सत्य" है। "सत्य" को शोभनार्थ नामक लड़का हुआ। "शोभनार्थ" के यहाँ "उक्ति-चमत्कार" नामक लड़का हुआ। "उक्ति-चमत्कार" ने अपने वंश की "आनन्दी" नामक लड़की से विवाह किया। इस दम्पत्ति से "विनोद" नामक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। "विनोद" का जन्म भिन्न-भिन्न स्वभावों के माता-पिता से हुआ था। इसलिए उसका स्वभाव भी विलक्षण हो गया है। कभी वह देखने में गम्भीर, कभी चंचल और कभी विलासी जान पड़ता है। लेकिन उसमें विशेषतः उसकी माता के स्वभाव का ही अधिक अंश आया है, इसलिए वह स्वयं चाहे जिस चित्त वृत्ति में रहे, दूसरों को वह बिना हँसाए नहीं रहता। इस छोटी-सी कहानी का तात्पर्य यह है कि एडीसन

के मत के अनुसार वचन वैदग्ध्य (Wit) में सत्य और प्रौढ़ अर्थ होना चाहिए, उसमें केवल रिन्दगी नहीं होनी चाहिए। एडीसन ने Wit की व्याख्या करते हुए लिखा है—"Wit is the resemblance or contrast of Ideas that give the reader delight and surprise, especially the latter." अर्थात् पदार्थों के जिस सम्बन्ध-दर्शन में पाठकों या श्रोताओं में प्रसन्नता और आश्चर्य या चमत्कृति उत्पन्न हो और उसमें भी विशेषतः चमत्कृति जान पड़े, उसे Wit कहते हैं। इसके पूर्व के कवि ड्राइडन (Dryden) ने Wit की व्याख्या इस प्रकार की है—"Propriety of word and thought adopted to the Subject". अर्थात् "विषय के अनुसार विचार और भाषा-प्रयोग का औचित्य"। एडीसन ने भाषा के औचित्य शब्द से मतभेद प्रकट करते हुए कहा है कि यदि भाषा का औचित्य उक्ति चमत्कार का विशेष गुण है तो ज्यामिति की पुस्तकें भी Wit के अन्तर्गत आ जायेंगी जो कि असंगत है।

"वस्तुतः 'विट' में रस और चमत्कार दोनों का होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ—खरहे ने बलवान सिंह को कुआ झँकाकर अपनी जान बचा ली, इससे खरहे की चालाकी का पता चला। शेर अपनी माँद के द्वार तक तो लोमड़ी को ले जासका पर वहीं लोमड़ी ठिठक गयी और उसने कहा, 'महा-राज, बाहर से गुफा में जाने वाले के पद चिन्ह तो हैं पर लौटने वालों का तो निशान तक नहीं।' और वह भग आयी। यह बुद्धि की सूझ है। हम लोमड़ी की तारीफ़ करते हैं। इस तरह के वैदग्ध्य में चमत्कार है, रस नहीं। पर जब लोमड़ी कहती है, 'अजी, खट्टे अंगूर कौन खाय' तो वाँछित लाभ से जो निराशा हुई उस निराशा या लज्जा को छिपाने के लिए जो तर्क गढ़ लिया जाता है तो वह अवहित्था ही है। लजा जाने पर लोग अक्सर बात बदल देते हैं। यह वैदग्ध्य रसात्मक वैदग्ध्य है केवल बुद्धि-पटुता का चमत्कार नहीं।"[1]

हास्यकार वाक्य-वैदग्ध्य या मति-वैदग्ध्य को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—(१) चमत्कार वैदग्ध्य और (२) रसात्मक वैदग्ध्य। चमत्कार वैदग्ध्य में वाक्य या शब्द की अप्रत्याशित प्रयोग पटुता या विचारों का आरोप है। यदि ऐसी प्रयोग-पटुता जीवन की कोई ऐसी परिस्थिति भी सामने लाती है जिसमें भाव संचारण की क्षमता है तो उक्ति का गुण रसात्मक हो जाता है। अतएव उक्ति वैदग्ध्य को केवल बौद्धिक कहना शीघ्रता है। फ्रायड ने इसे

---

१. हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पाँडे—पृष्ठ ८२।

दो प्रकार का माना है—(१) सहज चमत्कार (Harmless Wit) और (२) प्रवृत्ति चमत्कार (Tendency Wit)। सहज चमत्कार में केवल विनोद मात्र रहता है किन्तु प्रवृत्ति चमत्कार में ऐन्द्रियक या प्रतीकारात्मक भावना रहती है। "वाक् वैदग्ध्य की एक विशिष्टता उसकी सामाजिकता है। हास तथा हास्य के विपरीत इसमें तीन पात्रों की आवश्यकता होती है। प्रथम वह जिसके द्वारा प्रयोग किया जाय, दूसरा वह जिसके लिए प्रयोग हो और तीसरा वह जिसके द्वारा सुनाया जाय।[1] वैदग्ध्य हास्य का अत्यन्त उत्कृष्ट तथा कलापूर्ण अंग है जिसके कथोपकथन में नवजीवन का संचार होता है। वाक्य-वैदग्ध्य का प्रयोग भाषा तथा शैली पर पूर्ण अधिकार की अपेक्षा रखता है।

हिन्दी शब्द सागर में "चोज़" की व्याख्या इस प्रकार की गई है—**"वह चमत्कारपूर्ण उक्ति जिससे लोगों का मनोविनोद हो"**; परन्तु उपरोक्त विवेचन को देखते हुए यह व्याख्या भी यथेष्ट समर्पक और व्यापक नहीं जान पड़ती। इधर हाल में अँग्रेज़ी के "वेब्स्टर" और "सेनचुरी" शब्दकोषों में Humour और Wit की जो नई व्याख्याएँ की गई हैं वे बहुत कुछ एक-सी हैं। उनके अनुसार Humour की व्याख्या है—**"किसी घटना, क्रिया, परिस्थिति, लेख या विचारों की अभिव्यक्ति में रहने वाला वह तत्व जो उनकी असंबद्धता, बेढंगेपन आदि के कारण मनुष्य के मन में एक विशेष प्रकार का आनन्द या मज़ा उत्पन्न करता है।"** उक्त कोषों के अनुसार Wit की परिभाषा है—**"भाषण या लेख का वह गुण या तत्त्व जो किसी विचार और उसकी अभिव्यक्ति के ऐसे सुघड़ और सुन्दर सम्बन्ध से उत्पन्न होता है जो अपने अप्रत्याशित स्वरूप के द्वारा लोगों के मन में आश्चर्य और आनन्द उत्पन्न करता है।"**

गुप्त जी के "साकेत" से एक छन्द Wit के उदाहरण देने के लिए पर्याप्त होगा। उर्मिला लक्ष्मण सम्वाद में—

"उर्मिला बोली, "अजी तुम जग गये,
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गये ?"
"मोहिनी ने मंत्र पढ़ तब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"

---

१. हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य—श्री त्रि० ना० दीक्षित, पृष्ठ १००

इसी प्रकार पंचवटी-प्रसंग में भी देवर-भाभी के परिहास में वाक्-विद्‌ग्धता का अच्छा प्रयोग हुआ है। तिरस्कृता शूर्पणखा से सीता कहती हैं—

"अजी खिन्न तुम न हो हमारे ये देवर हैं ऐसे ही,
घर में ब्याही बहू छोड़ कर यहाँ भाग आये हैं ये।"

स्मित तथा वाक्-विद्‌ग्धता में भेद

स्मित हास्य एवं वाक् विदग्धता दोनों का अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है। दोनों का आधार असम्बद्धता है। जिस प्रकार चोज़ का विषय "पदार्थों की असम्बद्धता" है उसी प्रकार हास्य का विषय "मानवी स्वभाव और परिस्थिति सम्बन्धी असम्बद्धता" है। ये बातें जितनी अधिक सम्बद्धता दर्शक होंगी विनोद भी उतना ही अधिक सरस होगा।

"लेहंट" ने Wit और Humour का अन्तर बताते हुए लिखा है—
"Wit and Humour are to be found sometimes apart but their richest effect is produced by their combination. Wit apart from humour is an element to sport with, in combination with humour it runs into the richest utility and helps to humarise the world."

इनका आशय है कि यद्यपि दोनों भिन्न-लक्षणात्मक हैं किन्तु दोनों का संयोग और मिलाप वैसा ही होता है जैसे दूध और चीनी का।

हैज़लिट ने अपने Humour and Wit नामक लेख में Wit तथा Humour का विवेचन इस प्रकार किया है—

"Humour is describing the ludicrous as it is in itself Wit is the exposing it by comparing or contrasting it with something else. Humour is as it were the growth of natural and acquired absurdities of mankind or of the ludicrous in accidental situation and character; Wit is the illustrating and hightening the sense of that absurdity by some sudden and unexpected likeness or opposition of one thing to another which sets off the thing we laugh at or despise in a still more contemptible or striking point of view."

हैजलिट का विवेचन सबसे अधिक स्पष्ट है। उनके मतानुसार Wit और Humour दोनों के विषय हास्यकारक होते हैं, लेकिन Humour में हास्यकारक विषय का वर्णन स्वाभावोक्ति से किया जाता है और Wit में

वह वर्णन कुछ वक्रोक्ति से किया जाता है अर्थात् इस प्रकार के वर्णन में उपमा, विरोध-दर्शन आदि प्रकारों का व्यवहार आवश्यक होता है। Humour में जो चमत्कार होता है वह स्वाभाविक होता है, परन्तु Wit के लिए एक प्रकार की सुसंस्कृत कल्पना-शक्ति और कला-ज्ञान की आवश्यकता होती है।

वास्तव में चोज़ या वचन-विदग्धता अन्धकार को नाश करने के लिए स्वर्ग का प्रकाश है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चोज़ में जब तक चमत्कार या विलक्षणता न हो, तब तक काम नहीं चल सकता। इसलिए चोज़ की जो बात एक बार सुन ली जाती है वही फिर से सुनने में विशेष आनन्द नहीं आता। चोज़ में उस सौन्दर्य की भी आवश्यकता नहीं है जिससे काव्य अलंकृत होता है किंवा उसमें का प्रवेश—जिसे हम साधारणतः उपयुक्त बतलाते हैं ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसका परिणाम बुद्धितत्व पर पड़े। चोज़ में बुद्धि-मत्ता का उपयोग तो होना चाहिए लेकिन उसका उपयोग पदार्थों के सुन्दर या उपयुक्त सम्बन्ध ढूंढ निकालने के लिए नहीं होना चाहिए बल्कि वह सम्बन्ध ढूढ निकालने के लिए होना चाहिए जो अनपेक्षित, अद्भुत और चमत्कार-जनक हो।

व्यंग्य (Satire)

सटायर का जन्म दृश्य काव्य से हुआ। रोमन्स तथा यूनानी दोनों ही अपने को इसका जन्मदाता मानते हैं। जूलियस "स्केलिगर" तथा "हैसियस" जो यूनानी विद्वान हैं उनका कहना है कि रोमन्स ने इसे यूनान से प्राप्त किया तथा "रिगलशियस" और "कैसाबन" जो रोमन विद्वान हैं वे कहते हैं यूनान ने उनसे इसे प्राप्त किया है। "सर्टरस" एक विचित्र प्रकार का जन्तु होता है जिसके आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

प्रारम्भिक काल में रँगरेलियों, हँसी दिल्लगी, फक्कड़बाजी आदि जो पद्य में होने लगी थीं, "नकलों" में प्रस्तुत करते थे। "लिवोऐन्ड्रानिकस" ने सर्वप्रथम इसको शुद्ध और शिष्ट बनाकर दृश्यकाव्य का पद देकर नाटक के रूप में रक्खा। यह यूनानी गुलाम था। इसने नाटकों में इसका प्रयोग किया। "इनियस" ने सुन्दर पदों में इसका प्रथम बार प्रयोग किया। इसके बाद इस सम्प्रदाय को बढ़ाने वाले "लोरेस", "जोबनिल" और "परसीयस" हैं। "होरेस" के यहाँ समाज की उन तमाम कुरीतियों पर व्यंग्य हैं जो यूनानियों की बेढंगी नक़ल या उनके प्रभाव से हो गयी हैं। फ्रांस के "बायलो" ने भी सटायर को अपनाया। उर्दू में इसे "हज्जो" कहते हैं। अरब में हज्जो के लिये

नियम थे—(१) केवल उन्हीं वस्तुओं तथा बातों पर हों जो स्वतः ऐसी घृणित और तिरस्कार के योग्य हों, (२) अपने पूर्वजों पर कदापि न हो, (३) सत्य व स्वाभाविक हो कि जल्द समझ में आ जायँ और प्रभाव पड़े।

वास्तव में व्यंग्य सोद्देश्य होता है। इसके द्वारा लेखक सदैव हँसी द्वारा दण्ड देना (to punish with laughter) चाहा करता है, अतः स्वभावतः उसमें कुछ चिड़चिड़ापन आ जाता है। मेरीडिथ ने अपनी पुस्तक "The Idea of Comedy" में लिखा है:—"If you detect the ridicule and your kindliness is chilled by it you are slipping into the grasp of satire"[1] अर्थात् अगर आप हास्यास्पद का इतना मज़ाक उड़ाते हैं कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाय तो आप का हास्य व्यंग्य की कोटि में आ जायगा।

व्यंग्यकार की परिभाषा करते हुए मेरीडिथ ने लिखा है—"The Satirist is a moral agent, often a social scavenger working on a storage of bile." [2] अर्थात् व्यंग्यकार एक सामाजिक ठेकेदार होता है, बहुधा वह एक सामाजिक सफाई करने वाला है जिसका कि काम गन्दगी के ढेर को साफ़ करना होता है। वास्तव में जब हास्य विशद आनन्द या रंजन को छोड़ प्रयोजननिष्ठ हो जाता है वहाँ वह व्यंग्य का मार्ग पकड़ लेता है। आलम्बन के प्रति तिरस्कार उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़ने वाला हास्य व्यंग्य कहलाता है। व्यंग्य इसलिए विशेषतः सामाजिक कुरीतियों, व्यवहारों या रूढ़िमुक्त परम्पराओं को हेय तथा हास्यास्पद रूप में रखने की चेष्टा करता है। व्यंग्य के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—(१) निन्दा, (२) सामाजिक हित, और (३) वर्तमान या जीवित लक्ष्य की सीमा। व्यंग्य में हास्य इतना कठोर हो जाता है कि कभी कभी वह हास्य की सीमा से बाहर निकल जाता है।

ए. निकाल ने लिखा है—"Satire can be so bitter that it ceases to be laughable in the very least. Satire falls heavily. It has no moral sense. It has no pity, no kindliness, no magnanimity. It lashes the physical appearance of person, sometimes with unmitigated cruelty. It attacks the character of men. It strikes at the manners of the age with a hand that spares not. [3]

---

1. Idea of Comedy—Meridith, page 79.
2. ——do—— „ „ 82.
3. An Introduction to Dramatic Theory— A. Nicol

ए. निकाल का आशय यह है कि व्यंग्य में नैतिकता का अभाव होता है, इसमें दया, करुणा, उदारता के लिए गुंजाइश नहीं होती। मनुष्य की शारीरिक असम्बद्धता, चारित्रिक असम्बद्धता एवं सामाजिक असम्बद्धता पर यह निर्भयता से प्रहार करता है। व्यंग्य की भाषा में गुदगुदी कम, तिक्तता अधिक रहती है।

"व्यंग्य के लिये यथार्थ ही यथेष्ट विषय है। पर जहाँ यथार्थ के फेर में पड़ कर लोग रक्ताल्प व्योरों को जुटाने में ही ऐतिहासिक साधुता का पाण्डित्य प्रदर्शन करने में ही रह जाते हैं वहां आलम्बनों को हम परिचित पाकर निंद्य तो समझ लेते हैं पर हँस नहीं पाते।"[१]

हिन्दी साहित्य में हास्य का यह प्रभेद प्रचुर मात्रा में मिलता है। धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य सुधारों के लिए इसका प्रारम्भ से ही प्रयोग किया गया है। आधुनिक काल में गद्य में विशेषत: नाटकों में इसका प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। रीतिकालीन "भड़ौवे" व्यंग्यात्मक ही होते थे। इनमें कवि अपने कंजूस आश्रयदाताओं की उपहासपूर्ण निन्दा किया करते थे। बिहारी का एक दोहा जिसमें व्यंग्य है, यहाँ देना असंगत न होगा—

"करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि,
रे गन्धी, मति अन्ध, तू अतर दिखावत काहि।"

वक्रोक्ति (Irony)

डा० नगेन्द्र ने 'Irony' का पर्यायवाची "वक्रोक्ति" शब्द निर्धारित करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि वक्रोक्ति से यहां तात्पर्य कुन्तल की वक्रीकृता उक्ति से नहीं वरन् वक्र उक्ति से है। जब किसी वाक्य को कहा किसी और प्रकार से जाय तथा उसका अर्थ दूसरा निकले वहाँ वक्रोक्ति होती है।

वक्रोक्ति बड़ी तीखी होती है। ए० निकाल ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में की है :—"In irony we pretend to believe what we do not believe, in humour we pretend to disbelieve what we actually believe."[२] अर्थात् वक्रोक्ति में जिस वस्तु में हम विश्वास नहीं करते उसमें विश्वास दिखाते हैं तथा हास्य में जिस वस्तु में हम वास्तव में विश्वास

१. हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पांडे, पृष्ठ १०२

2. An Introduction to Dramatic Theory—A. Nicol.

करते हैं उसमें अविश्वास दिखाते हैं। वक्रोक्ति एक प्रकार का बहुरूपिया है। अमृत में विष डालना या फूल में कीट बन कर पहुँचना इसी का काम है।

"मेरीडिथ" ने वक्रोति की परिभाषा इस प्रकार की है—

"If instead of falling foul of the ridiculous person with a satiric rod, to make him writhe and shriek aloud, you prefer to sting him under semi-caress, by which he shall in his anguish be rendered dubious, whether indeed anything has hurt him, you are an engine of Irony."[1]

अर्थात् यदि आप हास्यास्पद पर सीधा व्यंग्य बाण न छोड़ें वरन् उसे ऐसा उमेठ दें एवं किलकारी निकलवा दें, प्यार के आवरण में उसे डंक मारें जिससे वह अन्तर्द्वन्द में पड़ जाय कि वास्तव में किसी ने उस पर प्रहार किया है अथवा नहीं, तब आप वक्रोक्ति का उपयोग कर रहे हैं।

भारतीय उदाहरणों में मधुमक्खी इसका जीवित प्रतीक है। यद्यपि नाम मधुमक्खी है किन्तु इसका दंश कितना तीखा होता है। "विमाता" शब्द में माता तो लगा हुआ है किन्तु उसमें द्वेष की व्याधि भीतर छिपी हुई है।

"मेरीडिथ" ने इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—
"The Ironist is one thing or another, according to his caprice. Irony is the humour of Satire, it may be savage as in Swift, with a moral object or sedate as in Gibbon with a malicious. The foppish irony fretting to be seen, and the irony which leers that you shall not mistake its intention, are failures in Satire effect pretending to the treasures of ambiguity."[2]

इसका आशय यह है कि वक्रोतिकार जो कुछ लिखेगा अपनी मानसिक प्रवृत्ति से लिखेगा। वक्रोति व्यंग्य का हास है, यह "स्विफ्ट" की भांति कठोरतम भी हो सकता है जिसमें साथ में नैतिक लक्ष्य भी हो और "गिबन" की भांति गम्भीर भी हो सकता है जो द्वेषपूर्ण हो। एक वक्रोक्ति वह है जो कि ऊपर से दिखलाई देती है तथा दूसरी वह है जिसके उद्देश्य में तिरस्कार की भावना होती है तथा जो व्यंग्यात्मक उद्देश्य में असफल हो गई है तथा जिसमें भ्रम के खजाने हों।

---

1. The Idea of Comedy—Meridith, page 79.
2. ——do—— page 82.

"वर्गसाँ" ने 'Irony' की परिभाषा इस प्रकार की है :—

"Sometimes we state what ought to be done and pretend to believe that this is just what is actually being done; then we have irony......Irony is emphasised the higher we allow ourselves to be uplifted by the idea of good that ought to be, thus irony may grow so hot within us that it becomes a kind of high pressure eloquence."[1]

इसका आशय यह है कि कभी-कभी हम यह कहते हैं कि यह होना चाहिए और दिखाते भी हैं कि जो कुछ किया जा रहा है उसमें हमारा विश्वास भी है, वहाँ वक्रोति होती है—वक्रोक्ति में हमको ऊपर से ऊँचे उद्देश्य की भलाई दिखाने का बहाना करना पड़ता है, इस प्रकार वक्रोक्ति अन्दर से इतनी तीव्र हो सकती है कि हमें मालूम पड़े कि वह शक्तिशाली वक्तव्य है।

"वक्रोक्तिकार भी धनुष की भांति झूठी नम्रता में झुककर तीर की तरह चोट करता है इसमें स्तुति तथा निन्दा दोनों झूठी होती हैं। स्तुति, निन्दा तथा वक्रोक्ति में भेद ध्वनि का है, काकु का है। ध्वनि में ही अर्थ गूढ़ रहता है। वक्रोक्ति तथा सच्ची स्तुति या निन्दा में वही साम्य है जो कोयल और कौए में है। वक्रोक्ति का सच मानना विश्वासघात का आखेट बनना है।"[2]

प्रो० जगदीश पाण्डे ने अपनी पुस्तक "हास्य के सिद्धान्त" में वक्र-उक्ति के निम्न भेद किए हैं :—

(१) आधार के तिरोभाव से (२) विरोधाभास (३) व्याज-निंदा (४) द्विविधा, (५) व्याज स्तुति, (६) असंगति, (७) प्रत्यावर्त्तन, (८) ध्रुव विपर्यय व्यंग्य, (९) पृष्ठाघात की वक्रोति, (१०) अभिन्न हेतुक विभिन्नता, तुक विभिन्नता, (११) निंद्य की साधु स्तुति।[3]

वक्रोक्ति का उदाहरण नीचे दिया जाता है। लक्ष्मण तथा परशुराम का संवाद है—

"लखन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा।
तुम्हहि अछत को बरनहिं पारा॥

---

1. Laughter—Henry Bergson, Page 127
२. हास्य के सिद्धान्त तथा मानस में हास्य—प्रो० जगदीश पाण्डे
३. हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पाण्डे, पृष्ठ ९९

आपन मुँह तुम आपन करनी।
बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥
नहिं सन्तोष तो पुनि कछु कहहू।
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥"

—(रामचरित मानस)

परोडी (Parody)

पैरोडी में किसी भी विशिष्ट शैली या लेखक की ऐसी हास्यास्पद अनुकृति होती है कि वह गम्भीर भावों को परिहास में परिणित कर देती है। "पैरोडी" अँग्रेजी का शब्द है तथा अन्य शब्दों की भांति हिन्दी में स्वच्छता से उपयोग में लाया जा रहा है। कुछ लोगों ने इसका अनुवाद भी किया है, पर मूल शब्द को अपना लेने में लेखक कुछ हानि नहीं समझता। यह एक हास्यपूर्ण कला है। पैरोडी द्वारा नये कवियों की भद्दी तुकवन्दी की भी बड़ी अच्छी तरह खिल्ली उड़ाई जा सकती है। पैरोडी अनजाने में ही लेखक को यह बताती है कि उसकी शैली में क्या और कहाँ कमज़ोरी है ? इस प्रकार वह उसकी शैली को mannerism (कोरा कहने का ढंग) से बचाती है। यह साहित्यिक शिथिलता को नष्ट करने में एक साधक के रूप में काम में लाई जाती है।

आर्थर सिम्स Arthur Symons नामक एक विद्वान् ने लिखा है--

"Love and admire and respect the original. Admiration and laughter is the very essence of the act or art of Parody."

इसका आशय यह है कि मूल के प्रति प्रेम तथा आदर में कमी नहीं आनी चाहिए। प्रशंसा तथा हास्य पैरोडी की जान हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि पैरोडी गद्य तथा पद्य दोनों की हो सकती है किन्तु वास्तव में देखा जाय तो पद्य की पैरोडी ही अधिक सफल देखी गई है। Sir Arthur Quiller Covet ने एक स्थान में कहा है—"Parody is concerned with poetry and preferably great poetry alone." अर्थात् पैरोडी का सम्बन्ध कविता और विशेषत: उच्च कविता से ही है।

अच्छी पैरोडी का सौंदर्य उसकी मूल रचना से घनिष्टता में है। सबसे सरल पैरोडी शाब्दिक होती है जो प्रसाद-गुण-पूर्ण अत्यन्त प्रसिद्ध कविता को लेकर एक-दो शब्दों या पंक्तियों के परिवर्तन द्वारा की जाती है जिससे भिन्न

अर्थ मिले परन्तु मूल का रूप नष्ट न हो। शैली की पैरोडी उच्चकोटि की होती है। इस प्रकार "पैरोडी" तीन प्रकार की कही जा सकती है—(१) शाब्दिक, (२) आकार-प्रकार सम्बन्धी, (३) भावना सम्बन्धी।

अधिकतर प्रसिद्ध कविताओं की पैरोडी ही वांछनीय होती है जिसे लोग समझ लें।

पैरोडी का एक और भी कार्य है। हास्य उसका अस्त्र होने के कारण गम्भीर विषय के स्थान पर कुछ ऐसा हास्यास्पद विषय चुना जाता है जो यों ही सारी रचना को मज़ेदार और मजाकिया बना देता है। यह नया छाँटा हुआ विषय बहुधा ऐसा परिचित, सामान्य और घरेलू होता है कि उसके द्वारा समाज की किसी न किसी कुरीति पर भी लक्ष्य हो जाता है। इस तरह पैरोडी का सामाजिक पहलू भी है।

कवि पोप की "Rape of the Lock" तो महाकाव्य की शैली का अनुकरण करते हुए एक महाकाव्य की पैरोडी है जिसमें एक स्त्री के बालों की एक लट के काटे जाने का वर्णन इस भाँति किया गया है मानो कोई भारी संग्राम हो रहा हो। अंग्रेज़ी साहित्य को इस ग्रन्थ पर बड़ा अभिमान है।

यहां श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी की एक पैरोडी उदाहरण स्वरूप दी जाती है। यह पैरोडी गुप्त जी के प्रसिद्ध गीत "सखि वे मुझ से कह कर जाते" की है :—

"लखन सिनेमा पति गए, नहिं अचरज की बात,
पर चोरी चोरी गए, यही बड़ा आघात।
सखि वे मुझ से कहकर जाते।
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते।
कारण नहीं समझ में आता,
ले जाते तो क्या हो जाता।
शायद वे संकोच कर गए महँगाई के नाते।
बच्चों का यदि साथ न भाता,
मुझसे यह क्यों कहा न जाता।
"सैकिंड शो" के होने तक तो बच्चे भी सो जाते।
अन्य किसी के साथ गए वे,
क्या मुझसे मुख मोड़गए वे ?

मैं तो इसको भी सह लेती पतिव्रता के नाते।
सखि वे मुझसे कह कर जाते।"

प्रहसन (Farce)

इसको अँग्रेजी में Comedy कहते हैं। अंग्रेजी साहित्य में दुःखान्तक तथा सुखान्तक दो ही नाटक के भेद माने गये हैं। इन दोनों प्रकार के नाटकों में अधिकारी विद्वानों के विशालग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें इनका अत्यन्त सूक्ष्म एवं विश्लेष्णात्मक विवेचन किया गया है। जहाँ तक हम समझ सके हैं उसका सार यही है कि वह सुखात्मक नाटक जिसमें हास्य भी हो Comedy के अन्तर्गत आता है। हाल ही में दुःखान्तक प्रहसन Tragicomedy भी चले हैं जो विवादास्पद हैं और जिनका सम्वन्ध हमारी इस विवेचना से नहीं है।

हमने Comedy या Farce का पर्यायवाची शब्द प्रहसन इसीलिए रक्खा है कि प्रहसन का अर्थ अब संस्कृत की पारिभाषिक सीमा के अन्दर नहीं रह जाता है। हिन्दी में प्रहसन के अर्थ में किसी भी ऐसे नाटक को लिया जा सकता है जो हास्य और व्यंग्य के विचार से लिखा गया है। भारतेन्दु की "नाटक" नामक पुस्तिका में जो कि भारतीय नाट्य-शास्त्र के आधार पर लिखी गई है, प्रहसन की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"हास्य-रस का मुख्य खेल—नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिये किन्तु अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जाते।"[१]

"प्रहसन लिखने का उद्देश्य मनोरंजन भी है और धर्म के नाम पर पाखण्ड का मूलोच्छेदन भी। काने को भी "काना" कहने से काम नहीं बनता वरन् वह और बुरा मानता है। इसलिए समाज की बुराई को यदि केवल बुराईमात्र कहकर उससे आशा की जाय कि समाज उस बुराई को दूर कर देगा तो यह व्यर्थ है। व्यंग्य और वक्रता द्वारा इस प्रकार की बुराई को प्रकट करना एक प्रकार की कला है और बहुत ही उच्च कला है। इस में साँप भी मर जाता है और लकड़ी भी नहीं टूटती।"[२]

मैरीडिथ ने कामेडी के उद्गम के विषय में लिखा है:—

---

१. भारतेन्दु नाटकावली—पृष्ठ ७९३

२. हिन्दी नाटकों का इतिहास—डा० सोमनाथ, पृष्ठ ५३

"Comedy, we have to admit, was never one of the most honoured of the Muses. She was in her origin, short of slaughter, the loudest expression of little civilization of men."[1]

हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रहसन का कलाओं में कभी उच्च स्थान नहीं था । प्रारम्भ में ये हत्या से थोड़ी नीची वस्तु थी जिसमें अविकसित सभ्यता की प्रबल अभिव्यक्ति मिलती थी ।

मैरीडिथ ने प्रहसन की आत्मा भाव को माना है । प्रहसन के लिए वास्तविक संसार का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक माना गया है ।

व्यंग्य तथा प्रहसन में अन्तर करते हुए उसने लिखा है :—

"The laughter of satire is a blow in the back or the face. The laughter of comedy is impersonal and of unrivalled politeness, nearer a smile ; often no more than a smile. It laughs through the mind, for the mind directs it, and it might be called the humour of the mind.[2]

इसका आशय यह है कि व्यंग्य का हास्य तो किसी के मुंह अथवा पीठ पर घाव के समान है । प्रहसन का हास्य व्यक्तिगत नहीं होता, उसमें असाधारण नम्रता होती है जो अधिक से अधिक एक मुस्कान भर ला देती है । प्रहसन का हास्य वाहिक हास्य होता है चूंकि बुद्धि से इसका संचारण होता है इसलिए इसे मस्तिष्क का हास्य कहा जा सकता है ।

प्रहसन से अनेक लाभ हैं । आशा का संचार होता है, थकान दूर होती है, अहंकार के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है तथा व्यक्तिगत दर्प में कोमलता आ जाती है । मनुष्य समाज में रहने के योग्य हो जाता है, वह अपने स्वभाव तथा वेषभूषा की विकृतियों के प्रति सावधान हो जाता है, उसके स्वभाव में यदि अकेलेपन की आदत है तो वह सामाजिकता-पसंद हो जाता है ।

'मैरीडिथ' की भाँति 'बर्गसां' ने भी "कामेडी" का विशद वर्णन किया है । प्रहसन में चरित्र चित्रण का विवेचन करते हुए उसने लिखा है—

"Comedy depicts character we have already come across and shall meet with again. It takes notes of similarities. It aims at placing types before our eyes. It even creates new types, if necessary. In this respect it forms a contrast to all the other arts."[3]

---

1. The Idea of Comedy—Meridith, Page 11
2. The Idea of Comedy—Meridith, Page 8
3. Laughter—Bergson, page 163

अर्थात प्रहसन में हमारे जाने पहचाने चरित्रों का ही चित्रण होता है। साम्य का इसमें सदैव ध्यान रक्खा जाता है। यह विभिन्न प्रकार के वर्गों को हमारे सम्मुख रखता है। कभी-कभी नये वर्गों का सृजन भी इसमें किया जाता है, इस भांति इसमें अन्य कलाओं से विभिन्नता स्पष्ट प्रतीत होती है।

बर्गसाँ ने परिस्थिति के हास्य (Comic in Situation), शब्द जनित हास्य (Comic in words) तथा चरित्रों द्वारा हास्य (Comic in character) पर विषद प्रकाश डाला है। इसके पूर्व इसने हास्य तत्व एवं हास्य के भिन्न प्रकारों पर विशद अलोचना की है। बर्गसाँ का लिखने का सार यही है कि हास्य ((Humour) वैदग्ध्य (Wit) तथा भ्रान्त (Nonsense) तीनों का प्रयोग प्रहसन में किया जाता है। हास्य का क्षेत्र कार्य, अवस्था और चरित्र है। इन्हीं कार्य अवस्था और चरित्र से हँसी की वस्तु प्रकाश में लाना प्रहसन का मुख्य कार्य है। वाग्वैदग्ध्य का मुख्य क्षेत्र शब्दावली तथा वाणी है। यह सदैव मनुष्य के शब्दों तथा अभिप्राय में हँसाने वाली सामग्री ढूंढ़ निकालता है। भ्रान्त या निरर्थक (Phantasy) (अतिशयोक्ति तथा उन्मत्त कल्पना) के द्वारा मनुष्य को हँसाने की योजना करता है।

'कामेडी' लेखक बुराइयों की दुनियाँ में रहता है, जीवन के प्रपंचों, अनाचार और अत्याचार को देखता है फिर भी निरपेक्ष होकर कलात्मक ढंग से, विनोद के भाव से दुनिया का चित्र खींचता है। स्वानुभूति और निरपेक्षता तथा वाह्य रूप और वास्तविकता के द्वन्दों का प्रत्येक हास्य-लेखक प्रयोग करता है। कामेडी का हास्य अवैक्तिक, सार्वजनिक और शिष्ट होता है।

ए. निकाल ने जो कि "कामेडी" पर अधिकारी विद्वान माने जाते हैं, अपनी पुस्तक "Introduction to Dramatic Theory" में प्रहसन में चार प्रकार की हास्य-अभिव्यक्ति मानी है—"There are four types of comic expression used by dramatists, the unconscious ludicrous, the conscious wit, humour and satire." [1]

उनके अनुसार प्रहसन में इन चारों का मिश्रण भी हो सकता है। हास्यास्पद का आधार केवल एक हास्य तत्व ही नहीं होता बल्कि इनका ऐसा सम्मिश्रण होता है कि उनको अलग-अलग करना कठिन होता है। हसन का यद्यपि हास्य एक आवश्यक गुण है तथापि प्रहसन एक मात्र हास्य पर ही

1. An Introduction to Dramatic Theory—A. Nicol.

आधारित नहीं होता। इनमें हास्य एवं व्यंग्य स्पष्ट भी हो सकता है तथा गुप्त भी।

ए० निकाल के अनुसार प्रहसनों के भेद ये हैं—

(1) Farce. (2) The Comedy of Romance. (3) Comedy of Satire. (4) Comedy of Wit. (5) Gentle Comedy. (6) The Comedy of Intrigues. (7) Sentimental Comedy. (8) Tragi-Comedy.

अर्थात् (१) प्रहसन, (२) शृङ्गार रस प्रहसन, (३) व्यंग्य-प्रधान प्रहसन, (४) वचन विदग्धता-प्रधान प्रहसन, (५) कोमलता-प्रधान प्रहसन, (६) अन्तर्द्वन्द प्रधान प्रहसन, (७) भावुकता-प्रधान प्रहसन, (८) करुणरस-प्रधान प्रहसन।

हिन्दी साहित्य में प्रहसन भारतेन्दु काल से आरम्भ हुए हैं। अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम्, उदाहरण स्वरूप दिए जा सकते हैं। आजकल के प्रहसन लेखकों में जी० पी० श्रीवास्तव, उपेन्द्रनाथ अश्क, डा० रामकुमार वर्मा आदि हैं।

हिन्दी के प्रहसनों पर विवेचन आगे के अध्याय में किया जायेगा।

: ३ :

हास्य का रहस्य और उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

हम क्यों हँसते हैं ? हँसी किन कारणों से आती है ? इन प्रश्नों का उत्तर जटिल है। साधारणत: हँसी अनेक कारणों से आ सकती है। हास्यास्पद वस्तु के देखने से, आनन्द का अनुभव करने से तथा किसी के द्वारा गुलगुली मचाने से हँसी उत्पन्न हो सकती है। गुलगुली मचाने से जो हँसी उत्पन्न होती है वह भौतिक है किन्तु वास्तविक हँसी मानसिक होती है। जो कि शब्द, दृश्य, इत्यादि द्वारा मानसिक स्पर्श से सम्बन्धित है। हास्य का सम्बन्ध हास्यमय परिस्थिति के ज्ञान से है। इसमें बुद्धि से काम लेना पड़ता है। हँसना एक क्रियात्मक मानसिक चेष्टा है। यह एक मूल प्रवृत्ति है। प्रत्येक मूल प्रवृत्ति से ही किसी उद्वेग का सम्बन्ध रहता है, हँसने के साथ खुशी का सम्बन्ध है इसलिए खुशी हँसने के मूल कारणों में से मानी जाती है।

"हाब्स" महाशय के अनुसार—**"हँसी अपने गौरव की अनुभूति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है।"**[1] जब हम दूसरों को किसी मूर्खता में फँसे देखते हैं तो हम अपने बड़प्पन का अनुभव करते हैं जिससे हमें प्रसन्नता होती है। इस प्रसन्नता का प्रदर्शन हम हँसी द्वारा करते हैं। वास्तव में यह सिद्धान्त एकांगी है। मनुष्य इतना दुष्ट प्रकृति का जीव नहीं जो सदा ही दूसरों के पतन में अपने गुरुत्व का अनुभव करे। इससे तो यह प्रमाणित होता है कि हम अपने शत्रुओं की भूलों पर खूब हँसेंगे और अपने मित्रों की भूलों पर कदापि नही परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। शत्रुओं की भूलें मनुष्य को प्रसन्न अवश्य करती हैं परन्तु हँसी नहीं लातीं, इसके विपरीत हँसी उन्हीं लोगों की भूलों पर आती है जिनसे हमें सहानुभूति है। हमें उन परिस्थितियों के चित्रण पर हँसी आती है जिनमें हम आत्मीयता का अनुभव करते हैं। यदि हम किसी पात्र के

---

1. The passion of laughter is nothing else but sudden glory arising from a sudden comparison with the infirmity of others, or with our own formerly. —**Hobbes.**

साथ आत्मीयता अनुभव नहीं कर पाते तो हमें उसकी भूलों पर हँसी नहीं वरन् क्रोध आता है। जहाँ तक सहानुभूति का सम्बन्ध है वहीं तक हँसी है किन्तु जब सहानुभूति जाती रही तो दूसरे संवेग भले ही हृदय में आवे, हँसी नहीं आवेगी। सहानुभूति की मात्रा अधिक होने पर कोई परिस्थिति हँसी का कारण नहीं बन सकती। यदि कोई लड़का कीचड़ में फिसल कर गिर पड़ता है तो आस पास के लड़के हँस पड़ते हैं किन्तु उस लड़के के भाई को कदापि हँसी न आवेगी।

दूसरा सिद्धान्त 'स्पेन्सर' का **असंगति के निरीक्षण** का है। जिसके अनुसार हमारी चेतना का बड़ी वस्तु से छोटी की ओर जाना ही हास्य का मूल कारण है। दूसरे शब्दों में हास्य का कारण हमारी चेतना की, उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर उन्मुख होने वाली गति है। हास्य की स्वाभाविक उत्पत्ति उस समय होती है जब हमारी चेतना बड़ी चीज़ से छोटी चीज़ की ओर आकर्षित होती है जिसे हम अधोमुख असंगति कहते हैं। इसके विपरीत उत्तरोत्तर असंगति होती है जिससे हास्य के भाव की उत्पत्ति न होकर आश्चर्य भाव की उत्पत्ति होती है।

वस्तुत: 'हाब्स' द्वारा जो कारण दिया गया है उसमें और "स्पेन्सर" द्वारा दिये गये कारण में कोई ऊपरी भेद दिखाई नहीं देता। किन्तु तात्विक दृष्टि से गहराई में जाकर विश्लेषण किया जाय तो अन्तर स्पष्ट हो जायगा। 'हाब्स' ने हास्य का कारण उस उल्लास को माना है जो अपने उत्कर्ष के पूर्व कमज़ोरियों की तुलना करने पर होता है। जब कि 'स्पेन्सर' उल्लास के विषय में मौन है। उनकी दृष्टि से हास्य का कारण चेतना की परिवर्तित गति है। यद्यपि यह सही है कि असंगित सदैव हास्य का कारण नहीं होती। जीवन में कई असंगतियाँ ऐसी होती हैं जो हास्य को जन्म न देकर अन्य दूसरे भावों की सृष्टि करती हैं। सज्जन मनुष्य पर भी इसी समाज में अत्याचार होते हैं और शिक्षित व्यक्ति भी इसी समाज में बेकार फिरते नज़र आते हैं। किन्तु इन असंगतियों के बावजूद भी हमारे क्रोध तथा शोक के भाव ही उद्दीप्त होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि असंगति ही सदैव हास्य का कारण नहीं होती।

हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि हास्य के कारण का सम्बन्ध सामाजिक भावना से है। किसी एम० ए० को बेकार फिरते देख, सम्भव है हमारे हृदय में उस असंगति से करुणा की उत्पत्ति हो किन्तु किसी पूंजीपति की मटके सी तोंद देख कर हम हँसे बिना नहीं रह सकते।

"हैनरी बर्गसाँ" ने अपनी पुस्तक "Laughter" में लिखा है कि जब मनुष्य अपनी नैसर्गिक स्वतन्त्रता को छोड़ कर यंत्र की तरह काम करने लगता है तब हास्य का विषय बन जाता है। जैसे यदि कोई मनुष्य रास्ता चलते-चलते फिसल पड़े तो वह लोगों की हँसी का भाजन बन जाता है। मनुष्य तभी गिरता है जब वह अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता को भूलकर जड़ मशीन की भांति आचरण करने लगता है। यह भी एक तरह की विपरीतता है। मनुष्य अपने स्वभाव से विपरीत चलता है।[1] इसके अतिरिक्त बर्गसाँ ने हास्य के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि हास्य के आलम्बन को समाज प्रिय न होना चाहिये और घटना शब्दावली तथा पात्रों में यान्त्रिक क्रियाओं का होना आवश्यक है। "वर्गसाँ" का मत सत्य के अधिक समीप जान पड़ता है। हास्य की भावना समष्टि-निष्ट है। अस्तु हास्य के आलम्बन के लिए विशेष शर्त है कि वह समाज प्रिय न हो। यदि आलम्बन को समाजप्रियता प्राप्त हुई तो अनेकों असंगतियों के बावजूद भी वह हमारे हास्य उद्रेक में सहायक न हो सकेगा[2] उदाहरण के लिये जायसी काने तथा बहरे थे। एक बार उन्हें देख कर एक राजा हँसा भी था। जायसी ने यह उत्तर दिया, "मोहिं का हँसेसि कि

---

1. "A man running along the streets, stumbles and falls; the passers-by burst out laughing. They would not laugh at him I imagine, could they suppose that the whim had suddenly seized him to sit down on the ground. We laugh because his sitting down is unvoluntary.......

Now, take the case of a person who attends to the petty occupations of his everyday life with mathematical precision....

The laughable elements in both cases consists of a certain machanical inelasticity, just where one would expect to find the wide awake adaptability and the living pliableness of a human being."

—**"Laughter" by Henry Bergson, Page 9 & 10.**

2. Society will therefore be suspicious of all inelasticity of character, of mind and even of body, because it is the possible sign of a slumbering activity as well as of an activity with separatist tendencies that inclines to severe from the common centre round which society gravitates: In short, because it is the sign of an eccentricity.

—**"Laughter" by Henry Bergson, Page 10.**

कोहरहि" राजा लज्जित हुआ और तुरन्त क्षमा मांगने लगा। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि समाजप्रिय व्यक्ति विविध असंगतियों के होते हुए भी हास्य का आलम्बन नहीं बन सकता। और बर्गसाँ इस सिद्धान्त को पहचान सके थे। बर्गसाँ ने दूसरा कारण दिया है आलम्बन का अचेतन होना।[1] उदाहरण के लिये कालेज में विद्यार्थी जब अगली बैंच वाले लड़के की पीठ पर "मैं गधा हूँ" लिख कर कागज चिपका देते हैं और विद्यार्थी इसे बिना जाने स्वच्छन्द रूप से सर्वत्र घूमता रहता है तो हँसी के फव्वारे छूटने लगते हैं।

बर्गसाँ ने तीसरा कारण याँत्रिक क्रिया बतलाया है। यह यांत्रिक क्रिया वाणीगत भी हो सकती है और शारीरिक भी। जब व्यक्ति अपने तकिया कलाम का प्रयोग करते हैं तो यही यांत्रिक क्रिया हमारे हास्य का कारण होती हैं। इसी प्रकार दर्शन के प्रोफेसर जब विवाह-शादी के अवसर पर भी सांख्य और अद्वैत पर भाषण देने लगते हैं तो बराबर हास्य का उद्रेक हो ही जाता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले हास्य का मूल कारण प्रोफेसर साहब के जीवन का यंत्रवत होना ही है। ये व्यक्ति जीवन के एक ही क्षेत्र में घिसते-घिसते मशीन की तरह जड़ हो गये हैं। बर्गसाँ ने विपरीतता सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया है। जब चोर के घर में सेंध लगती है तो हँसी आये बिना नहीं रहती।

शरीर वैज्ञानिकों के मतानुसार हास्य का मुख्य कारण शरीर की अतिरिक्त शक्ति है। इसके अनुसार खेलने के समान हँसना भी एक ऐसी स्वाभाविक क्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपने शरीर तथा मस्तिष्क में इकट्ठी आवश्यकता से अधिक शक्ति का अपव्यय करता है। जिस प्रकार एक इंजन के बायलर में जब बहुत भाप जमा हो जाती है तो सेफ्टी बाल्व को खोल कर उस अनावश्यक शक्ति को निकाल दिया जाता है। उसी तरह हँसी के द्वारा हम अपनी उस अधिक शक्ति को निकाल देते हैं जिसको हमारा शरीर या मन वहन नहीं कर सकता है। इस शक्ति के न निकालने से अनेक प्रकार की मानसिक अस्वस्थता पैदा हो सकती है। इस शक्ति के निकालने से हम उस अस्वस्थता से बच सकते हैं।

---

1. To realise this more fully, it need only be noted that a comic character is generally comic in proposition to his ignorance of himself. The comic person is unconscious.

—**"Laughter" by Henry Bergson, Page 16.**

आजकल के मनोविश्लेषण शास्त्रियों के मत से हास्य का मूल उपचेतना में दबे हुए भावों में है। जैसे हम किसी से घृणा करते हैं सामाजिक शिष्टाचारवश हम घृणा का प्रदर्शन खुले आम नहीं कर सकते, वह भाव दबा रहता है किन्तु उपहास में एक सुन्दर वेष धारण कर बाहर आ जाता है जैसे किसी पटवारी की कलम गिर गई तो एक गरीब किसान के मुंह से सहसा निकल पड़ा,—"मुंशी जी, आपकी छुरी गिर पड़ी है।" ज़मीदार से हँसी में लोग जिमीदार कह देते हैं और कवि जी को कपि जी कह देते हैं। ये सब बातें दबी हुई घृणा की ही परिचायक हैं।

"मेकडूगल" के अनुसार हास्य मनुष्य को अति दुःख से बचाए रखने का एक प्राकृतिक विधान है। उनका कहना है कि हमारे अन्दर प्रत्येक प्राणी के मूलभूत सहानुभूति रहती है। जब हम कोई हास्यास्पद वस्तु देखते हैं तो वह दबी हुई सहानुभूति प्रकट हो जातीं है और हम को हास्यास्पद स्थिति में पड़े हुए व्यक्ति को देख कर दुखित होने से बचाती है। प्रकृति ने हमें ऐसी शक्ति दी है जिससे या तो हम हास्य के आलम्बन के साथ हँसने लगते हैं अथवा उस पर हँसने लगते हैं। यदि प्रकृति ने हमें हँसी न दी होती तो हास्य के आलम्बनों को देख कर हम रो पड़ते। अनेक मनुष्यों का मनमुटाव समाप्त हो जाता है जब उनको एक साथ मिलकर हँसने का अवसर मिलता है।

फ्रायड के अनुसार हास्य की उत्पत्ति मस्तिष्क के उपचेतन भाग से होती है। उनका कथन है कि काम वासना और विशेष कर रति ही मनुष्य की प्रेरक शक्ति होती है क्योंकि सामाजिक कारणों से अथवा अन्य परिस्थितियों के कारण व्यक्ति की कामना दमित रहती है और इस कारण बहुत सी मानसिक शक्ति दमित होकर उपचेतन मस्तिष्क में इकट्ठी होती रहती हैं। बाद में यदि रति से सम्बन्धित कोई भी कार्य आता है तो वह दमित शक्ति ही हास्य के रूप में प्रकट होती दिखाई देती है। किन्तु यह एक भ्रान्ति है। ऊपर बताये अन्य सिद्धान्तों के आगे फ्रायड का सिद्धान्त तथ्यहीन एवं अतार्किक प्रमाणित होता है।

यद्यपि हमारे पुराने आचार्यों ने हास्य रस का विवेचन अधिक नहीं किया है किन्तु इतने महान वैज्ञानिकों के हास्य के विषय में अनुसंधान करने के बाद भी कोई नई वस्तु नहीं दिखलाई देती; यद्यपि मनोविज्ञान के नाम पर उनकी विवेचना को कितना भी महत्व दिया जाय।

हाब्स, हरबर्ट स्पेन्सर, बर्गसाँ, मेकडूगल, फ्रायड, आदि के हास्य सम्बन्धी सिद्धान्तों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से कोई भी सिद्धान्त पूर्ण नहीं है वरन् जिस सिद्धान्त ने भी पूर्णता का दावा किया है वह भी हास्यास्पद हो जाता है। क्योंकि बर्गसाँ के अनुसार हास्य एक ऐसी मानवीय प्रवृत्ति है जिसकी सम्पूर्ण जीवन में गति है, अतः जीवन के विकास के साथ ही हास्य के क्षेत्र में भी विकास हुआ है और मानवता के विकास के साथ आज हमारे हास्य का दृष्टिकोण भी बदल गया है। आज किसी का अपकर्ष देख कर हम में हास्य की उद्भूति नहीं होती परन्तु दो सदी पूर्व मानव उससे अपने उत्कर्ष की भावना का अनुभव कर हँसे बिना नहीं रहता था। आज प्रत्येक प्रकार की असंगति हमारे हास्य का कारण नहीं होती। किसी युग का मानव काने, लँगड़े, अपाहिजों को देख कर हँस सकता था पर आज वे हमारी करुणा के आलम्बन हैं। अतः क्रमशः मानव जीवन के विकास के साथ ही हमारी हास्य सम्बन्धी धारणाओं में भी परिवर्तन होता जाता है। इसीलिये आज के मानव के हास्य के आलम्बन अब वह नहीं रहे जो सदियों पहले थे।

हास्योद्रेक के मूल कारणों की विवेचना करने के बाद हमें यह देखना है कि हास्य की अभिव्यक्ति के कारण क्या हैं? हास्य में अभिव्यक्ति का स्वरूप भी आलम्बन की परिस्थिति पर निर्भर है क्योंकि **हास्य आलम्बन प्रधान है**। अतः सभी सिद्धान्तों का समन्वय करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हास्य के उद्रेक के प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं—

(१) शारीरिक गुण, (२) मानसिक गुण,
(३) घटना कार्य कलाप, (४) रहन सहन, (५) शब्दावली।

इसीलिये इन रूपों को सम्मुख रखते हुए भारतीय आचार्य का यह कथन **"विकृता कृति वाग्विशेषरात्मनोऽथ परस्य वा"** कितना उपयुक्त लगता है शब्दावली वेश-भूषा तथा क्रिया-कलाप के अन्तर्गत इन सब का समाहार हो जाता है। इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से भारतीय दृष्टिकोण अपने में पूर्ण है।

●

: ४ :

संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में हास्य की परम्पराए

संस्कृत साहित्य में शृङ्गार-रस प्रधान है। नवरसों में हास्य-रस की गणना अवश्य की है किन्तु उसे सदैव गौण माना है। धर्मशास्त्र के रचयिता और दर्शनशास्त्र के कर्ता हास्य-विनोद से तो दूर रहेंगे ही, क्योंकि परमात्मा, जीवात्मा, मोक्ष, ज्ञान और वैराग्य जैसे विषयों का चिन्तन या विवेचन हँसी खुशी को पास ही क्यों फटकने देगा? फिर भी हँसना तो मनुष्य का स्वभाव है और अनादिकाल से वह हँसता आया है। कैसी भी कृति की रचना वह क्यों न करे, हँसने का कोई न कोई बहाना ढूंढ ही लेगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि संस्कृत के विशाल और गम्भीर समुद्र में हास्य, व्यंग्य या विनोद के यत्र-तत्र बिखरे स्वाँतिकण उसमें सरसता और सरलता का संचार कर दें। कहीं अनूठे सादृश्य से और कहीं श्लिष्ट पदों के प्रयोग से हास्य और विनोद की अभिनव-सृष्टि करने की सफल चेष्टा की गई है।

वैदिक साहित्य में

ऋग्वेद में ऋषि-मुनियों की मेढ़कों से तुलना की गई है। यह कवि जब मंत्रों के घोष के साथ यज्ञ कराने वाले ऋषि-मुनियों को देखता है तब उसे बरसात में टर्र-टर्र मचाने वाले मेंढकों की याद आ जाती है। चार्वाक-दर्शन के प्रचारकों ने धार्मिक रूढ़ियों की छीछालेदर करने के लिए चुभते हुए व्यंग्य का आश्रय लिया है—"खाओ, पीओ और मौज करो—उधार लेकर घी छको, क्योंकि देह के भस्मीभूत हो जाने पर फिर लौट कर आना कहां से होगा?"

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्,
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥"

पितरों के लिए किए जाने वाले श्राद्ध का मखौल उड़ाते हुए चार्वाक कहते हैं—"भला मरा हुआ मनुष्य क्या खाएगा? यदि एक का खाया हुआ

अन्न दूसरे के शरीर में चला जाता हो तो परदेश में जाने वालों के लिए भी श्राद्ध करना चाहिए, उनको रास्ते के लिए भोजन बांधने की कोई आवश्यकता नहीं ।"

वाल्मीकि-रामायण तथा महाभारत में

मन्थरा के कुचक्र में फंसने के बाद कैकेयी ने उस कुबड़ी के सौन्दर्य और बुद्धि की जो व्याजस्तुति की वह कम मनोरंजक नहीं—

"अन्य तेऽहं प्रमोक्ष्यामि मालां कुब्जे हिरण्यर्याम् ॥४७॥

अभिषक्ते चभरते राघवेच वनं गते ।
जाप्वेन च सुवर्णेन सुनिष्टप्तेन सुन्दरि ॥४८॥

लब्धार्था च प्रतीताच लेपयिष्यामि ते स्थग्र ।
मुखे च तिलकं चित्रं जात रूप मयं शुभम् ॥४९॥

कारपिष्यामि ते कुब्जे शुभान्याभरणानिच ।
परिधाय शुभे वस्त्रे देवतेव चरिष्यसि ॥५०॥

चन्द्र माह्वयमानेन मुखेना प्रतिमानता ।
गमिष्यसि गतिं मुख्यांगर्वयन्ती द्विषज्जने" ॥५१॥ [१]

"यदि मेरा मनोरथ पूरा हुआ तो मै तेरे लिए अनेक सुन्दर-सुन्दर गहिने बनवा दूंगी, तेरे कूबड़ पर उत्तम चन्दन का लेप करके उसे छिपा दूगी और अच्छे-अच्छे वस्त्र दूगी जिन्हें पहन कर तू देवाङ्गना की भांति विचरना । चन्द्रमा से स्पर्धा करने वाले अपने मुखमण्डल के लिए सर्वाग्रणी बन कर शत्रुओं का मान-मर्दन करती हुई गर्वपूर्वक इठलाना ।"

रामायण की अपेक्षा महाभारत में व्यंग्य-हास्य के अपेक्षाकृत अधिक स्थल हैं क्योंकि रामायण में जहां राजकीय जीवन से अधिक सम्बद्ध है वहाँ महाभारत लोक जीवन से । उसमें वेश-विपर्यय का आशय लेकर अनेक विनोद-पूर्ण और उलझन भरी घटनाएँ उपस्थित की गई हैं । स्त्री शिखंडिनी का पुरुष वेष में राजकन्या से विवाह करना, विराट के राजमहल में द्रौपदी के रूप में भीम द्वारा कीचक का स्वागत करना, अश्विनी कुमारों के च्यवन से रूप में सुकन्या को असमंजस में डालना, गौतम के वेष में इन्द्र का अहल्या से रमण करना और नल बनकर चारों लोकपालों का दमयन्ती को भ्रान्त करना पाठकों के

१. वाल्मीकि रामायण—अयोध्याकाण्ड ९ सर्ग

लिए विनोद की प्रचुर सामग्री उपस्थित करते हैं। शत्रुपक्ष के वीरों में चुभते हुए व्यंग्य से भरी दर्पपूर्ण उक्तियाँ तो महाभारत में सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं।

नाटकों में

संस्कृत के अधिकांश नाटकों में विदूषक के माध्यम से हास्य की सृष्टि की गई है। महाकवि कालिदास की अमर कृति "अभिज्ञान शाकुन्तल" मे विदूषक के पेटूपन का चित्रण देखिये—

"राजा—**विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्माणि सहायेन भवितव्यम्।**

विदूषक—**किं मोदअखण्डिआए। तेण हि अअं सुगहीदो खणो**
(किं मोदक खण्डिकायाम्। तेनह्यं सुगृहीतः क्षणः)"[1]

अर्थात्

राजा—**देखो, विश्राम कर चुको तो आकर मेरे भी एक काम में सहायता देना। और वह काम ऐसा होगा जिसमें तुम्हें कहीं आना जाना नहीं पड़ेगा।**

विदूषक—**क्या लड्डू खाने हैं? तब उसके लिये इससे बढ़ कर और कौनसा ठीक अवसर हो सकता है?**

इसी प्रकार "विक्रमोर्वशीय" नाटक में जब राजा उर्वशी के प्रेम में इतना आबद्ध हो जाता है कि अपनी पत्नी काशी नरेश की पुत्री को छोड़ देता है तब राजा पर विदूषक व्यंग्य करता है—

"राजा—**(आसनमुपेत्य) वयस्य न खलु दूरं गता देवी।**

विदूषक—**मण विस्सद्धं जं सि वत्तुकामो। असज्भोत्ति वेज्जेण आदुरो विअ सेरं मुत्तो भवं तत्तहोदीए। (भण विश्रब्धं यदसि वक्तुकामः। असाध्य इति वैद्येनातुर इव स्वैरं मुक्तो भवास्तत्र भवत्या।**"[2]

अर्थात्

"राजा—**(अपने आसन पर बैठकर) वयस्य! अभी देवी दूर तो नहीं पहुँची होंगी।**

---

१. अभिज्ञान शकुन्तला—सम्पादक पं० सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २१

२. विक्रमोर्वशीयम्—कालिदास—सम्पादक पं०सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १४५

विदूषक—जो कहना हो जी खोलकर कह डालो। जैसे रोगी को असाध्य समझ कर वैद्य उसे छोड़ देता है वैसे ही आपको भी देवी ने यह समझ कर छोड़ दिया कि अब आप सुधर नहीं सकते।"

इसी प्रकार शूद्रक के "मृच्छकटिक" नाटक में हास्यरस का अनूठा चित्रण हुआ है। नाटक के नायक चारुदत्त जब विदूषक के ब्राह्मण होने के कारण चरणोदक देने को कहता है तब विदूषक कितना हास्यपूर्ण उत्तर देता है —

"चारुदत्तः—दीवतां ब्राह्मणस्य पादोदकम्।

विदूषकः—किं मम पादोदएहिं। भूमिए ज्जेव मए ताडिदगद्दहेण विअ पुणोवि लोट्टिदव्वम्।"[1]

अर्थात्

"चारुदत्त—ब्राह्मण को चरणोदक दो।

विदूषक—मेरे चरणोदक से क्या लाभ है? मुझे गधे की भाँति जमीन में ही लोटना है।"

महाकवि भवभूति के "उत्तर-रामचरित" नाटक में लक्ष्मण के पुत्र जब रामचन्द्र जी के यश का वर्णन करते हैं तब लव की व्यंग्योक्ति दर्शनीय है —

"लव—कोहि रघुपतेश्चरितं च न जानाति, यदि नाम किंचिदस्ति वक्तव्यम्। अथवा शान्तम्,—

वृद्धास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते
सुन्दस्त्री मथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हिते
यानि त्रीण्यकुतो मुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधनो
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने यत्राप्यमिज्ञोजनः॥"[2]

अर्थात्

"रामचन्द्र जी वयोवृद्ध हैं। अतः उनके चरित्र की आलोचना उचित नहीं। उसके विषय में क्या कहा जाए? सुन्द की अबला स्त्री ताड़का को मारकर भी उनके धवल यश में बट्टा नहीं लगा और वह संसार में अब भी महापुरुष

---

१. मृच्छकटिक—शूद्रक—सम्पादक काशीनाथ पांडुरंग, पृष्ठ ७१
२. उत्तररामचरित—भवभूति—सम्पादक–नारायण राम आचार्य, पृष्ठ १४३

माने जाते हैं। खर राक्षस से युद्ध करते समय वह जो तीन डग पीछे हटे थे, अथवा इन्द्र के पुत्र बाली को मारने में उन्होंने जिस कौशल का आश्रय लिया था उन सभी बातों से सारा संसार भली भांति परिचित है।"

भवभूति ने अपने नाटकों में जहाँ कहीं हास्य की अवतारणा की है वहाँ उनका हास्य बड़ा ही संयत शिष्ट एवं परिष्कृत रुचि का परिचायक हुआ है। उनका गम्भीर हास्य स्मित की सीमा का उल्लंघन नहीं करता—हृदय में एक कोमल गुदगुदी सी पैदा करके अपने वैदग्ध्य मात्र से मुग्ध कर देता है। उनका हास्य अंग वाणी वा वेश की विकृति से उत्पन्न न होकर बौद्धिक विनोद पर आलम्बित रहता है। उनके एक शिष्ट हास्य का और उदाहरण देखिए। सीता चित्र में उर्मिला की ओर संकेत करके लक्ष्मण से विनोद करती है —

"वत्स इयमपरा का ?" (वत्स, यह दूसरी कौन है ?)

किन्तु यह परिहास भी सीता की मातृत्व-भावना के सर्वथा अनुकूल है।

"वेणीसंहार" में चार्वाक राक्षस के अनर्गल संदेश द्वारा धीरोदत्त युधिष्ठिर का एक प्रकार से उपहास किया गया है। अश्वत्थामा की भावुकता और ब्राह्मणोचित तेज तथा कर्ण की कटूक्ति और व्यंग्य इनका तुलनात्मक चित्रण भी सुन्दर हुआ है।

संस्कृत गद्य लेखकों में 'दण्डी' ने हास्य की अच्छी सृष्टि की है। कहीं शिष्ट हास्य और कही मधुर व्यंग्य का इन्होंने आश्रय लिया है। एक अनूठी व्यंग्यात्मक शैली में इन्होंने दम्भी तपस्वियों, कपटी ब्राह्मणों, धूर्त कुटनियों, और हृदयहीन वेश्याओं का खूब भण्डाफोड़ किया है। बाण में भी परिहास का अभाव नही। द्रविड़ यति के वर्णन में उनकी परिहास प्रियता दर्शनीय है।

काव्य शास्त्रों में

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के हास्य रस के जो उदाहरण दिए हैं वह सुन्दर हैं—

"गुरोर्गिरः पंच दिनान्यधीत्य वेदान्त शास्त्राणि दिनत्रयं च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान् समागता कुक्कुट मिश्र पादाः ॥"[1]

अर्थात्—"यह देखिये, कुक्कुट मिश्र आये हैं। इन्होंने गुरु से कुल जमा पाँच दिन शिक्षा पाई है। सारा वेदान्त शास्त्र तीन दिन में पढ़ा है और तर्क शास्त्र तो फूल की तरह सूंघ डाला है।"

१. साहित्य दर्पण—विश्वनाथ, पृष्ठ १५६

"श्री तातपादैर्विहिते निबन्धे निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा,
अङ्गं गवां पूर्व महो पवित्रं न वा कथं रासभधर्म पत्न्याः ।"[१]

अर्थात्—"हमारे पिता ने अपनी पुस्तक में एक नई युक्ति रक्खी है, (वे कहते हैं) गौ का अङ्ग तो अब तक पवित्र माना ही जाता था, पर आगे से गधी भी क्यों न वैसे ही पवित्र मानी जाय ?"

आचार्य मम्मट ने "काव्य-प्रकाश" में यह उदाहरण दिया है—

"आकुंच्य पाणिमशुचिं मम मूर्ध्नि वेश्या,
मंत्राम्भसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे ।
तारस्वनं प्रतितथूत्कमदात्प्रहारम्,
हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्मा ।"[२]

विष्णुशर्मा नामक किसी दुराचारी विद्वान् ब्राह्मण की दिल्लगी उड़ाता हुआ कोई कहता है—"देखिए, कैसी मजे की बात है। विष्णु शर्मा 'हाय हाय' करके रोते और कहते थे कि मेरे जिस मस्तक पर मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल छिड़का गया था, उसी संस्कृत मस्तक पर इस वेश्या ने अपने अपवित्र हाथों से तड़ातड़ चपत लगाये।"

"मदारमरन्द चम्पू" में हास्य का यह उदाहरण है—

"लेखिनीमित इतो विलोकयन् कुत्र कुत्र न जगाम पद्मभूः ।
तां पुनः श्रवणसीमसंगतां प्राप्य नम्रवदनः स्मितं दधौ ॥"

अर्थात्—"कलम तो कान पर रखी हुई थी और उसे इधर उधर खूब ढूंढ़ा, अन्त में वह कान पर ही मिली। यह देख कर उसे हँसी आई और उसने सिर नीचा कर लिया।"

सुभाषित

संस्कृत साहित्य में सुभाषित के रूप में अनेक हास्य-उक्तियाँ प्रचलित हैं। यद्यपि हास्य-रस के सुभाषित पद्य अन्य रसों की अपेक्षा कम मिलते हैं किन्तु जो प्राप्य हैं वे अर्थ-चमत्कार एवं शब्द-चमत्कार दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ हैं।

---

१. साहित्यदर्पण विश्वनाथ पृष्ठ १५९

२. काव्यप्रकाश-मम्मट

"जिह्वायाः छेदनं नास्ति न तालुपतनाद् भयम्,
निर्विशेषेण वक्तव्यं निर्लज्जः को न पण्डितः ।"[१]

अर्थात्—"जीभ कट नहीं जाती, सिर फट नहीं जाता। तब फिर जो मुंह में आवे, सो कह डालने में हरज ही क्या है ? निर्लज्ज मनुष्य पण्डित बनने में देर क्यों करे ?"

"सदावक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते,
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमोग्रहः ।"[२]

अर्थात्—"दामाद दसवाँग्रह है। वह सदा वक्र और क्रूर रहता है, सदा पूजा चाहता रहता है और सदा "कन्या" राशि पर स्थिति रहना है।"

"पांडुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले,
दन्तावलिर्विगलिता न चमे विषादः ।
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य,
तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः ।"[३]

एक रँगीला वृद्ध कहता है—"क्या करें ? सिर के बाल सफेद हो गए, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई, दाँत टूट गए, पर इन सब बातों का मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। हाँ, जब रास्ते में चलते समय मृगनयनी स्त्रियाँ मुझे देखकर पूछतीं हैं—बाबा, किधर चले ? तो उनका यह पूछना मेरे सिर पर वज्र की तरह गिरता है।"

तृषार्त पथिक को पानी पिलाती हुई प्रमदा के चन्द्रमुख की सुधा का आकंठ का पान कर रहा है, इस रोमांचकारी अनुभव का अधिक देर तक आस्वादन करने के लिए वह अपनी अँगुलियों के बीच से पानी निकल जाने देता है, वह कामिनी भी उत्कंठावश पथिक के प्रति उदार होकर पानी की पतली धार धीमे-धीमे गिराती है।

"यथोर्ध्वाक्षः पिबत्यम्बु पथिको विरलांगुलिः,
तथा प्रपापालिकापि धारां वितनुते तनुम् ।"

इसी प्रकार हाज़िर-जवाबी का एक उदाहरण देखिए—

---

१. सुभाषितरत्नभंडागारम्—काशीनाथ, पृष्ठ ३८०
२. " "
३. " "

"कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः,
तरवः पारिजाताद्याः स्नुही वृक्षो महातरुः" ।

भवभूति के समर्थक कहते थे—"कालिदास आदि तो केवल कवि हैं किन्तु हमारे भवभूति महाकवि हैं।" इस पर कालिदास के प्रशंसक यह मुंह-तोड़ उत्तर देते—"ठीक है, स्वर्ग के पारिजात आदि भी तो केवल वृक्ष ही हैं, हाँ, स्नुही वृक्ष (सैहुड़) अवश्य "महावृक्ष" हैं।" (आयुर्वेद में सैंहुड़ नामक कंटीले वृक्ष को महातरु कहते हैं) ।

पंचतंत्र एवं हितोपदेश

हितोपदेश में "सुहृद् भेदः" के अन्तर्गत एक कथा है जिसमें वाक्छल (Wit) का सुन्दर प्रयोग हुआ है। एक स्त्री के दो प्रेमी थे। एक दण्डनायक था दूसरा उसका ही पुत्र। एक दिन पुत्र उस स्त्री के पति के यहाँ बैठा वार्तालाप कर रहा था, उसी समय उसका पिता आ गया। उस स्त्री ने पुत्र को घर में छिपा दिया। थोड़ी देर के पश्चात् ही उस स्त्री का पति भी आ गया। दण्डनायक घबराया लेकिन स्त्री ने उससे कहा कि तुम चले जाओ। उसने दरवाजा खोल दिया और दण्डनायक निकल गया। स्त्री के पति ने अन्दर आकर पूछा कि दण्डनायक क्यों आया था, उसने उत्तर दिया—

"अयं केनापि कार्येण पुत्रस्योपरि क्रुद्धः। स च मार्गयमाणोऽप्य त्रागत्य प्रविष्टो मया कुशूले निक्षप्य रक्षितः। तत्पित्रा चान्विष्यात्र न दृष्टः। अत एवायं दण्डनायकः क्रुद्ध एव गच्छति"। [1]

अर्थात्—दण्डनायक का झगड़ा उसके पुत्र से हो गया था। अपने पिता के क्रोध से बचने के लिए यह लड़का यहाँ आ गया। इसको मैंने पिछले कमरे में छिपा लिया था। दण्डनायक यहाँ आया और आकर किवाड़ इसलिए बन्द कर लिए कि लड़का कहीं भाग न जाय और उसे तलाश करने लगा लेकिन जब लड़का उसे नहीं मिला तो क्रोध करता हुआ निकल गया। इस पर उसका पति अपनी पत्नी की दयालुता एवं उदारहृदयता पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

इसी प्रकार पंचतंत्र में दो मुंह वाली चिड़िया की कथा में भी हास्य का सृजन सुन्दर हुआ है। एक चिड़िया के दो मुंह थे लेकिन शरीर और पेट एक ही था। एक दिन मुंह के अन्दर शहद आ गया, दूसरे मुंह ने शहद में से अपना हिस्सा माँगा लेकिन यह कह कर कि उसने प्राप्त किया है, दूसरे को

१. हितोपदेश—श्री नारायण पण्डितेन संगृहीत, पृष्ठ ६८

नहीं दिया गया ! दूसरे मुँह ने जहर पी लिया जो कि पेट में गया । परिणाम स्वरूप चिड़िया मर गई ।

इसमें अन्तर्हित व्यंग्य यह है कि शासक तथा शासित, नौकर तथा मालिक, पति तथा पत्नी, दो मुँह वाली चिड़िया के समान हैं, यदि इनमें से कोई एक अपना अधिकार सब सुविधाओं पर रक्खेगा तो दूसरा जहर खाकर दोनों को समाप्त कर देगा ।

हिन्दी साहित्य में हास्य की परम्परा

"हिन्दी ने जहाँ संस्कृत-प्राकृत की और रीति-नीति उत्तराधिकार में प्राप्त की वहां हास्य की सामग्री भी थोड़ी बहुत अपनायी । परन्तु धीरे-धीरे सभ्यता और समाज में परिवर्तन होते रहने के कारण हिन्दी का हास्य उसके शृङ्गार की भांति उसी परम्परा का अन्धानुयायी न रह सका और उसका जो यत्किंचित विकास हुआ वह स्वतंत्र ही हुआ ।"[1]

हिन्दी का प्रारम्भिक काल वीरगाथा काल के नाम से प्रसिद्ध है । इस काल में हास्य रस का काव्य कम लिखा गया । हाँ, जगनिक के वीर गीतों की गूँज मात्र अनेक बल खाती हुई आज भी हमारे समाज में व्याप्त है और उसकी घटाटोप सनसनी में कभी-कभी, "युद्ध का नाम सुन कर कायरों की धोती ढीली पड़ जाती है" आदि वाक्य हँसी की बिजली चमका देते हैं ।

वीरगाथा काल के अन्तिम चरण में कबीर का जन्म हुआ । **इन्होंने हिन्दी साहित्य में व्यंग्य लिखने की परम्परा स्थापित की ।** इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को सावधान किया । इनका व्यंग्य बड़ा तीखा होता था । प्रतिमा पूजन की हँसी उड़ाते हुए कबीर ने कहा है—

"पाहन पूजे हरि मिले—तो किन पूज पहार,
याते तो चक्की भली, पीसि खाई संसार ।"

—(कबीर)

कबीर दास ने उन धर्मध्वजियों तथा पाखंडियों की खूब खबर ली है जो समाज में धर्म के नाम पर अनाचार फैला रहे थे —

"माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुँखमाँहि,
मनुवा तो चहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ।"

—(कबीर)

---

१. हिन्दी कविता में हास्य-रस–डा० नगेन्द्र–"वीणा" नवम्बर १९३७,पृष्ठ ३३

मैथिल-कोकिल विद्यापति भी हास्य-रस लिखने में पीछे नहीं रहे। 'छद्‌म विलास" में "जटला" सास को तो मूर्ख बनाया ही गया है। इसके उपरांत शिवशंकर की गृहस्थी में उन्हें हास्य के लिए अधिक सामग्री मिली है—

"कितब गयो मरेरे बुढिला जती,
पीसल भाँग रहल गेर सती।"

—(विद्यापति)

कहती हुई गौरी अपने बुढ़िला जती के लिए परेशान है, उधर ब्रह्मा आदि उनको शिव की करतूतों पर चिढ़ा रहे हैं। इसके उपरान्त जायसी के पद्मावती रतनसेन के प्रथम मिलन (मधुचन्द्र) प्रसंग में हास्य की अच्छी योजना हुई है। रतनसेन की मिन्नतें सुन कर पद्मावती कह उठती है —

"ओ हठि दूर जोग तेरी चेरी—आवे बास करकुटा केरी,
हौं, रानी, तू जोगि भिखारी—जोगहि भोगहि कौन चिह्वारी।"

—(जायसी)

वास्तव में देखा जाय तो विशुद्ध हास्य एवं वक्रोक्ति का जितना सफल प्रयोग भावाधिपति सूर ने किया वह बेजोड़ है। वाक्छल (Wit) का प्रयोग देखिये—कृष्ण चोरी करते पकड़े जाते हैं। गोपी के पूछने पर कि "श्याम कहा चाहत से डोलत ?" आप कहते हैं "मै जान्यो ये घर अपनो है या धोखे में आयो; देखत ही गोरस में चींटी काढ़न को कर नायो।" हास्य के जितने प्रकार हैं सूर साहित्य में सब मिलते हैं। व्यंग्य (Satire) का प्रयोग देखिए—

"ऊधो धन तुम्हरो व्यौहार !
धनि वै ठाकुर, धनि वे सेवक, धनि तुम बरतन हार ॥"

स्मित हास्य (Pure Humour) की जितनी शुद्ध व्यंजना सूर में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऊधो को देखकर गोपियां कहती हैं—

"आये जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुरानन लादे ज्यों बनजारे टाँड़े ॥"

जब वे अपनी निर्गुण ज्ञान गाथा बघारते हैं तो गोपियां उन्हें बनाना आरम्भ कर देती हैं—

(१) **"निर्गुण कौन देस को वासी**
मधुकर कहु समझाय सौंहदे, बूझति साँच न हाँसी ॥"

(२) **"ऊधो, जाहु तुम्हें हम जाने**
श्याम तुम्हें ह्याँ नाहिं पठाये, तुम हौ बीच भुलाने ॥"

तुलसीदास जी ने हास्य की परम्पराएँ स्थापित करने में योग दिया। रामचरितमानस तथा कवितावली में अनेक स्थलों पर हास्य, व्यंग्य, वक्रोति, वाक्छल आदि की सुन्दर व्यंजना हुई है। वक्र-उक्ति (Irony) का प्रयोग लक्ष्मण-परशुराम संवाद में सुन्दर हुआ है।

"बाल-ब्रह्मचारी अति क्रोधी" का अकारण क्रोध देख कर लक्ष्मण कैसी चुटकी लेते हैं--"बहु धनुहीं तोरीं लरिकाई, कबहुँ न अस रिस कीन गुंसाई।" लेकिन बात बढ़ जाने पर लक्ष्मण के शब्दों में एक अपूर्व वक्रता आ जाती है—

"लखन कहउ मुनि सुजस तुम्हारा।
तुम्हहिं अछत को बरनहिं पारा॥
आपन मुंह तुम आपन करनी।
बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू।
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥"

—(रामचरित मानस)

इसके अतिरिक्त नारद-मोह प्रसंग एवं अंगद-रावण संवाद में वाक्छल के उदाहरण मिलते हैं। रामचन्द्र जी के आने से देवताओं के हर्ष का वर्णन कितना हास्य-मय किया गया है—

"विन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि वृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी, परसे पद-मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू जो कृपा करि कानन कों पगुधारे॥"

—(कवितावली)

जिन दिनों एक ओर भक्ति का स्रोत उमड़ रहा था उन्हीं दिनों दूसरी ओर अकबरी दरबार में कला का विकास हो रहा था। रहीमदास ने पुरुष पुरातन से मजाक किया —

"कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥"

रीतिकाल तो शृङ्गार-रस प्रधान था ही। हां, परम्परा निर्वाह करने के हेतु हास्य-रस के छन्द भी कवियों ने लिखे। बिहारी के कुछ दोहों में हास्य की

बड़ी सूक्ष्म व्यंजना मिलती है। अरसिकों पर उन्होंने व्यंग्य करते हुए लिखा है —

"करलै सूंघि सराहि कै, सबै रहे गहि मौन।
गन्धी गन्ध गुलाब को, गँवई गाहक कौन॥
करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी, मति अन्ध तू अतर दिखावत काहि॥"

—(बिहारी)

इसके अतिरिक्त बिहारी का हास्य-रस की दृष्टि से यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है —

"बहुधन लै अहसानु कै, पारौ देत सराहि।
बैद बधू हँसि भेद सौं, रही नाह मुंह चाहि॥"

—(बिहारी)

वैद्य जी दूसरों को तो शक्तिवर्धक औषधि देते हैं, लेकिन स्वयं शक्ति संचय करने में असमर्थ हैं।

रीतिकाल के अलीमुहीब खां "प्रीतम" भी हास्य रस के प्रसिद्ध कवि हुए। उन्होंने "खटमल-बाईसी" लिखी। इन्होंने अपनी कविता का आलम्बन खटमल को बनाया—

"जगत के कारन करन चारौं वेदन के,
कमल में बसे वै सुजान ज्ञान धरि कैं।
पोषन अवनि, दुख-सोषन तिलोचन के,
सागर में जाय सोए सेस सेज करि कैं॥
मदन जरायो जो, संहारें दृष्टि ही में सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरबरि कै।
विधि हर हर, और इनतें न कोऊ, तेऊ,
खाट पै न सोवें खटमलन कों डरि कै॥"[1]

"बाघन पै गयो, देखि बनन में रहे छपि,
सांपन पै गयो, ते पताल ठौरि पाई है।
गजन पै गयो, धूल डारत हैं सीस पर,
बैदन पै गयो काहू दारू न बताई है।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल—संशोधित संस्करण, पृष्ठ २४०

जब हहराय हम हरि के निकट गए,
हरि मोसों कही तेरी मति भूल छाई है।
कोऊना उपाय, भटकत जनि डोलै, सुन,
खाट के नगर खटमल की दुहाई है ॥"[१]

रीतिकाल में अधिकतर हास्य के आलम्बन कृपण नरेश तथा देवता रहे। सूरन कवि के शब्दों में पार्वती जी की परेशानी का हाल देखिए—

"बाप विष चाखै भैया षटमुख राखै देखि,
आसन में राखै बस बास जाको अचलै।
भूतन के छैया आस पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यान हूं ते न चलै।
बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल,
भाँग को धतूरे को पसारि देत अंचलै।
घर को हवाल यह संकट की बाल केहे,
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै।"[२]

फेरन कवि "चतुरानन की चूक" के माध्यम से हास्य की कितनी सुन्दर व्यंजना करते हैं —

"गृहिन दरिद्र, गृहत्यागिनि विभूति दीन्हीं,
पापिन प्रमोद पुन्यवन्तन छलो गयो।
सनि को सुचित्त रवि ससि को कलेस,
लघु व्यालन अनन्द सेस भार तें दलो गयो।
"फेरन" फिरावत गुनिन गृह द्वार द्वार,
गुन ते विहीन ताकि बैठक भलो दयो।
कौन कौन चूक कहौं तेरी एक आनन सौं,
नाम चतुरानन पै चूकतो चलो गयो।"[३]

बेनी के भड़ौवे (Satire) हिन्दी में अपने ढंग की एक मात्र वस्तु हैं। "भड़ौवे" में उपहासपूर्ण निन्दा रहती है। पिता के श्राद्ध में दुर्गन्धियुक्त पेड़े भेजने पर "बेनी" कवि उस कृपण पर व्यंग्य वाण से प्रहार करते हैं —

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल—संशोधित संस्करण, पृष्ठ २४०
२. माधुरी, जुलाई १९४३, पृष्ठ ६३३
३. " ६३६

"चींटी न चाटत मूसे न सूंघत,
माँछी न बास ते आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में,
तब ते रहै हैजा परोसिन घेरे॥
माटिहु में कछ स्वाद मिलै इन्हैं,
खाय सो ढूंढ़त हर्र बहेरे॥
चौंकि उठ्यो पितु लोक में बाप ये,
आपके देखि सराध के पेरे॥"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही हास्य-रस की रचनाएं होती रही हैं। आलम्बन लगभग एक से ही रहे। उत्कृष्ट कोटि के हास्य का अभाव ही रहा। जिसका कारण एकमात्र शृंगार रस की प्रधानता एवं हास्य-रस को अधिक महत्व न देना ही था। अपने इष्ट-देवों से उपालम्भ, पेटूपन का मज़ाक ही प्रधान रहा। सामाजिक कुरीतियों एवं समाज सुधार की ओर भी कबीर ने मार्ग दिखाया। हाँ, हमारे महाकवि सूर एवं तुलसी में जो हास्य मिलता है वह अवश्य उच्च स्तर का रहा है। सूर जैसा "स्मित" एवं "वक्र-उक्ति" मय हास्य तो आज भी दुर्लभ है।

●

१. माधुरी जुलाई १९४३, पृष्ठ ६३७

: ५ :

हास्य की कमी

"यह बात कहनी पड़ती है कि शिष्ट और परिष्कृत हास्य का जैसा सुन्दर विकास पाश्चात्य साहित्य में हुआ है वैसा अपने यहाँ अभी नहीं दिखाई दे रहा है।"[१]

शुक्ल जी के उपरोक्त कथन से असहमत होना कठिन है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही हास्य-रस का अभाव रहा है। पिछले अध्यायों में यह विवेचन किया जा चुका है कि प्राचीन काल में शृङ्गार रस हमारे काव्य पर छाया रहा। संस्कृत से जो परम्पराएँ हमें मिलीं वह भी शृङ्गार रस प्रधान ही मिलीं। गुण एवं मात्रा दोनों की दृष्टियों से देखा जाय तो पाश्चात्य साहित्य में जो हास्य रस का विवेचन एवं कृतियाँ मिलती हैं उनकी अपेक्षाकृत हिन्दी साहित्य में हास्य रस की मात्रा अत्यन्त अल्प रही है। संस्कृत के आचार्यों ने हास्य रस के लक्षण एवं उदाहरण देकर तथा प्रहसन क्रिया के भेद बता कर छुट्टी पा ली। 'बर्गसाँ' ने हास्य रस का जो सूक्ष्म विवेचन अपने "लाफ्टर" में किया है वैसा हमारे साहित्य में नहीं मिलता। बर्गसाँ ने "हम क्यों हंसते हैं", इस प्रश्न का उत्तर अपनी पुस्तक में बड़ी स्पष्टता से दिया है। बर्गसाँ ने हास्य के मूल को 'असंगति" माना है तथा हमारे यहाँ के आचार्यों ने हास्य के मूल को "विकृति" माना है। यद्यपि दोनों का तात्पर्य यही है कि हास्य के सृजन के लिए भेद-द्रष्टा होना आवश्यक है। किन्तु भारतीय प्रतिभा अपने दार्शनिक संस्कारों के कारण अभेद-द्रष्टा रही है इसलिए वह हास्य के अधिक अनुकूल नहीं पड़ी।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल—संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ ४७४

अद्वैतवाद

भारतीय जीवन-दर्शन के विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि "भारती दृष्टि सदैव भेद में अभेद देखती रही है—द्वैत को मिटाकर अद्वैत की स्थिति को प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य रहा है। यों तो समय-समय पर यहाँ अनेक दर्शनों की सृष्टि हुई है जो एक दूसरे के विरोधी रहे हैं, फिर भी गहरे में जाकर देखने से अद्वैत भावना प्रायः सभी में मूल रूप से अनस्यूत मिलती है। वास्तव में अनेकता में एकता की प्रतीति—भेद में अभेद की प्रतीति के बिना पूर्ण आस्तिकता की स्थिति सम्भव नहीं है। परन्तु आप देखें कि यह जीवन-दृष्टि हास्य के एकान्त प्रतिकूल पड़ती है।"[1] डा० नगेन्द्र का यह कथन व्यंग्य (Satire) तथा वक्रोक्ति (Irony) के लिए तो ठीक हो सकता है किन्तु शुद्ध हास्य के सृजन के लिए अद्वैतवादी जीवन-दर्शन कहाँ तक बाधक रहा है यह समझ में नहीं आता। व्यंग्य तथा वक्रोक्ति में एक दूसरे को नीचा दिखाने की तथा निन्दा करने की प्रवृत्ति रहती है। "किन्हीं आचार्यों ने तो हास्य के पीछे दूसरे को नीचा दिखाने और अपने को श्रेष्ठ साबित करने की प्रवृत्ति बतलाई है। यह भी अद्वैतवाद के विरुद्ध है किन्तु यह द्वैत-मानव (यदि है तो) नगेन्द्र जी के बताये हुए व्यंग्य (Satire) और वक्रोक्ति (Irony) के मूल में अधिक है। शुद्ध हास्य के मूल में तो फालतू उमंग जो खेल में भी देखी जाती है अधिक है। कथित द्वैत भावना भी विषमता, विकृति और असंगति को न सह सकने तथा भेद में अभेद और विषमता में साम्य खोजने की अद्वैत-परक प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति केवल हास्य में ही नहीं है विज्ञान और दर्शन सभी में है। वैज्ञानिक नियम भी इसी के फल हैं। हास्य द्वारा वैषम्य और विलक्षणता को दूर कर समानता लाने की चेष्टा की जाती है। यह सर्वथा भारतीय मनोवृति के अनुकूल है।"[2] वस्तुतः अद्वैतवाद हास्य-रस के सृजन में कुछ हद तक बाधक अवश्य है किन्तु शुद्ध हास्य के सृजन में विशेष बाधक नहीं। जैसा कि पिछले अध्याय में भी विवेचन किया गया है कि वैदिक साहित्य में हास्य-रस बराबर लिखा गया है।

गम्भीर भावुक प्रकृति

हास्य में तथा भावुकता में बैर है। इसके लिए रुक्ष और व्यवहारिक प्रकृति वांछनीय है। राग और द्वेष, हमारे मानव-जीवन में यही दो मौलिक

---

१. साहित्य सन्देश—दिसम्बर १९४६—पृष्ठ २२८, डा० नगेन्द्र

२. साहित्य सन्देश—दिसम्बर १९४६–पृष्ठ २२२, बाबू गुलाबराय

प्रवृत्तियाँ हैं। परिणामस्वरूप शृङ्गार और करुण रस ही अधिक प्रचलित रहे। हमारे यहाँ रागी मिलेंगे या मिलेंगे बैरागी। आपको इसके बीच की चीज़ नहीं मिलेगी। इसलिए हमारे यहां हर्ष को ही महत्व दिया गया है। हास्य से सन्तोष नहीं हुआ। **"जीवन में उसने हर्ष को ही लक्ष्य बनाया है और यदि उसमें व्याघात पड़ा है तो वह उससे विरक्त होकर उसे त्याग ही बैठा है। गम्भीर प्रकृति का मनुष्य विकल या कुण्ठित होने पर ठोकर मारना पसन्द करेगा, हँसेगा नहीं।"**[1]

अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों में भी हास्य रस मिलता है। उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि विपदाओं में भी हँस सकते हैं। उनका जीवन व्यवहारिक एवं गतिशील है। वे जीवन में आने वाली प्रत्येक बाधा का उपहास कर सकते हैं परन्तु हमारे यहाँ के भवभूति आदि कवि ऐसी विषम परिस्थितियों में करुण रस का सृजन ही कर सकते हैं।

परिस्थितियाँ

कविवर 'प्रसाद' जी के मत से हास्य मनोरंजिनी वृत्ति का विकास है परन्तु हमारी जाति शताब्दियों से पराधीन और पददलित है इसलिये हमें हँसने के लिए अवकाश ही नहीं है। वीरगाथा तथा भक्ति युग की परिस्थितियों पर एक नजर डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन विपरीत परिस्थितियों में हास्य का सृजन कितना असम्भव था। वीरगाथा काल में कवियों को वीर रस लिखने से ही फ़ुरसत नहीं मिलती थी तथा भक्तिकाल में जो भावना का उद्रेक था वह हास्य रस के सृजन के सर्वथा प्रतिकूल था। रीति युग में अवश्य कविता का दरबार स्थापित हो गया था और यह भी आशा की जा सकती थी कि आश्रय-दाताओं के मनोरंजन के लिए कविजन हास्य रस की व्यंजना करते किन्तु इसके विपरीत हास्य रस और भी कम मिलता है। इसका स्पष्ट कारण है मानसिक अस्वस्थता। **"रीतियुग में हमारा समाज मन और शरीर दोनों में ही रुग्ण था—उस समय अस्वस्थ शृङ्गार की दृष्टि सम्भव थी—राजा लोगों का, सम्पन्न सामाजिकों का उसी से मनोरंजन हो सकता था। स्वस्थ हास्य की अपेक्षा शृङ्गार की चुहल ही उन्हें अधिक प्रिय थी।"**[2] इस काल में केवल परम्परा पालन के हेतु कवियों ने हास्यरस लिखा।

---

१. बाबू गुलाब राय—साहित्य सन्देश—दिसम्बर १६४६, पृष्ठ २२२

२. साहित्य सन्देश—दिसम्बर १६४६—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ २२६

वर्तमान स्थिति

भारतेन्दु काल में अवश्य हास्य रस का सृजन सन्तोषजनक हुआ और यह आशा होने लगी थी कि अब यह अभाव पूरा हो जायगा। दासता के बन्धन में होते हुए भी उस समय एक लेखक मंडल तैयार हो गया था जो कि हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से अपने दिल के गुब्बार निकालता था। स्वतन्त्रता के बाद परिस्थिति पुनः गम्भीर एवं सघन हो गई है। आज का मनुष्य इतना व्यस्त हो गया है कि उसे हँसने का अवकाश नहीं। हिन्दी में ही नहीं पाश्चात्य देशों के साथ भी यही बात है।

इंगलैंड की सुप्रसिद्ध "पंच" पत्रिका के सम्पादक मि० मैलकम मैगरिस पी० ई० एन० के एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के उपलक्ष में ढाका आये थे। उन्होंने अपने भाषण में इस बात पर खेद प्रकट किया कि पंच के लेखकों में भी पहली जैसी जिन्दादिली और विनोद-प्रियता अब नही रह गई है। वे भी मानो नैराश्य एवं विषाद के शिकार हो रहे हैं। एक व्यंग्य पत्रिका के सम्पादक के रूप में मि० मैलकम मैगरिस को ऐसा लग रहा है कि वे मानों एक अप्रिय कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होने कहा है कि हमारे चतुर्दिक का जगत क्रमशः इतना निरानन्दमय एवं नैराश्यपूर्ण होता जा रहा है कि इस प्रकार की परिस्थिति के बीच हास्य एवं कौतुक केवल अर्थहीन ही नहीं वल्कि कभी-कभी अशिष्टातापूर्ण भी प्रतीत होता है। संसार के शक्तिशाली देश आज दो दलों में विभक्त हो रहे है और उनके बीच अनवरत रूप से शीतल युद्ध चल रहा है। साहित्य, संगीत और कला के बदले आज तोप, बन्दूक और आणविक बम संस्कृति के प्रतीक हो रहे हैं। ऐसा परिस्थिति में कौन हृदय खोल कर हँस सकता है और हास्य कौतुक का उपभोग करने वाले रसिकजन आज रह ही कहाँ गये हैं। हास्य कौतुक का यह अभाव आज न्यूनाधिक रूए में सब देशों में देखा जा रहा है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की गुरु-गम्भीरता एवं जटिलता इतनी बढ़ती जा रही है और भावी महायुद्ध की आशंका एवं विभीषिका से लोग इतने आतंकग्रस्त हो रहे हैं कि उन्हें हँसाने की चेष्टा करना मूढ़ता जैसी प्रतीत होती है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने भारत की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए अपने "हास्य" शीर्षक लेख में लिखा है—"भारत जैसे देश में जहाँ युद्ध की विभीषिका पश्चिम के देशों जैसी नहीं है, अन्य प्रकार की विकट समस्याएँ हैं जिनके कारण अधिकांश मनुष्यों का जीवन दिन रात चिन्ता-

ग्रस्त बना रहता है। जिस समाज में अधिकांश स्त्री पुरुष अनशन, अर्धाशन, रोग, शोक, महामारी आदि विपदाओं से विपिन्न हों, जहाँ शिक्षित कर्मठ युवक काम नहीं मिलने के कारण चोरी, डकैती जैसे दुष्कर्म करने के लिए वाध्य हों, जहां माता की आँखों के सामने उसकी शिशु सन्तान आहार के अभाव में तिल-तिल कर दम तोड़ दे, युवतियाँ पेट के लिए सतीत्व का विक्रय करें, पिता अपने बच्चों को अनाथावस्था में छोड़ कर भाग जाँय वहाँ के इस निष्ठुर, निष्करुण, रूढ़ वातावरण के बीच हास्य के उपादान कहाँ से जुटाये जा सकते हैं ?"

इसके अतिरिक्त हास्य-रुचि (Sense of Humour) हमारे यहाँ अभी तक विकसित नहीं हो पाई है। भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड लिनलिथगो के बारे में कहा जाता है कि वे प्रातः की चाय के साथ शंकर का कार्टून देखते थे कि उन्हें कैसा चित्रित किया गया है। उनका कथन था कि वे प्रातः इस-लिए शंकर का कार्टून देखते थे कि उनका दिन भर प्रसन्नता से कटे किन्तु यहाँ विपरीत अवस्था है। इस लेखक ने स्वयँ अनुभव किया है कि लोगों में अपनी कमज़ोरियों पर व्यंग्य सुनने की तनिक भी बर्दाश्त नहीं है। इसकी उनके ऊपर अस्वस्थ प्रतिक्रिया होती है, वे क्रोधित ही नहीं हो जाते वरन् बदला लेने की भावना से लेखक का अनिष्ट तक करने पर उतारू हो जाते हैं। पाश्चात्य देशों में हास्य-रस के साहित्य की समृद्धि का एक यह भी कारण है कि वहाँ के पाठकों की हास्य-रुचि विकसित है। वे हास्य का मर्म पहचानते हैं एवं उसका रस लेना जानते हैं।

अन्त में आज हास्य-रस के साहित्य को देख कर यह आशा की जा सकती है कि लोग अनुभव करने लगे हैं कि हास्य-रस की कमी को दूर किया जाय, हमारे यहां अब भी व्यंग्य तथा वक्र-उक्ति (Irony) की कमी नहीं है। हाँ, शुद्ध हास्य के सृजन की बहुत बड़ी आवश्यकता है जो कि समय आने पर पूरी हो जायगी।

●

: ६ :

प्रहसन

हास्य-प्रधान नाटक को प्रहसन कहते हैं। साहित्य के इतिहास से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जब जब समाज का सांस्कृतिक स्तर निम्न कोटि का रहा है, तभी अधिक संख्या में प्रहसन लिखे गए हैं। समाज के ढाँचे में जब जब क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, उस समय प्रहसन लिखने की सामग्री साहित्यकारों को मिलती रही है। जीवन की प्रगति के साथ साथ उसमें कुछ विकृति भी आ जाती है जो कि प्रहसन को कथा-वस्तु प्रदान करती है। प्रहसन के लिए समाज की स्थिति परमावश्यक है। यद्यपि एक व्यक्ति को लेकर भी प्रहसन लिखा जा सकता है किन्तु उसमें लोकप्रियता तभी आ पावेगी जबकि उस व्यक्ति विशेष को हम किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधि मान लें। साहित्यिक तथा ऐतिहासिक रूप से यह माना हुआ सिद्धान्त है कि प्रहसन सदैव समाज के सहारे ही फल फूल सकता है।

यूनानी प्रहसनकार 'ऐरिस्टाफ़ेनीज़' ने अपने समकालीन लेखकों, कवियों और नाटककारों की खिल्ली इसी वास्ते उड़ाई कि उनमें तथा अन्य साहित्यकारों में वैमनस्य था। अंग्रेज़ी साहित्य में भी प्रहसन लिखने का अत्यधिक प्रचार है। प्रहसन की लोकप्रियता इसलिए अधिक रही कि उसमें मनुष्य को हास्य मिलता है एवं समाज के विकृत पक्ष की व्यंग्यात्मक आलोचना मिलती है।

संस्कृत साहित्य में विदूषक परम्परा

संस्कृत साहित्य में अलग से प्रहसन लिखने की साहित्यिक परम्परा नहीं ज्ञात होती। संस्कृत नाटकों में बीच बीच में विनोदात्मक दृश्य अवश्य मिलते हैं और वे नाटक के कार्य में सहयोग देते हैं। वहाँ विदूषक-संयुक्त-नाटक ही अधिक मिलेंगे, संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र प्रहसनों के अभाव का कारण उस समय के समाज की समुन्नत दशा एवं आदर्शवादी नाटक रचना की परम्परा रही है।

विदूषक की पृष्ठभूमि—संस्कृत के प्राय: सभी नाटककारों ने विदूषक को राजा का अंतरंग मित्र, उसके कार्यों को सफलता दिलाने वाला एक आवश्यक साधन और 'पेटू' दिखाया है। नाटकों के धार्मिक मूल पर विचार करते हुए 'कीथ' विदूषक का वर्णन करते है—"For the religious origin of Drama a further fact can be adduced, the character of Vidusaka, the constant and trusted companion of the King, who is the normal hero of an Indian play. The name denotes him as given to abuse, and not rarely in the dramas he and one of the attendants on the queen engage in contents of acrid repartee, in which he certainly does not fare better."

कीथ (Keith) तथा विल्सन (Wilson) जैसे पाश्चात्य संस्कृत विद्वानों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि विदूषक ब्राह्मण ही क्यों रखा गया ? वास्तव में राजा का सच्चा तथा अंतरंग मित्र होने के लिए यह आवश्यक समझा गया होगा कि वह व्यक्ति विद्वान तथा तत्काल उत्तर देने में समर्थ हो। साथ ही उच्चवंश का भी हो ताकि उनकी पारस्परिक धार्मिक संधि में किसी प्रकार के रक्त विकार के कारण मलिनता न आ जाय। असंगति हास्य का आधार है। जब एक ऊँची श्रेणी का व्यक्ति जान बूझ कर अपने गौरव के प्रति उदासीनता रखता है, अपनी हीनता की घोषणा करता है तो उसके लक्ष्य में वैचित्र्य दीख पड़ता है और हमें हँसी आ जाती है। 'कर्पूरमंजरी' में राजशेखर का विदूषक जब कविता करता है तो इसमें संदेह नहीं रहता कि वह जान बूझ कर ऐसी रचना कर रहा है।

अधिकतर विदूषक पेटू, भुक्कड़ तथा लालची दिखलाये गए हैं। क्या कारण है कि पेटूपन के गुण को ही नाटककारों ने पसन्द किया है ? वास्तव में पेटूपन स्वार्थ चिंतन की ओर संकेत करता है और नाटक में जीवन संग्राम के एक विशिष्ट आवेशमय भाग के चित्रण में पेटूपन की पुकार जगत की मधुर माया के अमर व्यापार की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित कर लेती है। संसार में केवल प्रेम या लड़ाई ही एक सत्य नहीं, पेट भी एक अनिवार्य सत्य है। इस दार्शनिक समीक्षा के साथ राजा के अतरंग मित्र विदूषक का 'भूखे और नंगे' चिल्लाना, हर बात में पेट का रूपक लगाना सचमुच हँसी का कारण होता है। जो सबका अन्नदाता, जिसके साथ किसी बात की कमी नहीं, भोजन भी जहाँ विविध व्यंजन रस-पूर्ण, उसी राजा का मित्र पेट पर हाथ धरे और लड्डुओं के लिए लार टपकावे क्या यह हँसी का कारण नहीं ?

'भास' ने विदूषक को इसी रूप में दिखाया है। उनके 'अविभारक' नाटक में विदूषक अपने स्वामी का भक्त है, वह उसके स्वार्थ साधन के लिए जी-जान से प्रस्तुत रहता है। युद्ध में भी कुशल है पर वह पेटू है। "प्रतिज्ञा योगन्धरायण' में वासवदत्ता की वह याद करता है पर इसलिए कि वह उसकी मिठाई की चिन्ता रखती थी, उसके लिए मिठाई का प्रबन्ध करती थी। 'मृच्छकटिक' का विदूषक भी इसी पेटूपन का शिकार रहा है। वसंतसेना की पाँचवीं ड्योढ़ी में पहुंच कर वह कहता है —

"यहाँ वसंतसेना का रसोईघर मालूम होता है, क्योंकि अनेक प्रकार के व्यंजनों में हींग और जीरे की महक से हम जैसे दरिद्रों की लार टपकी पड़ती है। एक ओर लड्डू बँध रहे हैं, एक ओर मालपुआ बनता है, यहाँ कदाचित् कोई मुझसे खाने को झूँठे ही पूछे, तो पाँव धो भोजन के लिए तुरंत बैठ जाऊँ"।

कालिदास का 'माढव्य' भी क्या इस पेट के राज्य के बाहर है ? रत्नावली और नागानन्द में भी विदूषक को इस पुट से संयुक्त कर दिया गया है। विदूषक-परम्परा संस्कृत साहित्य से हिन्दी में आई जिसका विवेचन आगे किया जायेगा।

प्रहसन के विषय

अँग्रेज़ी साहित्य में प्रहसनों का मूल विषय मनुष्य की मानवी भावनाएँ हैं। लोभ, गर्व, अहंभाव, प्रतिहिंसा इत्यादि भावनाओं को लेकर श्रेष्ठ प्रहसनों की रचना हुई है। 'अँग्रेज़ी नाटककारों के प्रहसन के विषयाधारों में निम्नलिखित विषय फलप्रद माने हैं —

१. सौंदर्य, ज्ञान तथा धन का अहंभाव।
२. मानसिक कुरूपता, असंगति, अनैतिकता।
३. भ्रममूलक आशाएँ तथा विचार।
४. निरर्थक वार्तालाप अथवा अनर्गल संवाद अथवा श्लेषपूर्ण कथोपकथन।
५. अशिष्टता, तथा वितन्डावाद।
६. प्रपन्च-पूर्ण कार्य तथा अस्वाभाविक जीवन।
७. मूर्खतापूर्ण कार्य।

८. पाखण्ड तथा अस्वाभाविक आदर्श ।

९. शारीरिक स्थूलता ।

१०. मद्यपान तथा भोजन प्रियता ।

११. विदूषक ।

इसी प्रकार हिन्दी प्रहसनकारों के प्रिय विषय, पाखंड, मद्यपान तथा सामाजिक कुरीतियाँ जैसे बाल-विवाह, वृद्धविवाह, फैशनपरस्ती, लोभी, पेटू, सिनेमा जीवन, व्यर्थ की शानशौकत आदि रहे हैं। उनमें बहुविवाह, वेश्यावृत्ति, बाल-विवाह, नशेबाज़ी, स्त्रियों की हीनदशा, अविद्या, सूदखोरी, पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावान्तर्गत खान-पान और आचार-विहीनता, अँग्रेज़ी शिक्षा और फैशन के कुत्सित प्रभावों आदि से पीड़ित भारतीय समाज का क्रन्दन सुनाई पड़ता है।

डा० खत्री ने 'नाटक की परख' में प्रहसन लेखकों के विषयों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—[1]

(१) **गृहस्थ जीवन :**—(क) पति-पत्नी के घरेलू झगड़े (ख) बहु-विवाह तथा अविवाहित जीवन (ग) बेमेल विवाह तथा तलाक (घ) श्वसुर, सास, जेठानी, नन्द तथा बहुओं के झगड़े (ङ) मालिक तथा नौकर के झगड़े।

(२) **सामाजिक जीवन :**—(क) शराब-खोरी (ख) जुआ (ग) असंगत प्रेम तथा वेश्यावृत्ति (घ) छल तथा कपटपूर्ण व्यवहार (ङ) ऊँचनीच का भेद (च) रूढ़िवादी (छ) आधुनिक फैशन-युक्त जीवन, (ज) प्राचीन शिक्षण-पद्धति; पंडित तथा मौलवी का जीवन (झ) धार्मिक पाखण्ड (ञ) हिंसा।

(३) राजनीतिक जीवन:—(क) दलबन्दी (ख) स्वेच्छाचारिता (ग) कुनीति।

(४) आर्थिक जीवन:—(क) मालिक-मजदूर के झगड़े (ख) मध्य-युग के उपयुक्त दृष्टिकोण (ग) धन का अहंकार (घ) लेन-देन व्यापार।

(५) वैयक्तिक जीवन:—(क) शारीरिक स्थूलता (ख) भोजन-प्रियता।

विदूषक

अँग्रेजी, फ्रांसीसी, संस्कृत तथा हिन्दी के प्रहसन लेखकों में विषय-साम्य मिलता है। हर देश की समस्याएँ अलग अलग होती हैं। हिन्दी प्रहसनों में यदि गार्हस्थिक समस्याएँ अधिक मिलेंगी तो अँग्रेजी प्रहसनों में सामाजिक

१. डा० एस० पी० खत्री—"नाटक की परख"—पृष्ठ २४०, २४१

अधिक । हास्य के आलम्बन प्राय: सब देशों में असंगतियों वाली वस्तुएँ एवं सामाजिक कुरीतियाँ ही मिलती हैं ।

प्रहसन का वर्गीकरण

मुख्य रूप से प्रहसनों का वर्गीकरण चार भागों में किया जा सकता है—"(१) **चरित्र-प्रधान प्रहसन** (२) **परिस्थिति-प्रधान प्रहसन** (३) **कथोप-कथन-प्रधान** (४) **विदूषक-प्रधान** ।"

चरित्र-प्रधान प्रहसन

मानवी-भावों के आधार पर चरित्र-प्रधान प्रहसन लिखे जाते हैं । लोभ, मोह, पाखण्ड, द्वेष, अहंकार, क्रोध, लालसा को आधार मानकर ही चरित्र-प्रधान-प्रहसनों का निर्माण हुआ है । फ्रांसीसी तथा अँग्रेजी प्रहसन लेखकों ने अधिकतर अपने नायकों को इन्हीं मानवी-भावों में से एक या दो का प्रतीक मानकर अपने प्रहसन लिखे हैं । जब ये मानवी भाव अपनी सीमाओं का उल्लंघन करने लगते हैं तभी ये प्रहसन के विषय बनने योग्य हो जाते हैं । चरित्र-प्रधान प्रहसन लेखक मानवी भावों का सूक्ष्म निरीक्षक होता है एवं श्रेष्ठ नाटकीय कला की सहायता से प्रहसन लिखता है । यह मानव हृदय की जटिलताओं में चक्कर काटता हुआ अनुभव और निरीक्षण का आधार लिए उसकी आँखों तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को समझता हुआ इधर उधर प्रहस-नात्मक अंशों को बटोर कर हास्य प्रस्तुत करने का प्रयास करता है । चरित्र-प्रधान प्रहसन हिन्दी में कम मिलते हैं ।

परिस्थिति-प्रधान प्रहसन

लेखक को अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से सावधान रहना आवश्यक है । गाली-गलौज, अश्लील-हास्य, एवं कुरुचिपूर्ण स्थलों में से प्रहसन को बचाना आवश्यक है । उसे वास्तविक जीवन पर बल देना ही अभीष्ट होता है । जीवन की परिस्थितियाँ जितनी अधिक स्वाभाविक होंगी, प्रहसनका प्रभाव उतना ही अधिक स्थायी एवं शुभ होगा ।

नाट्य-साहित्य के विद्वानों ने चरित्र-प्रधान प्रहसनों को परिस्थिति प्रधान प्रहसनों से उच्चकोटि का माना है । वास्तव में यह धारणा उचित ही है । चरित्र-प्रधान प्रहसनों के निर्माण में जितनी उच्च नाटकीय कला की आवश्यकता पड़ती है उतनी परिस्थिति प्रधान-प्रहसनों के निर्माण में नहीं पड़ती । परिस्थिति-प्रधान प्रहसनकार केवल असाधारण तथा असामान्य परिस्थितियाँ

इकट्ठी कर आसानी से हास्य प्रस्तुत कर देता है। उसकी खोज केवल जीवन के मोटे मोटे स्थलों तक सीमित रहती है, उसकी कला की सफलता इसी में है कि वह कुछ ऐसे संशय तथा विस्मय में डालने वाले स्थल आकस्मिक रूप से प्रस्तुत कर दे और उन्हें ऐसे हास्यास्पद स्थलों से सम्वन्धित कर दे कि उनमें रोचकता आ जाय। किन्तु चरित्र-प्रधान प्रहसन-लेखक को मानवी-भावों का चित्रण करना पड़ता है जो कि काम कठिन और असिधारा-व्रत के समान हैं। हिन्दी में परिस्थिति प्रधान प्रहसनों की भरमार है।

कथोपकथन प्रधान

जिन प्रहसनों में कथोपकथन के माध्यम से हास्य उत्पन्न किया जाता है वे कथोपकथन-प्रधान प्रहसन होते हैं। वाक्चातुर्य्य हास्य उत्पन्न करने का प्रधान साधन है। श्लेष, व्यंग्य तथा उपहास इसके प्रधान अङ्ग हैं। जिन पात्रो से हाजिर जवाबी कराई जाय वह जोड़-तोड़ की होनी आवश्यक है। कभी-कभी वाक्-चातुर्य्य दिखाने के चक्कर में लेखक अतिक्रमण कर बैठता है जो कि अवांछनीय है। संवाद में स्वाभाविकता होना आवश्यक है। प्रत्येक वाक्य में श्लेष का होना मस्तिष्क को थका देता है। इसका प्रयोग पान में चूने के समान होना वांछित है।

कुछ लेखक विशेष पात्रों का कोई तकियाकलाम अथवा शाब्दिक आवृत्ति दे देते हैं तथा "जो है सो", "तेरा राम भला करे", "सीताराम सीताराम" आदि वास्तव में शाब्दिक अथवा भाव-समूहों की पुनरावृत्ति में हास्य की आत्मा निहित होती है। हिन्दी के कुछ प्रहसन लेखकों ने इस शैली को अपनाया है।

विदूषक प्रधान

अँग्रेजी साहित्य में विदूषक-प्रधान प्रहसन नहीं के बराबर हैं। विदूषक प्रमुख नायक का अन्तरंग मित्र होता है। यह नायिका को नायक का सन्देश पहुँचाता है। विदूषक को हास्य प्रस्तुत करने में अपनी सज-धज तथा वेषभूषा का स्पष्ट सहारा रहता है। अपनी टोपी, अपनी तिलक-मुद्रा तथा अपनी चाल-ढाल से वह साधारणतः हास्य प्रस्तुत किया करता है। अपनी स्थूल काया की दुहाई देकर तथा अपनी भोजन-प्रियता और पेटूपन की ओर इशारा करके वह दर्शकों को हँसाता है। संस्कृत एवं हिन्दी नाटकों में विदूषक का सहारा लिया जाता है।

भारतेन्दु-काल (१८५०—१९००)

सामाजिक परिस्थितियाँ

भारतेन्दु काल में भारत ब्रिटिश-सत्ता के ग्राधीन था। पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव देश की संस्कृति एवं साहित्य पर व्यापक रूप से पड़ रहा था। इसने दो समानान्तर ग्रान्दोलनों को जन्म दिया। एक ग्रोर प्राचीन ग्रन्धविश्वासों एवं सामाजिक ढाँचे के प्रतिकूल शक्तिशाली प्रतिक्रिया हुई तो दूसरी ग्रोर पश्चिमी विचारों के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव से समाज में सांस्कृतिक पतन की ग्राशंका का जन्म हुग्रा। स्वयं डलहौज़ी के समय में शिक्षा ग्रौर नवीन वैज्ञानिक ग्राविष्कारों का प्रचार सांस्कृतिक ग्राशंका उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। भारतवासी गंगा पर पुल बंधते हुए नहीं देख सकते थे। सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से समाज पतन की ग्रोर जा रहा था। **"सच तो यह है कि मानसिक ग्रध्यवसाय रहने पर भी भारतवासी जड़पदार्थ में परिरिणत होगये थे। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पण्डे, पुरोहित, ज्योतिषी, गुरु ग्रादि जैसे ग्रशिक्षित ग्रौर ग्रर्द्धशिक्षित ब्राह्मरण हिन्दू समाज पर छाये हुये थे। इसके साथ ही विधवा-विवाह-निषेध, बहु-विवाह, खानपान सम्बन्धी प्रतिबन्ध, समुद्र-यात्रा के काररण जाति बहिष्कार, नशाखोरी, पर्दा, स्त्रियों की हीनावस्था, धार्मिक साम्प्रदायिकता, ग्रफीम खाना, ग्रादि ग्रनेक कुप्रथाग्रों का चलन हो गया था।"** [1] नये ग्रँग्रेज़ी पढ़ने वाले बाबू लोग तो मिल्टन एवं शेक्सपीयर का ग्रध्ययन करते थे किन्तु घरों में पण्डे, पुरोहितों के विचारों तथा मूर्तिपूजा का प्रचार था।

उपरोक्त दो विचार धाराग्रों के संघर्ष के काररण प्रहसनों का जन्म हुग्रा। यह ग्रादर्शवादी प्रतिक्रिया थी। यद्यपि पाश्चात्य रहन-सहन तथा शिक्षा के सामाजिक जीवन पर बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी किन्तु साहित्यिकों को पाश्यचात्य संस्कृति के प्रति इतना कड़ा विरोध न था। इन प्रहसनों से मनोरंजन केवल माध्यमिक स्तर के लोगों का ही हो सका किन्तु उच्चस्तरीय बौद्धिक विद्वानों को इनके ग्रतिरंजित वर्णनों एवं ग्रतिनाटकीयता से न तो मनोरंजन ही हुग्रा न उनको इनसे मानसिक भोजन ही मिला।

हास्य उद्रेक करने के साधन

(१) **भ्रान्त ग्रथवा निरर्थक**—हम बालक के हास्य को निरर्थक हास्य कह सकते हैं। बालक के हास्य का विशेष काररण नहीं होता। जिस वस्तु को

१. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—ग्राधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ९३

देख कर बालक हँस पड़ता है हो सकता है किसी वृद्ध को उस पर बिलकुल हँसी न ग्राए। सरल चित्त मनुष्यों का स्वभाव भी बालकों जैसा ही होता है ग्रौर उनको भी इस प्रकार का हास्य हँसाने में समर्थ होता है। प्रहसनों में इस प्रकार के भ्रान्त ग्रथवा निरर्थक का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। भ्रान्त कई प्रकार से हास्य उत्पन्न करता हैं:--(१) भ्रान्त में वस्तु का ग्राकार विकृत कर दिया जाता है ग्रौर वह विकृत रूप हमें हँसाता है। (२) भ्रान्त को हम उस रूप में हँसाते देखते हैं जब एक वस्तु को वह कल्पना की सीमा से उल्लंघन कराके वास्तविकता से बहुत दूर कर देता है। (३) भ्रान्त में एक वस्तु का वर्णन इतना ग्रत्युक्तिपूर्ण होता है कि उसका रूप पूर्णतया वदल जाता है।

(२) **व्यंग्य एवं वाक्छल**—प्रहसनों में घृणायुक्त व्यंग्य वाणों का प्रयोग भी समाज की विकृतियों की खिल्ली उड़ाने के लिए किया जाता है। कथोपकथन में चमक लाने के लिए वाक्छल का भी प्रयोग होता है जो कि हास्य के उद्रेक करने में भी सहायक होता है।

प्रमुख प्रहसनकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—इनके लिखे हुए चार प्रहसन प्रसिद्ध हैं—"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति", "ग्रन्धेर नगरी", "विषस्यविषमौषधम्" तथा "जाति विवेकनी सभा।"

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

इसका रचना काल सन् १८७३ है। यही इनका प्रथम प्रहसन है। इसमें माँस-भक्षी ग्रौर शाकाहारियों का चरित्र चित्रित किया गया है। इसमें चार ग्रंक हैं। सनातन धर्मी पंडितों में बहुत से बलिप्रेमी थे जो दूसरों के मोक्ष दिलाने के वहाने ग्रपनी लौकिक तृष्णा मिटाते थे। भारतेन्दु ने इन पुरोहितों की ग्रच्छी खवर ली है। पहले ग्रंक में रक्तरंजित राजभवन में बलिदान के साथ जुग्रा, मदिरा ग्रौर मैथुन को भी न्यायपूर्ण ठहराया गया है। दूसरे ग्रंक में भारतेन्दु ने विदूषक द्वारा धूर्त वैष्णवों की ग्रालोचना करवाई है; तीसरे ग्रंक में हिंसामय यज्ञ करने वाला राजा जब यमराज के सम्मुख उपस्थित होता है तो चित्रगुप्त उसका लेखा उपस्थित करता है।

यह चरित्र-प्रधान प्रहसन है। इसका उद्देश्य सामाजिक सुधार है। व्यंग्य तीखा ग्रौर हृदय पर चोट करने वाला है। चित्रगुप्त के मुख से यमराज के सम्मुख पुजारियों पर कैसा तीखा व्यंग्य कसा गया है :—

"महाराज, ये गुरू लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिये। केवल दंभार्थ इनका तिलकमुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्ति को दंडवत न किया होगा। पर मन्दिर में जो स्त्रियाँ आईं उनको सर्वदा तकते रहे। महाराज, इन्होंने अनेको को कृतार्थ किया हैं और इस समय तो मैं श्री रामचन्द्र जी की श्री कृष्णदास हूँ; पर जब स्त्री सामने आवे तो उससे कहेंगे, मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी और स्त्रियाँ भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं।"

इसमें वक्रोक्ति (Irony) का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया गया है। भारतेन्दु ने बलिदान प्रथा का विरोध करते हुए साथ में अंग्रेजों के राज्य और उसके समर्थकों की भी व्यंग्य स्तुति की है। भारतेन्दु चित्रगुप्त से यह कहलाना नहीं भूले कि "अंग्रेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ इण्डिया" की पदवी मिलती है।"

मंत्री की व्यवस्था के बारे में चित्रगुप्त से कहलाया है—

"प्रजा पर कर लगाने में तो पहिले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।"

इस प्रसहन में वाक्छल (Wit) का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है—

"विदूषक—**क्यों वेदान्ती जी, आप मांस खाते हैं या नहीं ?**

वेदान्ती—**तुमको इससे कुछ प्रयोजन है ?**

विदूषक—**नहीं, कुछ प्रयोजन तो नहीं है, हमने इस वास्ते पूछा कि आप तो वेदान्ती अर्थात् बिना दांत हैं सो भक्षण कैसे करते होंगे।"**

नाटकीय कला तथा हास्य विधान—इसका कथानक सुगठित नहीं है। वस्तुविन्यास शिथिल है। हास्य तो है ही नहीं, व्यंग्य भी कटु है। उसमें अवाँछनीय तीव्रता है। कहीं-कहीं तो व्यंग्य भी भौंड़ा हो गया है। यदि इस दृष्टि से विचार किया जाय कि उस समय हिन्दी में प्रहसनों की कोई परम्परा नहीं थी और उन्होंने ही इसका सूत्रपात्र किया तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारिम्भक प्रयास बुरा नहीं। यथार्थ जीवन से कथानक लेकर, समाज-सुधार के स्वास्थ्य दृष्टिकोण और अनाचार के प्रति घृणा पैदा कराने में यह प्रहसन सफल हुआ है। मनोरंजन तो यह करता ही है।

इसमें भारतीय नाट्य-पद्धति एवं विदेशी नाट्य-पद्धति दोनों का साम्मिश्रण हुआ है लेकिन रस का परिपाक किसी भी दृष्टिकोण से नहीं हो पाया है।

अन्धेर नगरी

इसका रचना काल सन् १८८१ है। इसमें ६ अंक हैं, गर्भांक एक भी नहीं। यह ६ दृश्यों का प्रहसन है। इसमें राज्य-व्यवस्था, जातिप्रथा, उच्च-वर्गों की काहिली और खुशामद-पसन्दी की तीखी आलोचना की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य यह दिखाना था कि लोक-संस्कृति के रूपों का राजनीतिक चेतना फैलाने के लिए किस तरह प्रयोग करना चाहिए।

यह प्रहसन एक ऐसे राजा के चरित्र को लेकर लिखा गया है जिसके राज्य में किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। जैसा किसी ने कहा न्याय हो गया। सब चीज़ टके सेर मिलती है। अंग्रेज़ राज्य का पर्यायवाची ही "अंधेर नगरी" कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य ही अंग्रेज़ी राज्य की अंधेरगर्दी एवं जनता में उसके विरोध में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करना है। यहीं के अमले चूरन खा कर दूनी रिश्वत पचाते हैं, यहीं हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर टके सेर मिलता है। यही कुलमर्यादा, बड़ाई, सच्चाई, वेद-धर्म सब टके सेर विकता है। इसी अंधेर नगरी के राजा को फाँसी चढ़ाया जाता है।

वास्तव में जन-साहित्य का यह सुन्दर प्रयोग है। भारतेन्दु ग्राम जनता में जिस साहित्य का प्रचार करना चाहते थे उसी का यह एक उदाहरण है। इसके गीत भी लोक गीतों के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

इसमें व्यंग्य (Satire) का प्रयोग देखिए। ब्राह्मण पर व्यंग्य है—

"जातवाला (ब्राह्मण)—जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी जात बेचते हैं। ठेके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाँय और धोबी को ब्राह्मण कर दें।"

—(भारतेन्दु-नाटकावली, पृष्ठ ६९२)

वक्रोक्ति (Irony) का प्रयोग भी यत्र-तत्र किया गया है। कुंजड़िन के मुख से अंग्रेज़ी राज्य व्यवस्था की व्याजस्तुति कराई गई है —

"कुंजड़िन—जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।"

—(भारतेन्दु-नाटकावली, पृष्ठ ६९०)

नाटकीय कला तथा हास्य विधान—यह परिस्थिति-प्रधान प्रहसन है। परिस्थितियों के संयोग-दर्शन से ही हास्य उत्पन्न होता है। इसमें व्यंग्य की तीव्रता है लेकिन उसमें मर्यादा है। घटनाओं में अतिरंजना हो गई है यथा

राजा का स्वयं फाँसी पर चढ़ने को तैयार हो जाना। चरित्र चित्रण का अभाव है। मनोरंजन करने में प्रहसन सफल है। कथोपकथन में स्वाभाविक्ता है तथा पात्रों के अनुकूल ही कथोपकथन करवाया गया है। इसका सबसे बड़ा गुण है इसकी स्वाभाविकता। इसमें उस समय के यथार्थ जीवन का चित्रण मिलता है। इसमें प्रतीक-व्यंजना उच्चकोटि की है किन्तु कलात्मकता एवं नाटकीय तत्वों का निर्वाह नहीं हो सका। यद्यपि यह प्रहसन उनके प्रहसनों में सर्वोत्कृष्ट है। इसकी हास्य-पूर्ण उक्तियाँ प्रशंसनीय हैं। जड़वादी जीवन-दर्शन पर इसमें कठोर व्यंग्य सफल उतरा है। **"भारतेन्दु की यह छोटी और आज कुछ भद्दी और अर्धनग्न, अर्द्धसभ्य सी लगने वाली कृति एक शाश्वत दार्शनिक सत्य पर आधारित है इसलिए इसकी लोकप्रियता बनी रही है और बनी रहेगी।"**[1]

विषस्य विषमौषधम्

इसकी रचना काल सन् १८७७ है। यह एक "भाण" है। "भाण" की व्याख्या भारतेन्दु ने अपने "नाटक" निबन्ध में इस प्रकार की है—"भाण में एक ही अंक होता है। इसमें नट ऊपर देख-देख कर, जैसे किसी से बात करे, आप ही सारी कहानी कह जाता है। बीच में हँसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आप ही दिखलाता है। इसका उद्देश्य हँसी, भाषा उत्तम और बीच-बीच में संगीत भी होता है"।[2] वास्तव में प्रहसन तथा "भाण" में नाम-मात्र का अन्तर मिलता है। दोनों ही हास्यप्रधान होते हैं। प्रहसन और भाषा का आधुनिक एकांकी से अन्तर दिखाते हुए डा० कीथ का कहना है—

"The Prahsanas and Bhans are hopelessly coarse from any modern Europe an standpoint, but they are certainly often in a sense artistic productions. The writers have not the slightest desire to be simple, in the Prahsanas their tendency to run riot is checked, as verse is confined to errotic stanzas and descriptions, and some action exists. In the Bhana, on the other hand, the right to describe is paramount, and the poets give themselves full rein."[3]

---

१. हास्य के सिद्धान्त—प्रो० जगदीश पाण्डे, पृष्ठ १३६

२. भारतेन्दु—नाटकावली, पृष्ठ ७६२

3. The Sanskrit Drama—Dr. Keith, Page 264

इसमें मल्हारराव को व्यभिचार के कारण गद्दी से उतारने की चर्चा है। इसमें एक ही पात्र है भंडाचार्य। इसका उद्देश्य देशी राजाओं की असमर्थता और अँग्रेज़ी राज्य की स्वार्थपरता पर व्यंग्य किया गया है। तत्कालीन राजाओं पर व्यंग्य करता हुआ भंडाचार्य कहता है—

"कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्वकृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया जैसे शतरंज के राजा, जहाँ चलाइये वहाँ चलें।"[1]

वक्रोक्ति (Irony) का प्रयोग भी किया गया है। अँग्रेज़ों के स्वामिभक्त कहते हैं—"साढ़े सत्रह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बन्द था तो हिन्दुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गई सिर्फ चावल है सो गोरे खाँय हम लोग माँड़ पीकर रहेंगे।"

नाटकीय कला—इसमें मुहावरों का प्रयोग उत्कृष्ट हुआ है तथा "पासा पड़े सो दाव, राजा करे सो न्याव", "बिजली को घन का पच्चड़", "हसब उठाइ फुला उव गालू।" यह चरित्रप्रधान है और भंडाचार्य के मुख से महाराज मल्हार राव का चरित्र-चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है। "विष की औषधि विष है" इस सिद्धान्त का प्रतिपादन "विषस्य विषमौषधम्" में सफलतापूर्वक किया गया है।

सबै जात गोपाल की—इसे हम एकांकी कह सकते हैं। इसका लक्ष्य ब्राह्मणों की अर्थलोलुपता की आलोचना करना है। इसमें दो पात्र हैं—एक पंडित और एक क्षत्री।

पंडित जी के शब्दों में इसका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। क्षत्री के यह पूँछने पर कि ब्राह्मणों ने यह व्यवस्था दे दी है कि कायस्थ भी ब्राह्मण हैं, पंडित जी कहते हैं :—

"पं०—क्यों, इसमें दोष क्या हुआ? "सबै जात गोपाल की" और फिर यह तो हिन्दुओं का शास्त्र पन्सारी की दुकान है और अक्षर कल्पवृक्ष हैं। इसमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है, पर दक्षिणा आपको बाएँ हाथ में रख देनी पड़ेगी। फिर क्या है फिर तो सबै जात गोपाल की।"[1]

---

१. "हरिश्चन्द्र मैगज़ीन"—नवम्बर, सन् १८७३, जिल्द १

नाटकीय कला—यह कथोपकथन-प्रधान है। नाटकीय-तत्व नहीं के बराबर हैं। कथोपकथन मनोरंजक है और उसके द्वारा व्यंग्य, हास्य एवं वक्रोक्ति का सफल प्रयोग किया गया है।

प्रताप नारायण मिश्र

कलि कौतुक रूपक—इसका रचना काल सन् १८८६ है। इस प्रहसन में चार दृश्य हैं। इसका उद्देश्य लेखक ने नाटक के नाम के साथ दे दिया है "जिसमें बड़े बड़े लोगों की बड़ी बड़ी लीला विशेषतः नगर निवासियों के गुप्त चरित्र दिखलाए गए हैं।" इस प्रहसन में समाज के फैले हुए अनाचार की हिम्मत के साथ आलोचना की गई है। इसमें उस वर्ग-संस्कृति पर व्यंग्य किया गया है जिसमें पैसे की आराधना मुख्य है। वेश्यागमन तथा अन्य सामाजिक चारित्रिक कमज़ोरियों का भण्डाफोड़ किया गया है। अँग्रेजी ने जो चमत्कार इस युग में दिखाये, मिश्र जी उस परम्परा को बहुत वर्षों पहले कायम कर गए थे।

मिश्र जी के नाटक "भारत-दुर्दशा" में भी साधुओं का वितंडावाद, दुराचारियों का दुर्व्यवहार, मांस-भक्षियों तथा मदिरा-सेवियों का अनाचार दिखाया गया है।

नाट्य कला एवं हास्य विधान—इनके प्रहसन चरित्र-प्रधान हैं। "कलि कौतुक रूपक" में अन्तिम दृश्य उपदेशात्मक अधिक हो गया है। नाटकीय संघर्ष का अभाव है। चरित्र चित्रण सजीव हैं तथा संवाद स्वाभाविक हैं। कलि कौतुक रूपक में वाक्-छल एवं व्यंग्य का प्रयोग अधिक हुआ है। अधिकतर हास्य ग्रामीण बोली द्वारा उत्पन्न किया गया है। संवाद का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है —

> **"लश्करीजान (वेश्या) एवं नब्बू (उसका साथी) का प्रवेश—**
>
> ल०—**कौन ख़ुश नसीब है बेटा।**
>
> शं०—**बस, लब पर है जिसके जाम बग़ल में हबीब है,**
> **उसके सिवा भी और कोई ख़ुश नसीब है।**
>
> सब—**यह इनके बेटा बोले। हाः हाः हाः हाः।**
>
> च०—**तो फिर अब विलम्ब केहि काज ?**
>
> ल०—**इस भडुए की गँवारी बोली न गई।**

च०—**तौका। हम तुभुक आहिन ?**

शं०—**क्या साहब ! हम लोग तुरुक हैं जो उर्दू बोलते हैं।**

च०—**उर्दू छिनारि कै बोलैया सब सार तुरके आहीं।**

(सब हँसते हैं—शंकर लज्जित होता है)"

इन्होंने मुहावरों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है ?

कठोर व्यंग्य का एक उदाहरण देखिये। बाबा लोग जो सन्तान देने का व्यापार करते हैं उनको आलम्बन बनाकर चम्पा भक्तिन से कहलवाया गया है—

"तू भी बाबा जी को जानै है ? भाई बड़े पहुंचे ! एक दिन मैं गई सो कहैं क्या हैं कि सन्तान तौ लिखी है पर गृहस्त से नहीं—मैं तो सुनके रह गई।"

पं० बालकृष्ण भट्ट

जैसा काम वैसा दुष्परिणाम—इसका उद्देश्य वेश्यागामियों की व्यंग्यात्मक आलोचना करना है। रसिकलाल मोहिनी वेश्या के मोह में अपनी धन सम्पत्ति नष्ट करता है और अपनी पत्नी मालती को अनेक प्रकार के कष्ट देता है।

नाट्य विधान—यह कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि का नहीं है। हास्य भी स्थूल है। उपदेशात्मक वाक्यों की भरमार है। संवाद शिथिल एवं बोझिल हैं। कथा-वस्तु में कोई विकास नहीं। नाट्कीय संघर्ष का सर्वथा अभाव है। इनके नाटकों का एक संग्रह "भट्ट नाटकावली" नाम से नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुआ है, उपरोक्त प्रहसन उसी में है।

यद्यपि इनका दूसरा नाटक "दमयन्ती-स्वयंवर" प्रहसन नहीं है किन्तु उसमें वचन विदग्धता एवं परिहासमयी भाषा का अच्छा प्रयोग हुआ है। राजा नल दमयन्ती के विरह में व्याकुल है। भागुरायण उसका विश्वस्त अमात्य है।

"राजा—**मित्र, कोई ऐसा उपाय सोचो जिसमें मेरा मनोरथ सफल हो।**

भागु—**अच्छा ठहरिये, मैं समाधि लगाये उसके मिलने का उपाय सोचता हूँ। पर देखिये, आप बीच में टोक कर मेरी समाधि भंग न कर देना।**

(आँख मूँह नाक दबाये समाधि लगाता है)

(आँख खोलकर) **मित्र उसके मिलने का उपाय** हमने सोच लिया।

राजा—**कहिये क्या ?**

भागु—**यह कि उस रांड की जाई का एक बार फिर ध्यानि कर गहरी नींद में गड़गाप हो जाइये। अपने मनोरथ को जल्द पा जाओगे।"**

राधा चरण गोस्वामी

भंग-तरंग—राधाचरण गोस्वामी "भारतेन्दु" नाम से एक मासिक पत्र निकालते थे। यह प्रहसन उसी में छपा है। इसमें नशेबाज़ी के दुष्परिणामों को दिखाया गया है। इसमें छः दृश्य हैं। इसके पात्र छूछू चौबे उस्ताद, वीछी, बुलबुल, सूरजी, नारायण, बच्चीसिंह, आदि हैं। भंगड़ियों को पुलिस का दरोगा पकड़ने आता है। नशे में वे उससे भी मज़ाक करते रहते हैं। वह चला जाता है। फिर ये लोग वेश्यागमन करते हुए पकड़े जाते हैं और मौका पाकर भाग निकलते हैं।

इसके संवाद बड़े मनोरंजक हैं। पहले दृश्य में यमुना किनारे भंगड़ी बैठे हुए हैं। उस्ताद और शार्गिर्दों का वार्तालाप होता है—

"बुलबुल—**(गाता है—भैरवी में) धन काकी सेजड़िया पै रात रही, माथे की बेंदी जात रही।**

सूर—**बोलो लड्डू कचौरी खात रही।**

छूछू—**अबे यों गाव—अब के दंगल में मथुरा की बात रही और बूंची सिंह के साथ हवालात रही। धन काकी सेजडिया पै रात रही।**

सब—**आहाः हा।"**[1]

इस प्रहसन में भंगड़ियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। नशेबाज़ जब नशा करके बैठता है तो उसे हाथी मक्खी नज़र आता है, ऐसा नशेबाज़ों का अनुभव है। भंगड़ियों में पुलिस पर बातचीत होती है। एक साहब कोत-वाल के महत्व का वर्णन करते हैं तो दूसरे उससे कहते हैं—

"वीछी (**धप्पा से)—गुरु, कुतवाल तुम्हें कर दें।**

१. "भारतेन्दु"—१६ सितम्बर सन् १८८३, पृष्ठ ६२.

धप्पा—**ना, कुतवाल तौ तोय कर दें, हमें तो कुतवाल के ऊपर—कौन होय—सिपट्ठर कर दें।**

बुल—**गुरु ! उस्ताद को सिपट्टर कर दें और तुम्हें क्लट्टर कर दें।**

धप्पा—**क्लट्टर को कहा महीना होय है !**

बुल—**बाईससे २२००)।**

धप्पा—**हैं बाईस से की तौ हम एक दिन में ठंडाई ही पी जायेंगे, घर के कहा खायंगें !**

बुल—**तो जज्ज कर दें ?**

धप्पा—**जज्ज कूं कहा मिले है ?**

बुल—**जज्ज कूं चार हजार को महीना मिले है।**

धप्पा—**हत्तेरी की, चार हजार की तो रबड़ी ही खाय जायेंगे, फिर भी रोवनों ही रह्यो।**

बुल—**तो लाटसाहब कर दें।**

धप्पा—**हाँ, हाँ, लाट कर दें, वाकूं कहा मिलै है ?**

बुल—**लाट साहब कूं बीस हजार मिले हैं।**

धप्पा—**हाँ, इतने में तो घर को काम काज चल जायगो, पर हम इतनो और लेंगे। सेर भर भांग, दो आना को मसालो, तीन पाव जलेबी, आध सेर माखन मिसरी, डेढ़ सेर मोहन भोग, पान सेर खस्ता पूरी कचौरी, दो सेर इमरती, तीन सेर मोती चूर के लड्डू, पान सेर दूध, दस सेर रबड़ी और मलाई, खोआ और द्वारिकाधीश के प्रसाद की बरफी"।**[1]

नाट्य कला—इसकी वस्तु यथार्थवादी जीवन से ली गई है। संवाद जानदार है। चरित्र चित्रण भी सजीव हैं। नाटकीय संघर्ष का भी पुट है। उस समय के प्रहसनों में यह प्रहसन काफ़ी वज़नदार है।

बूढ़े मुँह मुँहासे—इसका रचना काल सन् १८८७ है। इस प्रहसन में दो अंक हैं। इसके मुखपृष्ठ पर प्रकाशित इस दोहे से इसका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है—

"घास पात जे खात हैं, तिनहिं सतावति काम,
माल मलीदा खात जे तिनके मालिक राम।"

---

१. भारतेन्दु—१६ सितम्बर १७८३, पृष्ठ ६५.

इसके मुख्य पात्र हैं मौला, कल्लू, लाला नारायण दास, सिताबो, नन्नी और विद्याधर पंडित। इसमें लाला नारायण दास का चरित्र चित्रण किया गया है जो ऊपर से धर्म का चोंगा पहिने रहते हैं और वास्तव में दुराचारी है। नारायण दास का आसामी है मौला जिसकी स्त्री बहुत सुन्दर है। लाला नारायण दास की नियत उस पर बिगड़ जाती है और वे उसको पाने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करते हैं।

नारायण दास अपना शृङ्गार करने के बाद सोचते हैं—

"नारायण दास—(स्वगत) **ये ताज खूब माथे पर खिला है, मुसलमान औरतें इसको खूब पसन्द करती हैं और इससे यह भी तो एक मतलब बना कि गंजी चाँद ढंक गई।"**

सिताबो के शब्दों में लाला जी के चरित्र पर व्यंग्य कैसा मार्मिक है—

"सिताबो—(हँसकर) **फिर लाला भगत भी बड़े, दिन भर माला हाथ में ही रक्खें, सोमवार को एकादशी का बर्त करें। आहा, कैसी भक्ती।"**

लाला जी का पुत्र अंग्रेज़ी पढ़ता था। लाला जी उसे समझाते थे कि आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से हिन्दू धर्म रसातल को चला जायगा क्योंकि लड़के मुसलमान बावर्चियों के हाथ का खाना खा लेते हैं। उनके इस पाखण्ड पर गोस्वामी जी ने लाला जी के नौकर कल्लू द्वारा छीटा कसवाया है—

"मुसलमान की रोटी खाने से तो जात जाय, वाकी लुगाई रखने से कछू नाय।"

नाटकीय कला तथा हास्य विधान—यह चरित्र-प्रधान प्रहसन है। इसमें सजीव चरित्र-चित्रण है। नाटकीय संघर्ष भी सुन्दरता पूर्वक निभाया गया है। कथोपकथन में जान है। व्यंग्य एवं वाक्छल का प्रयोग खूब हुआ है, शुद्ध हास्य का अभाव है।

तन मन धन, श्री गुंसाईं जी के अर्पन—इसका रचना काल सन् १८९० है। यह आठ दृश्यों का छोटा सा प्रहसन है। सेठ रूपचन्द गुंसाईं जी, रामा कुटनी, सेठानी जी तथा नवशिक्षित गोकुल इसके प्रमुख पात्र हैं। जैसा कि प्रहसन के नाम से स्पष्ट है कि गुंसाई लोगों का खाका इसमें खींचा गया है। उनका पाखण्ड, उनकी चरित्र-हीनता, उनकी पोप-लीला की धज्जियाँ उड़ाना ही इसका उद्देश्य है। गुंसाई जी के भक्त सेठ रूपचन्द अपनी सेठानी की भेंट

गुँसाई जी को चढ़ाने को तैयार हो जाता है लेकिन नवशिक्षित गोकुल बाधक होता है और गुँसाई जी की किरकिरी हो जाती है।

नाट्य कला और हास्य विधान—इसमें संवाद द्वारा ही हास्य का उद्रेक हुआ है। कथा-विन्यास अधिक सुन्दर नही। पात्रों के क्रिया व्यापार से चरित्रों का प्रस्फुटन नही होता, लेखक को पात्रों के मुख से अपनी बात कहलवानी पड़ती है। हमारी सम्मति में यह प्रहसन इनके तीनों प्रहसन में हलका है।

देवकी नन्दन त्रिपाठी

"भारतेन्दु के बाद यदि तीव्र और कठोर व्यंग्य मिलता है तो वह देवकी-नन्दन त्रिपाठी का। ········· "प्रहसनों द्वारा समाज-सुधार का कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने शुरू किया और देवकीनन्दन त्रिपाठी ने उसे आगे बढ़ाया।"[1]

इन्होंने आठ प्रहसन लिखे। "रक्षा बन्धन" (१८७८), "एक एक के तीन तीन" (१८७९), "स्त्री चरित्र" (१८७९), "वेश्या विलास", "बैल छः टके को", "जयनार सिंह की" (१८८३), "सैकड़े में दश दश" तथा "कलियुगी जनेऊ" (१८८३) इनमें अन्तिम प्रहसन को छोड़ कर बाकी अप्रकाशित हैं। रक्षा बन्धन में मदिरा सेवन और वेश्यागमन का दुखद परिणाम दिखाया गया है। "एक-एक के तीन-तीन" में ब्याज-खोरों की मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है, "स्त्री चरित्र" में वेश्यागामी तथा कुटिल स्त्रियों के दूषित चरित्र को दिखाया गया है, "वेश्या विलास" का उद्देश्य इसके नाम से स्पष्ट है। "बैल छः टके को" इसका उद्देश्य मनुष्य को अधिक लोभी होने के दुष्परिणामों से परिचित करना है तथा "साँची करे मीठी पावे" का आदर्श सिखाना है। "जयनार सिंह की" का उद्देश्य बूझा तथा जादू टोना करने वालों की खिल्ली उड़ाना है तथा तत्कालीन अन्धविश्वासों पर करारी चोट करना है, "सैकड़े में दश-दश" में मद्यपान तथा निन्द्यकर्म करने वालों की पुलिस द्वारा किरकिरी कराई गई है।

नाट्य कला एवं हास्य विधान—इन प्रहसनों में तीक्षण व्यंग्य मिलता है, अन्य प्रहसनकारों की भांति अर्थहीन प्रलाप नहीं। इनका परिहास संगत एवं स्वाभाविक है। कथोपकथन भी स्वाभाविक है और चरित्र-चित्रण भी संतोष-जनक किया गया है।

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० वार्ष्णेय, पृष्ठ २५१-२५३.

अन्य प्रहसन लेखक

बाबू नानकचन्द का "जौनपुर का काज़ी", राधाचरण गोस्वामी द्वारा सम्पादित "भारतेन्दु" के तीन अंकों में क्रमश: प्रकाशित हुआ है। इसमें एक कुम्हार अपने गधे को आदमी बनाने के लिए मौलवी साहब के पास छोड़ जाता है। थोड़े दिनों बाद जब वह उसे वापिस लेने आता है तो मौलवी साहब कुम्हार से कह देते हैं कि वह तो जौनपुर का काज़ी हो गया। वह उसी स्थान पर पहुँचता है। उसे देख कर काज़ी साहब के छक्के छूट जाते हैं। कुम्हार को जब काज़ी जी का चपरासी धक्का देता है तो वह कहता है —

"कुम्हार—**अरे भैया हट जा। चों जोरावरी करे हैं। मोय द्वै द्वै बात तो कर लेन दै। यातें इही दीसे है काजी अब कैसो आय कै बैठ गये है। मामा लोहरो (मुंह बनाकर) गधा कूं निकाल दो, ईं खबरई नाहे कितेक रुपैया खरचा भये हैं जब गधा ते आदमी करायो है। तोरई कैसे फूल अब ही तो तेरो पलान जेबरा धरो है ज्यों की त्यों, लाऊँ का? और तेरे हांकने की छन्टी मेरे हाथ में ही है, देखई रही तेरी नानी, जाते तेरी खाल उड़ाई ही।**"[१]

इसमें हास्य का उद्रेक अतिरंजित घटनाओं द्वारा कराया गया है। इसका प्रधान उद्देश्य मनोरंजन ही है। संवाद अत्यन्त सजीव हैं।

"**किशोरीलाल गोस्वामी**" का "चौपट चपेट" भी सुन्दर प्रहसन है। इसमें वेश्यागमन का दुष्परिणाम दिखाया गया है। श्लिष्ट शब्दों अथवा बेढंगे नामों द्वारा हास्य का उद्रेक किया गया है।

इसके अतिरिक्त "**देवदत्त शर्मा**" का "अति अँधेर नगरी" (१८९५) "**नवल सिंह चौधरी**" का "वेश्या नाटक" (१८९३), "**विजयानन्द**" का "महा अँधेर नगरी" (१८९२), "**राधाकान्त लाल**" का "देसी कुत्ता विलायती बोल" (१८९८), "**बल्देव प्रसाद मिश्र**" का "लालसा बाबू", "**रामलाल शर्मा**" का "अपूर्व रहस्य" (१८८८), "**पन्नालाल**" का 'हास्यार्णव" (१८८५), "**हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ**" का "ठगी की चपेट" (१८८४), प्रहसन उल्लेखनीय हैं। इन प्रहसनों के विषय भी वही मदिरा-सेवन तथा वेश्यागमन के दुष्परिणाम, फैशन परस्ती, धार्मिक पाखण्ड आदि हैं। हास्य-उद्रेक के साधनों में भी अति-नाटकीयता एवं अतिरंजित घटनाओं का समावेश है।

---

१. भारतेन्दु—अंक ६, ७, ८ (सम्मिलित), पृष्ठ १२५.

द्विवेदी युग

यह युग विशेषकर भाषा-परिष्कार का रहा। इस युग में भारतेन्दु की विनोद-प्रियता एवं ज़िन्दादिली का स्थान शुष्कता एवं गम्भीरता ने ले लिया। द्विवेदी जी का व्यक्तित्व अत्यधिक गम्भीर था। उनके युग में कम प्रहसन लिखे गये।

उस समय जो पारसी नाटक कम्पनियाँ प्रचलित थीं उनमें गम्भीर नाटकों के बीच में एक छोटा सा कथानक जो हास्य-प्रधान होता था, रख देते थे। आगाहश्र काश्मीरी, नारायण प्रसाद "बेताब" आदि लेखक नाटकों के बीच में लघु प्रहसन रख कर वे नाटकों को नीरस होने से बचाते थे। परिमाण में देखा जाय तो भारतेन्दुकाल में जो प्रहसनों की बाढ़ आई थी वह द्विवेदी युग में उतर गई और परिणामस्वरूप भारतेन्दु युग से अपेक्षाकृत कम संख्या में प्रहसन लिखे गये। इस युग के आलम्बन डाक्टर, वैद्य, ज्योतिषी, राय बहादुर और आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा नए फैशन के शिकार हमारे नये युवक और नवयुवतियाँ, ब्राह्मण और उनके शास्त्र, साधु और उनके नीच व्यवहार और व्यभिचार-प्रवृत्ति आदि थे।

नाट्कला एवं हास्य-विधान—वास्तव में देखा जाय तो यह मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु युग से नाट्यकला का विकास द्विवेदी युग में अधिक हुआ। प्रारम्भिक प्रहसन होने के कारण नाट्यकला की दृष्टि से इस युग को प्रहसनकारों में परिष्कार पाया जाता है। घटनाओं द्वारा स्वयं पात्र का चरित्र स्पष्ट होना, व्यंग्य में कटुता का कम होना, शुद्ध हास्य का प्रहसनों में समावेश एवं कथोपकथन आदि में परिपक्वता दिखलाई पड़ती है। यद्यपि चरित्र-चित्रण का अभाव एवं अतिनाटकीय प्रसंगों का बाहुल्य अब भी विद्यमान था।

प्रमुख नाटककार

बदरीनाथ भट्ट

इनके तीन प्रहसन प्रसिद्ध हैं—"लबड़-धौंधौं" (१९२६), "विवाह विज्ञापन" (१९२७) और "मिस अमरीकन" (१९२९)।

"लबड़-धौंधौं" में ६ प्रहसन संग्रहीत हैं—(१) पुराने हाकिम का नया नौकर, (२) आयुर्वेद कसेरू वैद्य बैंगनदास जी कविराज, (३) ठाकुर दानीसिंह साहिब, (४) हिन्दी की खींचातानी, (५) रेगड़ समाचार के एडीटर की धूल दच्छना, (६) घोंघा बसन्त विद्यार्थी। "पुराने हाकिम का नया नौकर" में आलम्बन ऐसे मालिकों और मालिकिनों को बनाया गया है जिनके दुर्व्यवहार

से नौकर टिक ही नहीं पाता वरन् और चंट बन कर निकलता है। इसमें तीन दृश्य हैं। इसका उद्देश्य नौकर के मुँह से स्पष्ट करा दिया गया है—

"नौकर—**सच बात तो यह है कि क्लट्टर, डिप्टी क्लट्टर, टिकट क्लट्टर, इंसपेट्टर, मास्टर, ऐडीटर वगैरह बीसियों टरों के यहाँ मैंने नौकरी की, पर जो बढ़िया गालियाँ यहाँ खाने को मिलीं, वे और जगह नहीं। जरा घर में घुसा कि दोनों की दोनों, बिल्लियों की तरह मेरे ऊपर टूटीं। जरा बाहर आया कि बुड्ढे खूसट ने खाया। बेतरह हैरान हूँ। वाह री नौकरी। तू भी कैसे कैसे तमाशे दिखाती है। लीजिये, अभी हालहीहाल में, न कुछ बात थी न चीत, दोनों की दोनों मेरे ऊपर झाड़ू लेकर टूट पड़ीं और झट्कम-पेली करके मेरा कुरता फाड़ डाला और मुझे नोचा-खसोटा और बकोटा भी।**"[1]

"आयुर्वेद-कसेरू-वैद्य बैंगनदास जी कविराज" का उद्देश्य प्रहसन के नाम से स्पष्ट है। "नीम-हकीम-वैद्य लोग किस प्रकार भोली जनता को धोखा देकर रुपया ऐंठते हैं। यही नहीं, वैद्य लोग लड़कियों को वैद्यक पढ़ाने के बहाने बुलाकर किस प्रकार व्यभिचार कराते हैं यह भी इसमें दिखाया गया है। इसमें व्यंग्य तीखा है।

"ठाकुर दानी सिंह" में एक ही दृश्य है। इसमें अतिनाटकीयता एवं अतिरंजना से हास्य का उद्रेक किया गया है। कठपुतली के तमाशे को सही समझ कर ठाकुर साहब बौखला उठते हैं—

"पुतलीवाला—**हजूर, जे (पुतली को चलाता हुआ) राजा मानसिंह जैंपुर वाले, बादशाह से हुक्म लेकर, चित्तौड़गढ़ को जीतने—**

ठाकुर—(**क्रोध और जोश में**) **अरे जातिद्रोही, कलंकी, बदमाश। पहले मुझसे तो जान बचाले, फिर कहीं जाने का नाम लीजो। मैं अभी सालों का ढेर** (ठाकुर साहब डंडा लेकर पुतलियों पर पिल पड़ते हैं, और मानसिंह की पुतली के अलावा और भी कई पुतलियां तोड़-फोड़ डालते हैं, दो एक हाथ पुतली वाले के भी जमाते हैं। देखने वाले आश्चर्य और भय से बगलें झाँकते हैं।)

पुतलीवाला—**हाय मैं मरा।**

ठाकुर—**हाय हाय कैसी ? साला चित्तौड़ जीतेगा।**

पुतलीवाला—**मैं मरा —हाय मेरा रुजगार गया—**"

---

१. लबड़-धौंधौं—पृष्ठ २५.

"हिन्दी की खींचातानी" प्रहसन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के छठे अधिवेशन भरतपुर में खेलने के लिए लिखा गया था परन्तु आपस के मन मुटाव के कारण न खेला जा सका। इसमें गीत अधिक है। इसमें उर्दू पर व्यंग्य किया गया है। उस समय लोग हिन्दी भी उर्दू के ढंग से ही बोलते थे, विशेष कर अदालतों में हिन्दी की बड़ी दुर्दशा थी—

"दलाल—**तो क्यों महाराज, आप परचारक हैं, परचारक ? आप का नाम शौशंकर तो नहीं है, शौशंकर ?**

परदेशी—**"शौशंकर" क्या ? अरे, तुम हिन्दू होकर और आर्य वंशज होकर एक बाहरी लिपि की बदौलत अपने आप अपने नाम बिगाड़ते हो। मेरा नाम शिव शंकर है शिव शंकर।"**[1]

"रेगड़-समाचार" के एडीटर की धूल दच्छना" में चुनाव के उम्मीदवारों द्वारा सम्पादकों की कैसी दुर्दशा की जाती है, इसका खाका खींचा गया है। इसमें एक ही दृश्य है।

"घोंघा-बसंत विद्यार्थी" भी एक दृश्य का प्रहसन है। इसमें भट्ट जी ने शिकारपुर के रहने वाले एक विद्यार्थी का सुन्दर चित्रण किया है। साथी उसे खिजाने के लिए पूँछते है। तुम कहाँ के रहने वाले हो ? कुछ कहते है आया शिकारपुरी आदि। यह सुनकर अपने साथियों को गाली देता हुआ वह भाग जाता है और कहता है —

"घोंघा-बसंत—**यहाँ के लोग गुणावली तो देखते नहीं, घर का पता पूँछते हैं कि "कहाँ के रहनेवाले हो ? कहाँ के रहने वाले हो ?" अरे, रहने वाले हैं तुम्हारे घर के, कहो, क्या कर लोगे तुम हमारा ? कह दिया करता था कि ज़िला बुलन्दशहर का रहने वाला हूँ पर अब किसी कंबख्त ने—भगवान उसे सौ बरस तक सब विषयों में फ़ेल करे और सत्यानास जाय उसका—आस्तीन का साँप, कुल्हाड़ी का बेंटा कहीं का। और फिर, आपको बोलना हो, बोलिए—जी हाँ न बोलना हो, न बोलिए, अपना रास्ता नाँपिए, चाल दिखाइए, हवा खाइये, सवारी बढ़ाइये, वगैरह वगैरह और भी बहुत से अच्छे अच्छे वाक्य हैं। हम जहन्नुम के रहने वाले सही, क्या कर लेंगे आप हमारा ?"**[2]

---

१. लबड़धौंधौं—पृष्ठ ६७.

२. लबड़धोंधों—पृष्ठ ८१.

विवाह-विज्ञापन—इसका रचनाकाल सन् १६२७ है। इसमें पाँच दृश्य हैं। इसमें ऐसे पुरुष को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो अपनी स्त्री के मरने के पश्चात् दिखाता तो यह है कि वह दूसरा विवाह नहीं करना चाहता परन्तु उसकी हार्दिक इच्छा है कि किसी प्रकार से सर्वोत्तम कन्या से उसका विवाह हो जाय। एक पत्र-सम्पादक सेठ जी से रुपया ऐंठ कर एक विज्ञापन निकाल देते हैं। एक पुरुष से उनका विवाह करा दिया जाता है और जब वह आदमी प्रकट होता है तो स्थिति-हास्य की सुन्दर व्यंजना होती है। वास्तव में पाश्चात्य बनाव-शृंगार पर भी इसमें छीटाकशी की गई है। इसका विज्ञापन पठनीय है—

"एक अत्यन्त सुन्दर, सुशिक्षित, सुप्रसिद्ध, सुलेखक, सुकवि, सुस्वास्थ्य सुसमृद्धिशाली लड़के के लिए एक अत्यन्त रूपवती, गुणवती, सुशिक्षिता, विनम्रा, आज्ञाकारिणी, साहित्य-प्रेमिका सुकन्या की आवश्यकता है। लड़के की मासिक आय १०,०००) रु० है। लड़का गद्य व पद्य लिखने में तो कुशल है ही, इंजीनियरी, डाक्टरी, प्रोफ़ेसरी, एडीटरी, आदि कलाओं में भी एक ही है। अपने घर में अवतार समझा जाता है। स्थावर व जंगम संपत्ति कई लाख की है। करोड़ कहना भी अत्युक्ति न होगी। घराना वेदों के समय का पुराना और लोक-परलोक में नामी है। लड़का समाज सुधारक होने के कारण, जाति-बंधन से मुक्त है, अर्थात् किसी भी जाति की कन्या ग्राह्य होगी, यदि वह इस योग्य समझी गई। पत्र व्यवहार फ़ोटो के साथ कीजिए। पता-सम्पादक, बांगड़ू समाचार कार्यालय।"[1]

"मिस अमेरिकन" प्रहसन सन् १६२६ में लिखा गया। इनका यह प्रहसन सर्वोत्कृष्ट है। इसमें इन्होंने पश्चिमी सभ्यता का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है। अमेरिकन पात्र इसमें पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक हैं। उनका धर्म रुपया है। वे अपनी पुत्री का विवाह किसी से कर सकते हैं यदि उससे धन मिलता हो। प्रहसन के अमेरिकन पात्र पूर्व की आध्यात्मिक संस्कृति को नहीं समझते हैं। वे तो भौतिकवादी हैं।

. बोहारी लाल जो कि पूर्वी सभ्यता का प्रतीक है, उसे अपना समाज प्रिय नहीं है क्योंकि हिन्दू समाज में नारी का कोई मान नहीं है। और हिन्दू झूँठे हैं। दैव योग से बोहारी एक कवि हैं। वे काव्य कला पर अपने विचार व्यक्त करते हुए अश्लीलता को काव्य की आत्मा बताते है। उनमें विचार से अश्लीलता के अभाव के कारण हिन्दी कविता नीरस हैं। इस प्रकार से भट्टजी ने उन कवियों

१. विवाह विज्ञापन—पृष्ठ १५, १६.

का खाका इसमें खींचा है जो सौन्दर्य का विकृत रूप अपने काव्य द्वारा उपस्थित करते हैं।

"वास्तव में अमेरिकन जीवन के प्रति कुछ अन्याय इस प्रहसन ने अवश्य किया है। अमेरिकन चरित्रों को इतना अतिरंजित चित्रित किया है कि वहां व्यंग्य बहुत कटु हो गया है। "मिस अमेरिकन" में आपने स्त्री समुदाय का पुंश्चलीपन चित्रित किया है—आप हास्य की सीमा का उलंघन कर गये हैं। न जाने क्यों अमेरिकन समाज का इतना कठोर खाका खींचा है। मौलियर अपने विरोधी पक्ष को जितनी असमवेघ श्रेणी हो सकती है, उसमें रख देता है, परन्तु उसके साथ निष्ठुरता नहीं करता। आपने अमेरिकन समाज के जिस चित्र को सामने रक्खा है उसमें अमेरिकन समाज के साथ निष्ठुरता की गई है और उन पात्रों में व्यक्तित्व का अंश शून्य रहने के कारण वे समाज के प्रतीक (Type) पात्र रह गये हैं इसलिए उनके अन्दर अभावात्मकता आ गई है।"[१]

नाटकीय कला एवं हास्य विधान—द्विवेदी युग के प्रहसनकारों में भट्टजी श्रेष्ठ हैं। इन्होंने प्रहसनों में विदूषकों को स्थान नहीं दिया है। इनके अधिकतर प्रहसनों में स्वाभाविक हास्य है। "विवाह विज्ञापन" परिस्थिति प्रधान प्रहसन है एवं "मिस अमेरिकन" चरित्र प्रधान। चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक रूप से हुआ है। कथोपकथन में तीव्रता है। इन्होंने वाक्छल का प्रयोग हास्य के उद्रेक करने में यथेष्ट किया है। स्थिति-जन्य-हास्य भी मिलता है। व्यंग्य की मात्रा कहीं कहीं अतिक्रमण कर जाती है।

जी. पी. श्रीवास्तव

इनका लिखा सर्वप्रथम प्रहसन "उलटफेर" है जिसका रचनाकाल सन् १९१९ है। इसमें तीन अंक हैं। पहले अंक में पाँच, दूसरे में सात और तीसरे में आठ दृश्य हैं। प्राचीन नाट्य-पद्धति के अनुसार इसमें प्रस्तावना है जिसमें सूत्रधार तथा विदूषक के कथोपकथन द्वारा प्रहसन का उद्देश्य स्पष्ट कराया गया है। सूत्रधार उद्देश्य बताता है :—

"यहाँ तो हमारे देशी भाइयों को मुक़दमेबाजी का ऐसा चस्का पड़ा हुआ है कि दौलत रहे या न रहे, जान रहे या न रहे, ईमान रहे या न रहे, मगर मुकदमेबाजी का सिलसिला हमेशा कायम रहेगा।"[२]

इसमें आलम्बन वकीलों तथा मुकदमेबाज़ों तथा उनके दलालों को बनाया गया है। इसमें सब मिलाकर ४७ पात्र हैं। इसके प्रमुख पात्र मिर्ज़ा

१. हिन्दी नाटकों में हास्य—डा. सत्येन्द्र—माधुरी चैत्र, ३०८ तु. स. पृष्ठ ३१०.
२. उलटफेर—पृष्ठ २.

अललटप्पू, चिराग़ अली, आजिज अली, खुराकात हुसैन, मुर्हरिर अली, गुलनार, दिलफ़रेब, रामदेई आदि हैं। वकीलों के दलाल इस प्रकार भोले मुवक्किलों को फंसा कर लाते हैं तथा न्यायालयों में इन लोगों के कारण किस प्रकार अन्याय होता है, वही इस प्रहसन में दिखाया गया है। एक दृश्य में खुराफ़ात सरिश्तेदार तथा अललटप्पू डिप्टी कलक्टर का वाद-विवाद रोचक है—

"अललटप्पू—**तेरा मुकदमा बिल्कुल झूँठा है।**

खुराफात—**जी बजा है। तभी तो वकील किया है"**।[1]

(२) **मरदानी औरत**—इसका रचना काल सन् १९२० है। "मरदानी औरत" में समालोचकों का पक्षपात एवं नौकरों की बेवकूफी का मज़ाक उड़ाया गया है। रमचौरवा नौकर और गड़बड़ अली की बातचीत होती है—

"गड़बड़—**जी हजूर। अरे रमचोरवा, ओ रमचोरवा।**

(रमचोरवा का आना)

रमचोरवा—**का होय हो। आवत आवत मूड़े पर आसमान उठाय लेत हैं। भीतर अलगे कुहराम मचा है। बाहर ई जान खाए जाए हैं।**

गड़बड़—**अबे चुप, देखता नहीं, राजा साहब आए हैं। चल कुर्सी ला।**

रमचोरवा—**अरे ई धौंकल राजा साहब होयें।**

गड़बड़—**हाँ, मगर तमीज से बातें कर।**

रमचोरवा—**तब्बै धौंलर बन्दर अह हैं। भुलाई गदहा अस तो फूला हैं, कसम कुरसिया माँ धँसिएं।"**[2]

इसी प्रकार समालोचक पक्षपाती लाल मूर्खानन्द का व्यंग्यपूर्ण चित्रण पठनीय है—

(समालोचक पक्षपाती लाल मूर्खानन्द का मुँह सिकोड़े हुए आना। हुलिया कुरूप, काना, बदन लकवा मारे)

"गड़बड़—**धत् तेरी मनहूस की। कहाँ से सामने आ गया। अब नाउम्मेदी नजर आती है। मगर वाह, वाह; यह लचक देखिये। एक एक क़दम पर सारा बदन छेहत्तर बल खाता है।**

---

१. उलटफेर—पृष्ठ ४७.

२. मरदानी औरत—पृष्ठ १०७.

गड़बड़—हाँ, देखता तो हूँ, दुनिया भर के ऐबों से भरे मालुम होते हो।

पक्ष०—तभी तो समालोचक हुए। जब तक अपने में ऐब न होंगे, दूसरों में क्या खाक ऐब निकालेंगे ?

गड़बड़—अच्छा, तो आप ऐब ही ऐब देखते हैं और गुण ?

पक्ष०—गुण कैसे दिखाई पड़े जी ! गुण की देखने वाली आँखें तो फोड़वा डाली हैं। ऐब वाली रख छोड़ी हैं। देखते नहीं काने हैं।"[1]

3 **साहित्य का सपूत**—यह साहित्यिक कुरीतियों को लेकर लिखा गया है। इसमें साहित्यिक पति और दुनियादार पत्नी की असंगति हास्य का विषय है। इसके पात्र तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं।

"संसारी" आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रतीक है तथा "साहित्यानन्द" प्राचीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रतीक हैं जिसके एक विवाह योग्य कन्या है। "संसारी" उससे प्रेम करता है। स्वाभाविक रूप से बीच में बाधाएँ उपस्थित होती हैं जिनके दूर करने में बहुत सी हास्य-पूर्ण घटनायें घटित होती हैं। इसका लक्ष्य हास्य रस का प्रभुत्व दिखाना भी है। टेसू और साहित्यानन्द वार्तालाप करते हैं—

"सा०—हाँ, क्योंकि हास्य-टिप्पणी मुझको लिखनी है, तुझे नहीं।

टेसू—मैं कैसे हँसाऊँ ?

सा०—यह मैं नहीं जानता। बस, हँसाना पड़ेगा, अन्यथा तेरा अपराध क्षमा नहीं हो सकता।

टेसू—यह बड़ी मुश्किल है। रुलाना कहिए तो अभी कह करके रुला दूँ कि आपका कोई मर गये हैं। गुस्सा दिलाने को कहें तो ऐसी गाली दूँ कि आप अगिया बैताल हो जायँ। क्योंकि यह सब तो आसान मालूम होते हैं, मगर हँसाना बड़ी टेढ़ी खीर है। समझ में नहीं............

सा०—अबे चुप चुप चुप।

टेसू—मगर क्यों क्यों क्यों ?

सा०—एक तो कुछ अनाड़ियों ने हास्य को साहित्य में स्थान देकर साहित्य की दुर्दशा यों ही कर डाली है, उस पर तेरी यह वार्ता

---

१. मर्दानी औरत—पृष्ठ १०७, १०८.

वह जो कहीं सुन लेंगे तो हास्य को साहित्य का सब से कठिन अंग मान बैठेंगे।"[१]

पत्र पत्रिका सम्मेलन—यह सन् १९२४ में "वर्तमान" में "समाचार पत्रों का सम्मेलन" के नाम से प्रकाशित हुआ था। इस प्रहसन का उद्देश्य भी साहित्यिक कुरीतियों का दिग्दर्शन कराना ही है। इसमें तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं को अपने असली नामों के रूप में प्रकट होना पड़ा है। इसमें हास्य, समाज, साहित्य, इत्यादि पुरुष पात्रों के अतिरिक्त चांद, मतवाला, मौजी, गोल माल, भूत, बंगवासी, श्री वैंकटेश्वर, भारतमित्र, प्रताप, ग्रामगजट, इत्यादि पत्र भी मनुष्यों का रूप धारण कर प्रकट होते हैं। स्त्री पात्रों में प्रकृति, कला, स्वाभाविकता, भारतमाता के अतिरिक्त माधुरी, सरस्वती, प्रभा, सत्यमाला, मनोरमा इत्यादि मासिक पत्रिकाएँ भी अभिनय में भाग लेती हैं। इनके अतिरिक्त नाटक, उपन्यास और जीहजूरीराम इत्यादि भी पात्र हैं।

इस प्रहसन में हास्यरस की व्यापकता, महत्व और सार्वभौमिकता का विवेचन है। समाज और साहित्य दोनों उसकी ओर आँख उठा कर देखना पाप समझते हैं। फिर भी वह हास्य के साथ सम्मेलन में जाना चाहती है। उधर प्रकृति की बहिन और साहित्य की पत्नी कला आती है।

दूसरी मूल भावना समाज की विशृंखलता, पाखंड और दुर्दशा का प्रत्यक्षीकरण है। भूखों मरती जनता का रुपया बेदर्दी से सभा सम्मेलनों में उड़ाया जाता है, समाज सुधार के बहाने दिनों दिन हजारों रुपये नष्ट हो रहे हैं। तत्कालीन नाट्यकला और उपन्यास निर्माण पर भी इसमें विचार प्रकट किए गए हैं। नाटकमल अपनी दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"मैं अपनी दुर्दशा भला किस मुँह से बयान करूँ। आखिर मेरी सूरत हो तब तो। नाटककारों ने उसे ऐसी बिगाड़ी है कि वह देखने काबिल न रही। बस मेरा हाल सुन कर ही आप मेरे पर आँसू बहा लीजिए। हाँ, नाटक मंडलियों में मेरा मुँह दिखाई देता है। मगर हाय! वहाँ सीन-सीनरी की चकाचौंध में, पोशाक की जगमगाहट में, पाउडर की लीपपोत में, संगीत की झंकार में दर्शक मेरी असलियत की थाह नहीं पाते—मेरे अंग-अंग में जोड़ लगा कर मेरा ढांचा बना है। सर विलायती है, तो धड़ मुलतानी। हाथ बंगला के हैं

---

१. साहित्य का सपूत—अंक २, दृश्य १, पृष्ठ २१.

तो पैर गुजरात के। इसलिए मुझमें स्वाभाविक बल, भाव, सुन्दरता, सुडौलपन कुछ नहीं है। ढाँचा बेडौल, चाल बुतुकी, बातें लचर, रंग बदरंग और उसमें न ट्रेजिडी हूँ न कामेडी, बल्कि एक अजीब गड़बड़ घोटाला।"

नाट्य कला और हास्य विधान—श्रीवास्तव जी कला की दृष्टि से उच्च-कोटि के न हों किन्तु प्रचार की दृष्टि से अवश्य सबसे आगे हैं। राधेश्याम कथा-वाचक की रामायण साहित्यिक दृष्टि से शून्य है किन्तु प्रचार की दृष्टि से सबसे आगे है। इनका हास्य अधिकतर स्थिति-जन्य हास्य है। इन्होंने प्रहसनों में ऐसी स्थितियाँ रक्खी है जिनसे हास्य ज़बरदस्ती उत्पन्न किया गया है। "मरदानी औरत" में सम्पादक बंटाधार नीलाम करने वालों की दृष्टि से बचने के लिए एक बोरे के अन्दर बन्द हो जाते हैं। बोरा मुखिया के दिखा देने पर एक सौ रुपये पर नीलाम हो जाता है। खरीदने वाला जब बोरा खोलता है तब बंटाधार निकल पड़ते है और उन पर बेभाव की मार पड़ती है। इसी प्रकार अन्य दृश्य में बंटाधार और पेटूलाल की तोंदें टकराती हैं। यथा, द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में—

"बंटाधार—**अरे बाप रे बाप! तोंद फूट गई।**

पेटूलाल—**अररररर! मालगाड़ी लड़ गई।**

बंटाधार—**अरे कौन चूरन वाले? अरे यह कौन सा रोग हो गया है तुम्हें! बदन भर में गर्म ही गर्म।"**[1]

इन्होंने वाक्छल का प्रयोग भी सफलता पूर्वक अपने प्रहसनों में किया है।

"रामदेव—**हुजूर के नाव आये। भूल गये न।**

चिराग़अली—**याद रखना, मेरा नाम चिराग़ अली है।**

रामदेव—**चिराग़ अली—हाँ जउन टिमिर टिमिर बरै। अरे! हुजूर केर नाव मसाल अली जउन ध-ध-ध-ध-बरै!"**[2]

व्यंग्य का प्रयोग भी सुन्दर हुआ है। वकीलों पर कसा हुआ एक व्यंग्य देखिए—

"चिराग अली—**लाओ इस बात पर शुकराना।**

---

१. उलट-फेर—पृष्ठ ११.

२. उलट-फेर—पृष्ठ २६.

रामदेव—**अब हुजूर फांसी की सजा होइगं, अउर ऊपर ते सुकराना देई।**

चिराग अली—**हाँ, हाँ, फाँसी की सजा हुई हमारी बदौलत। इसको गनीमत जानो, अगर हम इतनी कोशिश न करते तो न जाने क्या हो जाता ? समझे, लाओ शुकराना।"** [१]

वास्तव में देखा जाय तो चरित्र-चित्रण की सुन्दरता इनके प्रहसनों में कम दिखाई देती है। अधिकतर इनका हास्य स्थूल है।

"श्री जी० पी० श्रीवास्तव किसी विशेष को लक्ष्य करके हास्य की सृष्टि करते हैं। प्रायः आप अपनी रचनाओं में ऐसे चरित-नायक की कल्पना करते हैं जो अकल के बोझ से हैरान है, पात्र कोई काम करेंगे तो ऊट-पटाँग, हर जगह मार अथवा गाली खायेंगे। कहीं बदहवास भाग रहे हैं तो कभी घुमड़िया खाते हुए किसी टोकरे वाले पर या कीचड़ में गिर पड़ते हैं।" [२]

इसी प्रकार के भाव श्रीवास्तव जी के हास्य के बारे में पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने व्यक्त किये हैं—

"हमारी समझ में श्रीवास्तव जी का हास्य उच्चकोटि का नहीं, जिसकी आशा इनसे की जाती है इसे, तो लट्ठमार मजाक कहना ज्यादा उचित होगा।" [3]

जहाँ तक जनता में हास्य रस के लिए रुचि उत्पन्न करने का प्रश्न है वहां ये केवल निम्नस्तरीय लोगों को ही हँसा पाये हैं, बौद्धिक हास्य का सृजन यह नहीं कर सके। इनमें अपहसित तथा अतिहसित हास्य ही अधिक है "स्मित" नहीं के बराबर है। बाबू गुलाबराय ने लिखा है—**"श्री जी० पी० श्रीवास्तव के नाटकों में हास्य की मात्रा अधिक है किन्तु उनमें साहित्यिक हास्य की अपेक्षा धोल-धप्पे का हास्य अधिक है।"** [४]

अश्लीलता के दोष से भी यह मुक्त नहीं रह पाये हैं। इनके प्रहसनों में गन्दे मज़ाक, अधिकतर पाये जाते हैं। यद्यपि इन्होंने अपनी पुस्तक

---

१. उलट-फेर—पृष्ठ २६.

२. साहित्य सन्देश—भाग १, अंक १, पृष्ठ २३.

३. विशाल भारत—मई १९२९, "हिन्दी में हास्यरस"।

४. हिन्दी साहित्य का सुबोध-इतिहास—गुलाबराय, पृष्ठ २७०.

"हास्य-रस" में अश्लीलता क्या है, इस प्रश्न का विवेचन अपने ढंग से करते हुए अपने को अश्लीलता के दोष से मुक्त बताया है किन्तु वह दलील ही दलील है, उसमें तथ्य नहीं।

अन्त में पं० रामचन्द्र शुक्ल की सम्मति उधृत करके इनके विवेचन को समाप्त करते हैं—**"वे (इनके प्रहसन) परिष्कृत रुचि के लोगों को हँसाने में समर्थ नहीं।"**[1]

बेचन शर्मा "उग्र"

"उजबक" प्रहसन का उद्देश्य साहित्यिक रूढ़ियों पर व्यंग्य कसना है। ब्रजभाषा का कवि एवं छायावादी दोनों कवि सदैव पद्य में बात करते हैं। छायावादी कवि का नाम है लंठ एवं ब्रज भाषा के कवि का नाम है संठ। दोनों का झगड़ा इस बात पर है कि उनमें श्रेष्ठ कौन है? दोनों "उजबक" सम्पादक के पास अपना फैसला कराने जाते हैं। अपना-अपना पक्ष दोनों सम्मुख रखते हैं—

"लंठ—**मेरा कहना है ब्रजभाषा मोस्ट रद्दी है।**
नूतनता मौलिकता हीन है,
दीन, अनवीन है।
और स्वच्छन्द मेरा राग घट बढ़ है,
छन्द जो रबड़ है।
ओल्ड ब्रजभाषा में कलंक है, सुलंक है,
डर्टी पर्यंक है।
कामिनी है, कुच है, कलिन्दी का किनारा है,
तेरहीं सदी की गण्डकी की गन्दी धारा है।

संठ—**(लंठ को ललकार कर)**
रुको-रुको मत क्रोध दिलाओ,
झुको-झुको मत बात बढ़ाओ।
अब मत राग बेसुरा गाओ,
ससुर बनो सुर को अपनाओ।"

चार बेचारे—इसमें चार प्रहसन हैं—बेचारा सम्पादक, बेचारा अध्यापक, बेचारा सुधारक और बेचारा प्रचारक। इनके उद्देश्य इनके नामों से स्पष्ट हैं।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—संस्करण सं० २००२, पृष्ट ४८१.

"बेचारा प्रचारक" में पात्र हैं—दन्तनिपोर (प्रचारक), अप्रिय सत्यम् (मुँहकट लेखक) टकाधर्मम् (प्रकाशक सम्पादक), सेठ शिवम् सुन्दरम् (नेता), सुमुख (शिवम् सुन्दरम् का बाल सेवक), चन्द्रमुखी (शिवम् सुन्दरम् की युवती सेविका) आदि। इसमें आलम्बन प्रचारक को बनाया गया है। प्रचारक जी अपनी शक्ति का परिचय देते हैं—

"शि० सु०—(अखबार समेटते हुए)—क्रान्ति अवश्य होगी—होगी न ? आपकी क्या राय है ?

दन्त०—होगी तो जरूर।

शि० सु०—उस भावी क्रान्ति में मैं तो स्वदेश की ओर से लड़ूँगा। जिस तरह जरूरत होगी उस तरह से लड़ूँगा।

दन्त०—आप वीर हैं—पार्थ की तरह।

शि० सु०—मगर उस अनोखे युग में आप क्या करेंगे, दंतनिपोर जी।

दन्त०—मैं ? मैं तो प्रोपैगण्डिस्ट हूँ। मैं योद्धा तो हूँ नहीं। हीं-हीं, हीं-हीं। यह देखिए (थैला दिखाते हैं) यही मेरा शस्त्रागार है और यह देखिये (परचे निकालता है) यही मेरे हथियार हैं। मैं ऐसे-वैसे परचों को आपमें उनमें बाटूंगा—यही मेरा वार होगा।"[1]

इस प्रहसन में प्रकाशकों पर व्यंग्य किया गया है जो भोले लेखकों को सम्पादक बनाने का प्रलोभन देकर फाँसते हैं—

"टका०—आप भी मेरी मदद कीजिए।

अप्रिय०—किस तरह ?

टका०—सत्यशोधक को सम्पादन कर या मेरे प्रकाशन के लिए पुस्तकें लिख कर ?

अप्रिय०—आप लिखाई क्या देते हैं ?

टका०—बहुत कुछ देता हूँ, हिन्दी की सभी पुस्तकों से अधिक देता हूँ।

अप्रिय०—जैसे ?

टका०—जैसे लेखक को लिखने के वक्त उत्साह देता हूँ। लिख जाने पर उसकी कमजोरियाँ सुधार देता हूँ। सुधर जाने पर प्रेस में देता हूँ, छाप देता हूँ, बेच देता हूँ। आप ही बतावें, इससे ज्यादा कोई क्या दे सकता है ?

---

१. मतवाला (कलकत्ता)—मार्च १९२९, पृष्ठ ३.

अप्रिय०—**और "सत्यशोधक" सम्पादक को आप क्या देंगे ?**

टका०—**उस महानुभव को–हाँ, हाँ, हाँ ! उसको मैं पहले कुर्सी दूंगा। फिर कागज़, कलम, दावात दूंगा। कंपोज़ीटर की "स्टिक" उसके बांये हाथ में दूँगा, मशीन का हैंडिल दाहिनें हाथ में। "सत्यशोधक" का पहला प्रूफ़ उसे दूँगा, तीसरा उसे दूँगा और आर्डर प्रूफ़ भी—ईश्वर की शपथ। उसी को उदारता पूर्वक दे दूंगा।**

अप्रिय०—**(व्यंग्य से) धन्य आपकी उदारता !"**[1]

नाट्यकला एवं हास्य विधान—उग्र जी के प्रहसनों में स्थिति-जन्य हास्य कम है, चरित्र चित्रण अधिक। पात्रों के वर्तालाप से हास्य का उद्रेक स्वाभाविक रूप से होता है। भाषा भी प्रवाहमयी है। यदि खटकने वाली कोई बात है तो वह है अश्लीलता। कामुक दृश्यों का यथार्थ एवं रसपूर्ण चित्रण खुल कर किया गया है। इनकी इस प्रवृति के विरोध में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने "घासलेटी साहित्य" के नाम से आन्दोलन भी चलाया था। यथार्थ चित्रण के नाम पर अश्लीलता का नग्न नृत्य ही यदि आवश्यक है तो उग्र जी बेजोड़ हैं। पर हम तो यही कहेंगे कि यदि इनमें यह सामाजिक सीमा का उल्लंघन न होता तो इस प्रतिभा का उपयोग हिन्दी साहित्य को न मालूम कितना अमर कृतियों के देने में स्मर्थ होता।

इन प्रमुख नाटककारों के अतिरिक्त कुछ ऐसे नाटककार भी इस युग में हुए जिनके नाटकों में अन्य रसों के साथ हास्य रस का परिपाक भी सुन्दर हुआ है। इनमें "मिश्र बन्धु" एवं "प्रसाद" अग्रगण्य हैं। मिश्र बन्धु में एक विशेषता यह है कि शुद्ध हास्य का विधान जैसा इनके नाटकों में हुआ है वह अत्यन्त दुर्लभ है। विदूषक की बिना सहायता लिए पात्रों की भाषा एवं भ्रान्ति द्वारा हास्य का विधान उनके "पूर्व भारत" नाटक में प्रशंसनीय है :—

(हस्तिनापुर की एक फुलवारी। लाला, पुरबी, रामसहाय व रोशन का प्रवेश)

"लाला—**कै हो, पुरबी महाराज, कुछ सुन्यो ? अब की सालौं भरे के सबै यतवार सुना सब बुद्धैक परिगे।**

पुरबी—**तुमहूं निरे अहमकै रहयो लाला, ओ। कहूँ दुइ, एकु परिगे हवइ हइँ। भला सब कइसे परि सकतथें ?**

---

१. मतवाला (कलकत्ता)—मार्च १९२९, पृष्ठ २५.

लाला—**यहै तो पूछा ।**

रामसहाय—**भला पांड़े, जो तालाब में आग लगे तो मछलियाँ कहां जावें ? बेचारी उसी में जलें भुनें ।**

पुरबी—**जरैं काहे ? बिखन पर न चढ़ि जाँयें ।**

लाला—**तौ का उइ गाई-भैंसी आँय ।**"[1]

"मिश्र बन्धु" ने व्यंग्य का भी प्रयोग किया है । उनका व्यंग्य कठोर नहीं है । नये वैद्यों को आलम्बन बना कर व्यंग्य किया गया है—

"तीसरा नागरिक—**इन नए वैद्यों की कुछ बात न कहिये, धर्मराज क्या जमराज के अवतार हैं ?**"[2]

नाटककार "प्रसाद" ने भी अपने नाटकों में हास्य के विभिन्न प्रकारों का यथा-स्थान सुन्दर प्रयोग किया है । उनका हास्य एवं व्यंग्य शिष्ट तथा मार्मिक होता है । विदूषकों का सफल प्रयोग जितना प्रसाद जी ने किया उतना किसी अन्य अकेले नाटककार ने नहीं । "विशाख" का "महापिंगलक", "अजातशत्रु" का "वासन्तक" तथा "स्कन्दगुप्त" का "मुद्गल" विदूषक-संसार के सिरमौर हैं । भारतेन्दु काल के विदूषक केवल पेटूपन का आधार लेकर ही हास्य का सृजन करते थे किन्तु प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि विदूषकों के आधार पर शिष्ट एवं परिष्कृत हास्य का भी सृजन किया जा सकता है ।

पात्र के कार्य को हँसाने का माध्यम बनाया जा सकता है । इसका उदाहरण "विशाख" में मिलता है—

"भिक्षु—**अच्छा बैठ जाऊँ । (बैठता है, प्रेमानन्द नाक बजाता है जिसे सुनकर भिक्षु चौंक कर खड़ा हो जाता है ।)**

भिक्षु—**नमो तस्स······नमो······ न न मैं नहीं भगवतो······भग जाता हूँ । (काँपता है, शब्द बन्द होता है, भिक्षु फिर डरता हुआ बैठता है और काँपता हुआ सूत्रपात करने लगता है । लोमड़ी दौड़ कर निकल जाती है । भिक्षु घबड़ाकर जयचक्र फेंक मारता है ।)**

---

१. पूर्वभारत—चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ ६३.

२. पूर्वभारत—चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १२९.

प्रेमानन्द—(स्वगत) वाह, जयचक्र तो सुदर्शन चक्र का काम दे रहा है। देखूँ, इसकी क्या अभिलाषा है।

भिक्षु—(टूटा हुआ जयचक्र लेकर बैठकर)·········यहां तो भगवान लोमड़ी के रूप में आकर भाग जाते हैं और मुझे भी भगाना चाहते हैं, क्या करूँ।"[1]

इनका व्यंग्य भी मार्मिक है। इनके व्यंग्य कोरी गालियाँ नहीं हैं। वे संयत एवं परिष्कृत हैं। उनमें "प्रेम द्वारा ताड़ना" का सिद्धान्त अपनाया गया है। "वासन्तक और जीवक" का वार्तालाप देखिए—

"वासन्तक—महाराज ने एक दरिद्र कन्या से विवाह कर लिया।

जीवक—तुम्हारे ऐसे चाटुकार और चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे।

वासन्तक—श्वसुर ने दो ब्याह किये तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति हो ही रही है।"[2]

इनके अतिरिक्त द्विवेदी युग में अन्य प्रहसन भी लिखे गये। जिनमें सुदर्शन का "आनरेरी मजिस्ट्रेट" अधिक प्रसिद्ध है। इसमें खुशामदी लोगों की आनरेरी मजिस्ट्रेट बनने की लालसा का खाका खींचा गया है। पं० रूप नारायण पांडेय लिखित "प्रायश्चित प्रहसन" में देशी होकर भी विदेशी चाल चलने वालों का अच्छा खासा चित्रण मिलता है। अध्यापक रामदास गौड़ का "ईश्वरीय-न्याय" एक व्यंग्य नाटक है जिसमें दिखाया गया है अछूतों के प्रति बहुत प्रेम दिखलाने वाला हिन्दू-सभ्य अवसर पड़ने पर कैसे बगलें झाँकने लगता है। पारसी कम्पनियों के नाटकों में जो कॉमिक दिखाये जाते थे वे अश्लील तथा भद्दे होते थे, पति-पत्नी में जूतम-पैजार, कमर पकड़ के नाचना इत्यादि दिखाये जाते थे। बाद में ये कथावस्तु के साथ में ही सम्मिलित किये जाने लगे। विशेषकर संवाद के सहारे हास्य का उद्रेक किया जाता था। "वीर-अभिमन्यु" में "राजा बहादुर" तथा हश्र के "लिवर किंग" में "जीटक" और बेताब के महाभारत में व्यंग्य और हास्य का पुट मूल कथा-वस्तु के साथ-साथ पात्रों के संवादों में प्राप्त हो जाता है।

---

१. विशाख—पृष्ठ ६४.

२. अजातशत्रु—पृष्ठ १६६.

आधुनिक-काल

यह युग प्रहसनों के कलात्मक विकास के लिए प्रसिद्ध है। पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित प्रहसन इस युग में लिखे गये। धार्मिक पाखंडियों का स्थान सामाजिक विद्रूपताओं ने ले लिया। आधुनिक युग के प्रहसनकारों ने सिनेमा के अन्धभक्त, स्वार्थी नेता, शिक्षित बेकार, मनुष्य के समान अधिकार चाहने वाली प्रगतिशील नारी को आलम्बन बनाया। स्मिति-हास्य का चलन कम हुआ तथा चरित्र-चित्रण को अधिक बल मिला। नई शैली अपनाई गई। पाश्चात्य कामेडी के सिद्धान्तों पर प्रहसनों की रचना होने लगी। सामाजिक विकृतियाँ जोकि युग के प्रभाव से उत्पन्न हो गई थीं, व्यंग्य का शिकार बनने लगीं। इसके साथ-साथ साहित्यिक कुरीतियों पर व्यंग्य करने की परम्परा भी क़ायम रही।

प्रमुख प्रहसनकार

हरिशंकर शर्मा

आप आर्य-समाजी रहे हैं तथा आप पर आर्य समाज के सिद्धान्तों का पूर्ण प्रभाव है। "बिरादरी-विभ्राट" प्रहसन में हिन्दू समाज पर तीखा व्यंग्य है। हिन्दू धर्म के अन्ध-विश्वास, रूढ़िवादिता, पोंगापंथी, अछूतोद्धार के प्रति असहिष्णुता, जाति-पांति की कट्टरता, छूआछूत आदि का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया गया है। इसमें एक अंक तथा तीन दृश्य हैं। अन्धेर-नगरी में "द्वारपाल" तथा "दम्भदेव" का वार्तालाप है। इसके अतिरिक्त "उद्दण्ड सिंह", "दुर्जनमल", "चपरपत्र" आदि पात्र हैं। धर्म के ठेकेदार भंगी, चमार इत्यादि अछूतों को तो उठाना चाहते हैं किन्तु अन्धेर नगरी के उद्दण्ड सिंह, दम्भदेव, दुर्जनमल का मान करते हैं। सुधारकों तथा नई विचारधारा वाले नवयुवकों को सज़ा दी जाती है। नये दृष्टिकोण का एक युवक गँवारों में फँस जाता है जो नई रोशनी को तनिक भी नहीं समझते और तनिक से सुधार को भी कोई आश्चर्यजनक बात समझते हैं। दम्भदेव के शब्दों के सुधारवादी युवक का दोष इस प्रकार है:—

"दुर्जनमल—**महाराज! इस बेवक़ूफ़ ने पंचपुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी बिल्डिंग की बुनियाद को हिलाने की चेष्टा की है। अतएव यह कौमी कौंसिल के वर्ग विपर्य्य एक्ट की ७४६ वीं धारा के अन्तर्गत आता है।**

दम्भदेव—**हाँ हाँ, यह तो बहुत ही संगीन जुर्म है। इसके लिए तो मामला पंचराज के सुपुर्द करना पड़ेगा।**"[1]

पाखंड-प्रदर्शन — इस प्रहसन में चार दृश्य हैं। इसके पात्र पं० डमरू-दत्त, ठा० सितारसिंह, लाला मजीरालाल, मौलवी साहब आदि हैं। इसका ध्येय भी हिन्दू समाज की संकुचित-हृदयता एवं आपसी भेदभाव हैं। महाराज चमार से तो इतनी घृणा करते हैं कि नाम सुनने से पूजा बिगड़ने का भय करते हैं, किन्तु चुंगी के मुसलमान चपरासी से कुछ नहीं कहते जो ऐन आचमन के समय महसूल के तकाज़े के मारे उनका नाक में दम कर देता है।

"डमरूदत्त—**जो है ते ठकुरिया, तू बड़ौ लंठ है। अरे दुष्ट, आज हम पाठ कर रहे हते, सोई, जो है ते, चेता चमार कौ चाचा हमें पालागें करकै चलौ गयौ, जासूँ हमारी सबरी पूजा बिगड़ गई। पूजा में चमारादिकन कों सब्द सुनबोहू बुरौ बतायौ गयौ है। समझौ कि नायँ ?**

ठकुरी—**महाराज ! चमार से तो तुम इतनी घृणा करते हो, पर उस चुंगी के चपरासी (मुसलमान) से कुछ नहीं कहा जिसने ऐन आचमन के वक्त पानी के महसूल के तक़ाजे के मारे तुम्हारा नाक में दम कर दिया था।**"[2]

स्वर्ग की सीधी सड़क —इस प्रहसन में तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण है। चुनाव के समय वोटर की खुशामद, मिनिस्टर लोगों की ब्रिटिश सरकार की चापलूसी में आत्मगौरव का अनुभव (उस समय भारत स्वतन्त्र नहीं हो पाया था), हिन्दी प्रचारकों का भी अंग्रेज़ी पढ़ने तथा बोलने में गर्व का अनुभव होना, आदि प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है। इनका यह प्रहसन अन्य प्रहसनों से श्रेष्ठ है। इसमें वादाविवाद के सहारे बाबा विचित्रानन्द के द्वारा तत्कालीन विकृतियों पर व्यंग्य कसवाये गये हैं:—

"मैं—**नेता किसे कहते हैं ?**

बाबा—**जो सदैव अपने ही व्यक्तित्व का ध्यान रखता है और अपनी ही बात चलाता है। लोकमत का तनिक भी आदर नहीं करता।**

---

१. चिड़ियाघर—पृष्ठ ६८.

२. चिड़ियाघर—पृष्ठ १०५.

मैं—**स्वराज्य कब मिलेगा ?**

बाबा—**जब भारत में एक भी हिन्दुस्तानी न रहेगा, सर्वत्र अँग्रेज ही अँग्रेज छा जायेंगे।**

मैं—**आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वोत्तम पोथी कौनसी है ?**

बाबा—**आल्हा-ऊदल के स्वाँग, आधुनिक रामायण और भौंगा भजनीक का भजन-तमंचा।"**[1]

बुढ़ऊ का ब्याह—इसमें वृद्धविवाह, दहेज और अनमेल विवाह की आलोचना की गई है। इसकी कथावस्तु में कोई नवीनता नहीं है। इसमें सात दृश्य हैं। पात्र लम्पटलाल, दुर्मतिदेव, भोंधूमल इत्यादि हैं। इसमें अन्त में लम्पटलाल तथा द्रव्यदास जी दोनों अनमेल विवाह करते हैं, और गिरफ्तार हो जाते हैं।

नाट्य कला तथा हास्य विधान—हरिशंकर जी के प्रहसनों में उच्चकोटि की नाट्यकला दिखाई पड़ती है। कथोपकथन सजीव हैं। "स्वर्ग और नरक" में मध्य तथा अन्त में तीव्रता है। कथा-वस्तु का विन्यास सफल हुआ है। हास्य का उद्रेक गँवारू बोलियों द्वारा अधिक कराया गया है। पात्रों के नाम भी अटपटे हैं और वे हास्य उत्पन्न करते हैं किन्तु ये साधन अधिक कलात्मक नहीं। प्रश्नोत्तर रूप में वाक्छल का अच्छा उपयोग किया गया है।

उपेन्द्रनाथ "अश्क"

पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ—यह अश्क के सात प्रहसनों का संग्रह है जिनके नाम हैं (१) पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, (२) कइसा साहब कइसी आया, (३) बतसिया, (४) सयाना मालिक, (५) तौलिये, (६) क़स्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन और (७) मस्केबाज़ों का स्वर्ग।

"पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ" प्रहसन में अव्यवसायिक नाटक करने वालों की परेशानियों का दिग्दर्शन कराया गया है। सदस्यों का फ्री पासों के प्राप्त करने की संकुचित मनोवृत्ति की व्यंग्यात्मक आलोचना की गई है। फ्री पास न मिलने पर "बलबीर" बीमार बनने का बहाना बना कर घर बैठता है। एक "किशनू" चपरासी को रुपया देकर उस पार्ट के करने के लिए तैयार किया जाता है। नौकर स्टेज के ऊपर अकड़ जाता है और नाटक समाप्त होने से पूर्व ही पर्दा गिराना पड़ता है :—

---

१. चिड़ियाघर—पृष्ठ १४५.

"मानसिंह—चोबदार····· चोबदार।

किशुन—(राजा मानसिंह की तरह अकड़कर प्रवेश करता है और इसी अदा में भूल जाता है कि उसे "जी महाराज" कहना है) जो आदेश (निकट आकर) जो आदेश।

मानसिंह—(किशुन की इस हरकत पर भ्रू-भंग करके) बता मालती कहाँ है?

किशुन—(इस घबराहट में कि उससे कुछ गलती हो गई है, सम्वाद भूल जाता है) जो आदेश।

मानसिंह—(क्रोध से) हम कहते हैं कि बता मालती कहाँ है?

किशुन—(जिसे अपनी गलती का पता चल जाता है कि उसने "जी महाराज" के स्थान पर "जो आदेश" कहा है, अपनी गलती सुधार लेता है) जी महाराज! जी महाराज!

(विंग पीछे हटता है)

प्राम्पटर—(पुस्तक हाथ में लिए संकेत करता है) मालती को महारानी ने भूगृह में बन्द करने का आदेश दिया है।

किशुन—(देखता है कि प्राम्पटर कुछ कह रहा है, पर घबराहट में समझता नहीं) जी महाराज!

(विंग में दयाराम, भगवन्त और अन्य अभिनेता परेशानी में इकट्ठे हो रहे हैं)

मानसिंह—(रंगमंच पर) गदहे, हम पूछते हैं कि मालती कहाँ है। जी महाराज, जी महाराज रटे जा रहा है। उल्लू कहीं का, बता मालती कहाँ है?

किशुन—(क्रोध से अकड़ जाता है) हैं! देखो! जबान सम्हारि के बाति करो। बड़े महाराज बने फिरत हैं। देई का एक रुपया और सान इतनी गांठित हैं। जाओ नहीं बताइत। हम कहित हैं, गारी दैहो तो मालुम होय पै भी न बताउब और उठाकर नीचे फेंक देब।

(दर्शकों के ठहाके गूँजने लगते हैं)

दयाराम—(घबराहट में) पर्दा गिराओ! पर्दा उठाओ।"[1]

---

१. पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ—पृष्ठ ४३.

"कइसा साहब कइसी आया" में बम्बइया हिन्दी के साथ मध्यवर्गीय लोगों की कामुक प्रवृत्तियाँ एवं आयाओं के साथ दुर्व्यहार का खाका खींचा गया है। "बतसिया" में एंग्लो इंडियन लोगों को आलम्बन बनाया गया है विशेषकर उनके कृत्रिम व्यवहार को। बतसिया एक गांव की लड़की है जिसकी माँ इसाई लोगों के काम करने के कारण क्रिश्चियन बना ली गई थी। बतसिया का नाम उन्होंने "बीट्रिस" रख दिया था। मालिक मर गये। बतसिया को दूसरे लोगों के यहां नौकरी करनी पड़ी। उसके मस्तिष्क में "बीट्रिस" नाम की ग्रन्थि पड़ गई थी। बस, वह उसे परेशान करती है और वह हरेक से लड़ती है कि सब उसका सही नाम उच्चारण करें —

"जॉन—**(क्रोध से) बटेसिया।**

बीएट्रिस—**हुजूर, मेरा नाम बीएट्रिस है।**

बीएट्रिस—**(मुंह चिढ़ाते और उनकी नक्ल उतारते हुए) सुना बटेसिया है—ऊँ—ऊँ (मुंह बिचकाकर) सुन लिया। सुन लिया। और तुम भी सुन रक्खो कि हमारा नाम बीएट्रिस है, बीस बार कहा कि हुजूर हम बसतिया नहीं रहे, बीएट्रिस हैं, बीस बार कहा कि हुजूर हम बतसिया नहीं रहे, बीएट्रिस हो गये हैं, पर सुनत ही नहीं, जब बुलाइत हैं तब नाम बिगाड़ के बुलाइत हैं, कूकर का सिंहासन पर काहे न बैठाइ देव, ऊ कूड़े में मुँह का मारब न छोड़ब। एल. एल. बी. हो गये तो काव भया, अहै तो आखिर वहै चमारिन के बिटवा।"**[1]

"सयाना मालिक" पारिवारिक समस्या से सम्बन्धित है। इसमें आल-म्बन एक ऐसे सयाने मालिक को बनाया जाता है जो नौकर रखने से पूर्व बहुत छानबीन करता है फिर भी उसका तथाकथित विश्वसनीय नौकर उसकी चोरी करके भाग जाता है और उसके पड़ौसी उसके सयानेपन पर व्यंग्य कसते हैं।

"तौलिये" प्रहसन में फैशनपरस्ती पर व्यंग्य है। पाश्चात्य एवं प्राचीन संस्कृतियों का संघर्ष है। "मधु" को हमेशा सफाई का ख्याल रहता है। उसे सदैव बीमारी और सफाई की सनक सवार रहती है। **"कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन"** में आलम्बन एक लाला हैं जिनसे क़स्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन कराया जाता है और वे अपने भाषण में क्रिकेट के साथ गिल्ली-डंडा की उन्नति का परामर्श देते हैं। अन्त में मन्त्री उन्हें आश्वासन देते हैं कि वे

---

१. पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ—पृष्ठ ७१.

गिल्ली-डंडे की एक टीम इंग्लिस्तान ले जायेंगे और इस पुरुषत्व-पूर्ण खेल का सिक्का अँग्रेजों पर बैठायेंगे ।

"**मस्केबाजों का स्वर्ग**" में फिल्मी दुनिया की एक झलक दिखाई गई है । इसमें फिल्मी जीवन पर एक तीखा व्यंग्य है । यह प्रहसन भी बम्बइया हिन्दी में लिखा गया है । वहाँ कला की कोई कद्र नहीं । डाइरेक्टर तथा निर्माताओं की सनक पर सब निर्भर रहता है :—

"सापले—**आर्ट फार्ट को कौन पूछता है, यहाँ चलता है मस्का, पालिश और चलता है रिश्ता-नाता । नया बास आयेगा तो अपने साथ नया टीम लायेंगा । हमारा डिज़ाइन ले जाकर अपनी बीबी को दिखायेंगा और पूछेंगा, "बोलो कैसा बनेला है?" उसको पसन्द आया तो पास, नहीं तो उठा सापले अपना बोरिया बिस्तर ।**"[१]

नाट्यकला एवं हास्य विधान—प्रत्येक प्रहसन में नई सूझ है । परिस्थिति-प्रधान तथा चरित्र-प्रधान दोनों प्रकार के प्रहसनों में सफल प्रयास किया है । नाटकों के पात्र सजीव हैं । अतिरंजना का सहारा कहीं नहीं लिया, यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है । प्रहसन सूक्ष्म, संयत एवं मार्मिक हैं । इनके हास्य-विधान के सम्बन्ध में इस पुस्तक की भूमिका में श्री जगदीशचन्द्र माथुर लिखते हैं—

"**उनके पात्र कार्टून नहीं, उनके मज़ाक स्थूल नहीं, उनकी परिस्थितियां सरकश की कलाबाज़ियां नहीं । उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवन में ही अट्टहास की सामग्री खोज निकालती हैं······दूसरे शब्दों में अश्क की विनोद भावना वार्तालाप के विद्रूप या पात्रों के भौंडे व्यवहार के रूप में प्रकट नहीं होती, बल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठभूमि के रूप में ।**"

वास्तव में अश्क की कला बहुत विकसित है । उनके प्रहसन पाश्चात्य ढंग से लिखे गये हैं । प्रत्येक प्रहसन के प्रारम्भ में वातावरण का चित्रण सुन्दर हुआ है ।

ज्योतिप्रसाद मिश्र "निर्मल"

"**हजामत**"—इसमें आठ प्रहसन संग्रहीत हैं—(१) हजामत, (२) समालोचना का मर्ज, (३) व्याख्यान वाचस्पति, (४) घर बाहर, (५) राबर्ट

१. पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ—पृष्ठ २०६.

नथैलियल ओझा, (६) पति-पत्नी, (७) विवाह की उम्मेदवारी और (८) आनरेरी मजिस्ट्रेट।

"हजामत" में मुंशी हुरमतराय का खाका खींचा गया है। ये सनकी स्वभाव के हैं। "समालोचना का मर्ज" में बमकबिहारी नामक आलोचक को आलम्बन बनाया गया है जिसे सदैव आलोचना की सनक सवार रहती है। यहां तक तरकारी बेचने वाली जब उनकी इच्छानुसार दाम लेने को तत्पर नही होती तो उसे भी आलोचना करने की धमकी देने लगते हैं। "व्याख्यान वाचस्पति" में अधकचरे व्याख्यानदाता का विद्यार्थियों द्वारा मज़ाक उड़वाया गया है। "घर बाहर" में समाज सुधारक पति एवं अशिक्षित पत्नी के वैषम्य पर व्यंग्य किया गया है। "राबर्ट नथैनियल ओझा" में एक मूर्ख एवं पोंगा विद्यार्थी का खाका खींचा गया है। "पति-पत्नी" में मियाँ-बीवी के झगड़े हैं तथा "विवाह की उम्मेदवारी" में लड़के वालों की सौदेबाज़ी पर व्यंग्य है। "आनरेरी मजिस्ट्रेट" में आनरेरी मजिस्ट्रेट बनने वालों की हँसी उड़ाई गई है। इनकी भाषा का नमूना 'समालोचना का मर्ज' में इस प्रकार देखिए—

"बमक—**(नाराज़ होकर) तो क्या मैं चोर हूँ, जानता नहीं मैं कौन हूँ ? मै तेरी आलोचना कर दूँगा, समझा !**

उजियारी—**आलू, चना तो मेरे ही पास हैं सरकार, आपके कहने की जरूरत नहीं है। हाँ, छः पैसे की तरकारी आपने ली है।**

बमक—**(बिगड़ कर) अरे आलोचना ! आलोचना ! ! आलोचना ! ! ! कुछ पढ़ा लिखा भी है या नहीं, हूँ। चार पैसे की मैंने तरकारी ली, कहती है छः पैसा ! अगर छः पैसे की लेनी थी तो चार पैसे घर से लेकर चलता ही क्यों ? क्या मैं बेवकूफ़ हूँ?"** [१]

नाट्यकला एवं हास्य-विधान—जी०पी० श्रीवास्तव की भाँति निर्मल जी का हास्य भी धौल-धप्पे का हास्य है। इनके प्रहसनों में सरकस की कलाबाज़ियाँ दिखाई गई हैं। चरित्र-चित्रण तो नाम को भी नहीं। पात्रों की सृष्टि केवल मूर्खता-प्रदर्शन के लिए ही की गई है। अतिनाटकीयता एवं अतिरंजित वर्णनों की भरमार है। संकलनत्रय का कहीं ध्यान नहीं रक्खा गया। वार्तालाप के स्थान पर लम्बी-लम्बी स्पीचें व लम्बे-लम्बे प्रस्ताव हैं। इनके प्रहसनों

१. हजामत—पृष्ठ ४२.

में प्रहसन के कोई गुण नहीं। हास्य भी भौंड़ा है और वह भी स्थितिजन्य है। कहीं कोई पात्र बराबर डूबने की धमकी देता है लेकिन डूबने का नाम नहीं लेता, तो कहीं पात्र केवल अपनी पत्नियों से हाथापाई करके ही हास्य-सृजन करने में सफल हो सके हैं। सब मिलाकर, क्या नाट्य-कला की दृष्टि से और क्या हास्य-विधान की दृष्टि से, ये प्रहसन निकृष्ट कोटि के हैं।

रामसरन शर्मा

सफर की साथिन—यह नौ प्रहसनों का संग्रह है। "सफर की साथिन", "बन्द दरवाज़ा", "बेचारी चुड़ैल", "वकालत", "पत्रकारिता", "बीमारी", "मिल की सीटी", "भूतों की दुनिया", और "आवारा"। पूरे पढ़ने पर भी इन प्रहसनों की कथा-वस्तु पकड़ाई में नहीं आती है। "बन्द दरवाज़ा" का उद्देश्य सम्भवतः "जवानी के तूफान को ताले में बन्द करना" बेवकूफी जान पड़ता है। "बेचारी चुड़ैल" में उन लोगों को हास्य का आलम्बन बनाया गया है जो भूत प्रेतों में विश्वास करते हैं। "वकालत" प्रहसन अवश्य कुछ अच्छा है। नये वकील अपनी वकालत चलाने को कैसे-कैसे हथकंडों का प्रयोग करते हैं। बुद्धिस्वरूप एक नये वकील हैं। उनके सलाहकार उनको यह सलाह देते हैं कि कचहरी में अपने तख़्त के पास एक मचान बनवा लिया जाय जिससे जो मुवक्किल आ फसें उसे उस पर चढ़ा दिया जाय ताकि वह निकल न सके। अंत में वकील साहब मंच पर से गिर पड़ते हैं। "पत्रकारिता" में तथाकथित पत्रकारों पर व्यंग्य किया गया है जो पत्रकारिता के नाम पर धन हड़प करते हैं। "बीमारी" में दिल की बीमारी का खाका खींचा गया है। "मिल की सीटी" करुण रस प्रधान हो गया है, हास्य अन्तर्ध्यान हो गया है। "भूतों की दुनिया" का उद्देश्य नाम से स्पष्ट है। "आवारा" में नशेबाज़ों की दुर्दशा कराई गई है।

नाट्यकला एवं हास्य-विधान—कला की दृष्टि से यह नाटक अच्छे नहीं बन पड़े। इनमें कथा-वस्तु का विन्यास नहीं के बराबर है। चरित्र-चित्रण भी शून्य हैं। "कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा" वाली कहावत चरितार्थ हुई है। वाक्छल, व्यंग्य, वक्र-उक्ति, आदि हास्य के किसी भी भेद का प्रयोग सफल नहीं हुआ है। एक मात्र "वकालत" प्रहसन कुछ सन्तोषजनक कहा जा सकता है। उसमें अवश्य थोड़ा हास्य का उद्रेक हो पाया है। उसमें वार्तालाप भी सजीव हैं एवं कथानक में भी तीव्रता है। सब मिलाकर कहा जा सकता है कि ये प्रहसन प्रहसन कहलाने योग्य नहीं।

विशेष

डा० रामकुमार वर्मा

वर्मा जी के अधिकतर नाटक एकांकी ऐतिहासिक एवं सामाजिक कथा वस्तु को लेकर ही लिखे गये हैं। "रिमझिम" शीर्षक एक वर्मा जी का संकलन हाल ही में निकला है जिसमें उनके हास्य-रस प्रधान एकांकी संकलित हैं। उनका एक प्रहसन जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है उसका नाम है "घर का मकान"। इस प्रहसन में सेठ अमोलकचन्द एक पात्र हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने मकान को इस रूप से देने को तैयार रहते हैं मानों वह उस रहने वाले के ही घर का मकान हो। सेठ जी के कुत्ते, बिल्लियाँ, बीस मुर्गियाँ आदि भी उसी मकान में रहते हैं। श्यामकिशोर सेठ जी के मेहमान हैं जिनको यह घर रहने को दिया जाता है और इन जानवरों के पालन पोषण का भार भी घर में निःशुल्क रहने के कारण उन्हीं को करना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि दो ही दिन में उन्हें अपना "घर का मकान" विवश होकर छोड़ना पड़ता है। इसमें कुछ वार्तालाप बड़े रोचक हैं—

"श्यास किशोर—**शेरा! यह शेरा कौन है?**

लीला—**क्या सरकस का भी शौक है सेठ जी को?**

बैजनाथ—**नहीं साहब, क्या खूबसूरत मुर्गा है। अगर वह न बोले तो सूरज की मजाल है कि निकल जाए। गरदन उठाकर ऐसा बोलता है जैसे किसी कालिज का प्रोफेसर हो?"**[१]

नाट्यकला एवं हास्य-विधान—प्रहसन श्रेष्ठ है। कथोपकन में रोचकता है। वस्तु विन्यास सुन्दर है। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक एवं यथार्थता लिए हुए है। विशुद्ध हास्य का जैसा सुन्दर उद्रेक इस प्रहसन में हुआ है ऐसा अन्यत्र देखने को नहीं मिला। स्मित हास्य का सृजन कठिन कार्य है जिसे वर्मा जी ने पूरा किया है। चरित्रों का चित्रण ममतापूर्वक किया गया है। हँसी भी उड़ाई गई है तो प्यार के साथ, कटुता एवं कठोरता कहीं नहीं।

देवराज दिनेश

आपने कई सुन्दर प्रहसन लिखे हैं। आधुनिक जीवन में जो विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं ये ही आपके प्रहसनों की कथावस्तु हैं। "बटुए" नामक प्रहसन में नरेश नामक एक पात्र है जो मुफ्तखोर प्रवृत्ति का है, वह मित्रों के साथ होटलों में पहले स्वयम् आर्डर देकर सुन्दर तथा बहुमूल्य

१. हिन्दुस्तान साप्ताहिक—२० नवम्बर ५५, पृष्ठ ११.

पदार्थ मँगवाता है किन्तु बिल आने पर उसका बटुआ खो जाता है। अन्त में उसके मित्र उससे बदला लेते हैं और उसको होटल का बिल चुकाने के लिए अकेला छोड़ देते हैं तथा उसको सब मित्रों का बिल चुकाना पड़ता है। यह चरित्र-प्रधान प्रहसन है। नरेश में चाटुकारिता की मात्रा भी यथेष्ट है। वह अपने मित्र की नाटक की प्रशंसा करने लगता है जिसको उसने कभी देखा ही नहीं—

"नरेश—**क्या कहने हैं "सवेरा" के। जितनी प्रशंसा की जाय कम है। सभी कलाकारों ने अपने कार्य को खूब निभाया है और आपके अभिनय का तो कहना ही क्या !**

दीपक—**(चौंकता है) जी, मेरा अभिनय। मैं तो उसमें अभिनय नहीं कर रहा था। मेरा तो वह लिखा हुआ है। हाँ, वैसे निर्देशक उसका मैं ही था।**

नरेश—**(बात बदलता है) कमाल है। मुझे एक साहब पर आप का ही भ्रम था।**

दीपक—**क्या बात कर रहे हैं आप ? उसमें तो कोई पुरुष-पात्र था ही नहीं, बस, केवल तीन लड़कियों ने ही अभिनय किया था।**"[1]

इनका दूसरा प्रहसन "पास पड़ौस" है। इसमें अशिक्षित स्त्रियों का संग्राम एवं पड़ौसियों की परेशानी का हास्यमय वर्णन है। लड़ाई का एक वर्णन देखिये—

"एक औरत—**मेरे मरें, तो क्या तेरे न मरें !**

दूसरी—**मरें तेरे। मेरे क्या तेरे घर खाना खाते हैं, राँड़ ! जो इन्हें तू फूटी आँखों भी नहीं देख सकती।**

पहली—**आँखें फूटें तेरी, तेरे घरवालों की, सतखसमी। जब देखो तब भौंकती रहती है, देखती कैसे है आँखें फाड़कर जैसे खा ही जायगी।**

दूसरी—**झुलस दूंगी तेरा मुंह, जो ज्यादा बातें की तो। आ लेने दे तनिक शाम को मेरे कालूराम को।**

पहली—**मरा तेरा कालूराम। मार-मार जूते सिर न गंजा कर दूं तो कहना। उसको भी औरतों की लड़ाई में बोलने का बहुत शौक है, जनाना कहीं का।**"[2]

---

१. बटुए—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृष्ठ ८ (२८ जून ५३.)

२. पास पड़ौस—साप्तातिक हिन्दुस्तान, पृष्ठ १० (३० अक्टूबर ५५.)

नाट्य-कला एवं हास्य-विधान—दिनेश के प्रहसनों में चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। नाटक की कथावस्तु एवं चरम-बिन्दु स्वाभाविक है। पात्रों का चुनाव नित्य-प्रति के जीवन से किया गया है न कि ऊटपटाँग पात्रों की सृष्टि की गई हो। कथोपकथन में स्वाभाविकता है। हास्य का उद्रेक पात्रों के कार्य कलाप से स्वतः होता है, कृत्रिम घटनाओं द्वारा हँसाने की चेष्टा नहीं।

उपसंहार

प्रहसनों का प्रारम्भ भारतेन्दु काल से हुआ। उनके समय में यथेष्ठ प्रहसन लिखे गये। उनमें नाटकीय तत्व एवं कलात्मक विकास का अभाव रहा। द्विवेदी युग में गम्भीरता छाई रही, तब भी थोड़े बहुत प्रहसन लिखे गये किन्तु कलात्मक विकास सन्तोषजनक नहीं हो सका। द्विवेदी-काल के उपरान्त के प्रहसनों में मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, बौद्धिक हास्य एवं भाषा में परिष्कार उल्लेखनीय हैं।

●

: ७ :

कहानी-साहित्य में हास्य

संस्कृत-साहित्य में पंचतंत्र तथा हितोपदेश की कहानियों में हास्य मिलता है। हिन्दी साहित्य में गद्य का अधिक प्रचलन भारतेन्दु काल से हुआ। गद्य के विभिन्न प्रकार यथा नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध आदि का प्रारम्भ भी भारतेन्दु काल में हुआ। भारतेन्दु काल के साहित्य का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि उस काल में प्रहसन तथा निबन्ध तो अवश्य अधिक लिखे गए लेकिन कथा-साहित्य—विशेष कर हास्य-रस की कहानियों का नितान्त अभाव रहा। "चोज़ की बातें" शीर्षक वाक्छल से पूर्ण लघुकथाएँ तत्कालीन पत्रों में अवश्य दृष्टिगोचर होती हैं। द्विवेदी युग में तथा उसके बाद ही विशुद्ध हास्यरसात्मक एवं व्यंग्यात्मक कहानियों का प्रादुर्भाव तथा प्रचलन हुआ। कहानी-कला का साहित्यिक एवं वैज्ञानिक विवेचन भी बीसवीं सदी की वस्तु है।

कहानी-कला

संक्षेप में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण एवं कार्य-व्यापार तीन ही कहानी के उपकरण माने गये हैं। इन्ही के आधार पर कहानियों का वर्गीकरण—(१) चरित्र-प्रधान, (२) कथा-प्रधान, (३) वातावरण-प्रधान और (४) कार्य-व्यापार-प्रधान नामों से किया गया है। हिन्दी साहित्य में उपरोक्त चारों प्रकार की कहानियां मिलती हैं जो कलात्मक रूप से श्रेष्ठ हैं। हमें यहाँ हास्य-रस-प्रधान कहानियों का ही विवेचन करना है। जहाँ तक कहानी के आवश्यक तत्वों का प्रश्न है, वह तो हास्य-रस की कहानियों पर भी लागू होता है। हास्य-रस की कहानी में जो विशेष गुण वांछनीय है वह हैं हास्य-विधान। लेखक ने हास्य का उद्रेक किस प्रकार से किया है और वह उसमें कहाँ तक सफल हुआ है? उसके चरित्र वास्तविक जीवन से लिए गए हैं अथवा कल्पित हैं? कार्य-व्यापार स्वाभाविक है अथवा अतिरंजित? वस्तु-विन्यास अस्वाभाविक तो नहीं हो गया है?

हास्य-विधान

हास्य-रस की कहानी में हास्य के सब प्रभेदों का प्रयोग मिलता है। हास्य का सृजन विविध प्रकार से किया जाता है। पात्रों की यांत्रिक क्रिया, किसी चरित्र-विशेष की असामाजिक विद्रूपताओं का चित्रण, किसी वाक्य-विशेष की पुनरावृत्ति, किसी भाषा विशेष का अधिकाधिक प्रयोग, पात्रों की हास्यास्पद स्थिति, वाक्-छल आदि साधनों से हास्य का सृजन किया जाता है। इसमें से किसी की अतिशयता ही अतिरंजना एवं अतिनाटकीयता की संज्ञा में आ जाती है और सारा गुड़ गोवर हो जाता है।

वर्गीकरण

हास्य-रस की कहानियों के वर्गीकरण से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हास्य के प्रभेदों में इतना सूक्ष्म अन्तर है कि वे एक दूसरे में घुले मिले पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ शुद्ध हास्य-रस कहानी में भी व्यंग्य के छींटे मिल सकते हैं, वक्र-उक्ति तथा वाक्छल का प्रयोग भी मिल सकता है। वर्गीकरण का हमारा दृष्टिकोण यह है कि कहानी में हास्य के जिस प्रभेद का बाहुल्य है वह कहानी उसी वर्ग में ली जा सकती है। हास्य-रस की कहानियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) **मनोरंजक कहानी**—हास्य-रस की वह कहानी जिसका उद्देश्य केवल हँसाना हो, उसे हम मनोरंजक कहानी कह सकते हैं। ऐसी कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

(२) **व्यंग्यात्मक कहानी**—व्यंग्य सदैव सोद्देश्य होता है। समाज सुधार की भावना अथवा किसी कुरीति की निन्दा इसका ध्येय होता है। इस प्रकार की कहानियों का हिन्दी में बाहुल्य है।

(३) **चरित्र-प्रधान कहानी**—हास्य-रस की वे कहानियां जिनमें एक चरित्र विशेष को लेकर उसका चित्रण किया गया हो, चरित्र-प्रधान कहानी कही जाएगी।

काल-विभाजन

हास्य-रस पूर्ण कहानियों के विवेचन के लिए हम अपने आलोच्य काल को दो विभागों में बांटते हैं—प्रथम भारतेन्दु-काल (१८५०-१९००) तथा द्वितीय भारतेन्दोत्तर काल (१९००-१९५०) अथवा आधुनिक काल।

भारतेन्दु काल

इस काल में हास्य-रस की कहानियों का अभाव है। या तो यात्रा वर्णन को कथात्मक ढंग से कहा गया है अथवा "चोज़ की बातें" मिलती है जिनमें थोड़ा कथा तत्व मिलता है। भारतेन्दु अपनी "जनकपुर यात्रा" का वर्णन कहानी के ढंग से कहते हुए लिखते हैं —

"आज दोपहर को पहुँचे। राह में रेल में कुछ कष्ट हुआ क्योंकि सैकेन्ड क्लास में तीन चार अँग्रेज थे, बस उनमें में अकेला "जिमि दसनन महँ जीभ विचारी", कष्ट हुआ हो चाहे "नर बानरहिं संग कहु कैसे"। बरसात और सैकेन्ड क्लास—पानी की बौछार आने पर साहब ने पूछा, "Have you made water." **मैंने कहा** "Not I but God." **इस पर वह बहुत प्रसन्न हुआ।"[1]**

आगे ओ० टी० आर० रेलवे का वर्णन करते हुआ लिखा है—

"झण्डी मालूम होती थी कि कोई खेत वाली स्त्री की मैली फटी सारी का पल्ला फाड़ कर लकड़ी में लगा कर कौआ हाँकता है। खैर दरभंगा पहुँचे, कल जनकपुर जावेंगे।"[2]

"चोज़ की बातें" शीर्षक से कुछ चुटकले भी निकलते थे—

"एक भले आदमी से किसी ने पूछा, "औरतों के पेट में भी कोई बात पच सकती है।"

उसने जवाब दिया, "हां, सिर्फ एक बात।"

"कौन सी ?"

"उनकी उमर।"[3]

इसी प्रकार "ब्र-मो-कूल" नाम से "हिन्दी-प्रदीप" में एक लेखक ने डायरी की शैली में तत्कालीन फैशन परस्ती पर लिखा था —

"आज ५००) इस शर्त पर कर्ज लिया कि जब बाप मरेंगे तब १०००) देंगे। उन्हीं रुपयों से आज राम-नवमी का जलसा हुआ। शहर की खूबसूरत और नौजवान तवायफ़ें आईं। उनकी दावत बड़े धूमधाम के साथ की गई। मैंने भी पी। साहब के साथ उनके दफ्तरखान में शरीक हुआ बल्कि पिता जी

---

१. हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका—जुलाई १८७८–पृष्ठ १५.
२. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—जुलाई १८७८—पृष्ठ १५.
३. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—नवम्बर १८७७—पृष्ट १५.

इसी वजह से घर से निकल गए। बुड्ढा बहाने बाजी करता है। पीछे पछताय आप ही घर आ जायगा।"

आगे चलकर "ब्र-मो-कूल" ने अपने आलम्बन फैशन-परस्त नवयुवक का फैशन में किया जाने वाला व्यय उसी के हाथों उसकी डायरी में लिखवाया है—

"१ कोट सिल्क—धौलाई आना ४—वापिस किया तह ठीक नहीं है।

१ कोट हालैन्ड—ब्राउन धौलाई—४ आना।

२ वेस्ट कोट—धौलाई २ आना।

६ शर्ट—धौलाई ६ आना—वापिस-कफ़ और कालर की तह ठीक नहीं।

२ पैन्ट—धौलाई २ आना—वापिस—तह ठीक नहीं।

२ कौलर-धौलाई—२ आना।

२ नकटाई—धौलाई—४ आना।

२ बीबी साहिबा की साड़ी—धौलाई १ रुपया।

रिमार्क—कुल टोटल धौलाई का हिसाब १ हफ्ता ३ रुपये—१२ रु० महिना।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—उस समय कहानी कला इतनी विकसित अवस्था में नहीं थी इसलिये उनमें वह कथा-शिल्प नहीं मिलता जो आज है। भारतेन्दु जी की "चोज़ की बातों" में वाक्-छल का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उनका यात्रा-वर्णन भी कहानी का आनन्द देता है एवं उसमें "स्मित हास्य" की सुन्दर व्यंजना हुई है। "ब्र-मो-कूल" का व्यंग्य कटु हो गया है। वर्णन भी अतिरंजित है। लेखक ने तत्कालीन फैशन-परस्ती पर व्यंग्य-बाण डायरी के माध्यम से छोड़े हैं। उस सस्ते जमाने में १२) रु० मासिक धोबी पर खर्च करना मूर्खता थी। साथ ही पिता की मृत्यु की आशा में कर्ज लेकर फैशन करना एक सामाजिक विद्रूपता थी। लेखक इसके चित्रण में सफल हुआ है।

आधुनिक काल

जी० पी० श्रीवास्तव

"हास्य-रस की कहानियाँ लिखने वाले जी० पी० श्रीवास्तव की पहली कहानी भी "इन्दु" में संवत् १९६८ में ही निकली थी।"[2] जी० पी० श्रीवास्तव

१. हिन्दी प्रदीप —जुलाई १९०५, पृष्ठ ११-१७.

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ ४३८.

हास्य-रस की कहानियों के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। इनकी कहानियों का संग्रह "लम्बी-दाढ़ी" के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें छः कहानियाँ संग्रहीत हैं—(१) मौलाना बरबादअली वाही तबाही उर्फ मौलवी साहब (१६१२), (२) महामहोपाध्याय पं० चापरकरन अगड़म बगड़म उर्फ पण्डित जी (१६१४), (३) बाबू झटपटनाथ एफ० ए० फ़ेल उर्फ मास्टर साहिब (१६१३), (४) कालिज मैच, (५) चचा भतीजे (१६१२), और (६) एक अण्डरग्रेजुएट की शादी (१६१२)।

पहली कहानी में मौलवी साहब हास्य के आलम्बन बनाये गये हैं—

"मैंने अपनी बिल्ली को मछली पर इतना साध लिया कि ज्योंही में एक टुकड़ा फेंकता था त्यों ही ऊपर ही ऊपर वह उसे गड़ाप से ले लेती थी। एक दिन जब मौलवी साहेब पढ़ाने के लिए आए तो मैंने पीछे से उनकी पगड़ी पर एक छोटी मछली रखकर सामने सलाम करके बैठा ही था कि बिल्ली ने ऐसा धावा मारा कि मछली के साथ साथ झपट्टे में पगड़ी भी उतार ले गई। मौलवी साहब चौंक के उचके और ढिमला के दूर गिरे और लगे हाँफने।"

अधिकतर इन्होंने शिक्षा-जगत की समस्याएँ ही अपनी कहानियों में ली हैं। श्रीवास्तव जी की दृष्टि में संस्कृत के पण्डित कितने कूप-मण्डूक होते हैं एवं संस्कृत अध्यापन की विधि कितनी दोषपूर्ण है, पढ़ाई का ढंग कितना नीरस है, इसका वे चित्रण करते हैं—

"एक तो गांव के पण्डित खुद गावदी। न बोलने का तरीका न बात करने की तमीज़, दूसरे मिले दो साथी—रटने में तोता, देखने में उल्लू। सिधाई का ऐसा सिर मुड़ा के पीछा किया था कि न घर के काम के रहे न बाहर के। अगर चार आदमियों में फंस गए तो भड़के हुए बैल का मजा देखिए।"

अन्त में श्रीवास्तव जी का उपदेशक रूप सम्मुख आता है—

"अए ऐसे अक्ल के अन्धे पण्डितो, तुम अपने ही हाथ से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते हो और इसके साथ सिर्फ अपनी बेवकूफ़ी की वजह से बेचारी निर्दोष संस्कृत की जड़ खोदते चले जाते हो। ईश्वर जाने तुम्हारी आँखें कब खुलेंगी।"

—(लम्बी दाढ़ी)

"कालिज-मैच" शीर्षक कहानी में उन्होंने विद्यार्थी-वर्ग में बढ़ती हुई फैशनपरस्ती का खाका खींचा है—

"छुट्टी हुई—बोर्डिंग हाउस गया तो राबर्टसन के चपरासी ने फ़र्रासी सलाम कर मेरे हाथ में पहले एक लिफ़ाफ़ा दिया, उसे फाड़कर में पढ़ने लगा—

सूट एक	**५८-१४-०**
एक सेमी नार्फक कोट	**२८- ०-०**
दो क्रिकेट सिन टेनिस बूट	**२०- ०-०**
१ टेनिस सर्ज पेन्ट	**९- ०-०**
२ बकास्किन टेनिस बूट	**१४- ०-०**
१ बूट रेक्स	**१५- ०-०**
१ चेस्टरफ़ील्ड	**६०- ०-०**
१ बूट फुटबाल	**८- ०-०**
कालर और टाई	**१०- १-६**
	२२३- ०-४

इस मैच के लिए मैंने बड़ी किफायत की यानी कपड़ों में केवल २२३) ही रुपये खर्च किये। ट्रंक में और कपड़ों के साथ इनको भी रक्खा और रास्ते में जलपान के लिए हन्टले और पामर्स का एक डिब्बा बाईस और एक डिब्बा "मैरी बिस्कुट" का भी रख लिया।"

—(लम्बी दाढ़ी)

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—इनकी कहानी कला की चार विशेषताऐं हैं—(१) अस्वाभाविकता में स्वाभाविकता का भ्रम (२) स्वभाव या बुराई का हास्य-जनक प्रदर्शन, (३) कुप्रथाओं पर चोट और (४) मनोरंजन के साथ सुधार। काश, इनमें अश्लीलता न होती। इनकी अतिरंजित एवं अतिनाटकीयता ने इनकी कला को हीन बना दिया! कहीं-कही इनका हास्य "मुंहफ़ट" हो गया है एवं व्यंग्य भी कटु हो गया है। इनका महत्व इतना ही है कि इन्होंने हास्य-पूर्ण कहानियों को जन्म दिया एवं हिन्दी साहित्य की इस कमी को पूरा किया। घटना-प्रधान कहानी ही इनकी अधिक है। चरित्र-चित्रण सफल नहीं हो सका। आचार्य शुक्ल ने इनकी कहानी-कला के बारे में लिखा है जिससे हम अक्षरश: सहमत है—**"जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियों में शिष्ट और परिष्कृत हास की मात्रा कम पाई जाती है।"** इनके अधिकतर पात्र कार्टून हैं। उनमें स्वाभाविकता नहीं। उनके कार्य-कलाप सदैव ऊटपटाँग होते हैं। वे सन्तुलन खो देते हैं। उनकी सहजता नष्ट हो जाती है। यही कारण है कि सामान्य पाठक चाहे उनकी रचनाओं से अट्टहास कर उठें, पर विद्वानों के चेहरों

पर उनसे सरल मुस्कान नहीं फूटती और उन्हें कहानियों का स्तर साधारण दिखाई देता है।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द जी मुख्यत: हास्यरस के लेखक नहीं थे, उन्होंने गम्भीर कहानियाँ ही अधिक लिखीं; लेकिन वे तो मेधावी कलाकार थे। हास्यरस की भी जो कहानियाँ उन्होंने लिखीं वे उच्चकोटि की लिखीं। "मोटेराम शास्त्री" को नायक बनाकर उन्होंने कुछ हास्य-रचनात्मक कहानियाँ लिखीं। मोटेराम का सत्याग्रह तथाकथित सत्याग्रहियों पर सुन्दर व्यंग्य है। मोटेराम तथा उनके मित्र चिन्तामणि को आलम्बन बना कर उन्होंने ब्राह्मणों के पेटूपन एवं भुक्खड़पन पर व्यंग्य किया है। उनकी एक "ग़मी" शीर्षक कहानी में जो हास्य-रसात्मक है एक ऐसे चरित्र का चित्रण किया गया है जो अपने यहाँ बालक होने पर अपने मित्रों के यहां वह खबर भिजवा देता है कि उनके ग़मी हो गई है। जब लोग उसके यहां पहुँचते हें तो यह कह देता है कि बालक के होने से उसकी परेशानियाँ बढ़ गईं इसलिए वह उसे ग़मी समझता है और सबसे कहता है—

"मैं इसे ग़मी समझता हूँ और इसीलिए इस जन्म को ग़मी कहता हूँ। आप लोगों को कष्ट हुआ। क्षमा कीजिए। आप लोग गंगा-स्नान के लिए तैयार होकर आए, चलिए मैं भी चलता हूँ। अगर शव को कन्धे पर रख कर चलना ही अभीष्ट हो तो मेरे ताश और चौसर को लेते चलिए। इन्हें चिता में जला देंगे। वहाँ मैं गंगाजल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करूंगा कि अब ऐसी महान मूर्खता फिर न करूंगा।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—इनका चरित्र-चित्रण एवं कथोपकथन स्वाभाविक हुआ है। विशुद्ध हास्य की कहानी लिखने में ये सफल हुए हैं। हास्य का उद्रेक असंगित द्वारा किया गया है। हास्य "स्मित" है, कहीं पर कटुता एवं अतिरंजना नहीं। व्यंग्य का भी जहाँ उपयोग किया है, वह मृदुल है, उसकी अभिव्यक्ति सहज है, मलिनता रहित एवं निष्कलुष।

अन्नपूर्णानन्द वर्मा

इनकी कहानियों के संग्रह हैं—महाकवि चच्चा, मेरी हजामत, मगन रहु चोला, मंगलमोद तथा मनमयूर। समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित विधवा-विवाह विरोध, फ़ैशन परस्ती, जी

---

१. मतवाला (साप्ताहिक), कलकत्ता—अगस्त १९२९, पृष्ठ ६.

हुजूरी आदि कुप्रथाओं पर कड़ी चोट करके उनके निवारण की प्रेरणा अपनी रचनाओं द्वारा दी। इसके अतिरिक्त इनमें हिन्दी के साहित्यिकों, कवियों, पत्रकारों, इतिहास लेखकों तथा हिन्दी के उन्नायक राजा महाराजाओं और प्रकाशकों की मनोवृत्तियों का अच्छा विश्लेषण किया गया है। 'जी हुजूरी' पर इनका व्यंग्य देखिये—

"सज्जनो ! अँग्रेज अवतारी जीव हैं। हम पशु थे, उन्होंने हमें मनुष्य बनाया। हमें बड़ों के पैर छूने की गन्दी आदत थी, उन्होंने हमें गुडमार्निंग करना सिखाया। हमें उपकारों के लिए आजीवन कृतज्ञ रहने की बुरी आदत थी, उन्होंने हमें "थैंक यू" कहना सिखाया। हम बैलों की तरह भर पेट खाते थे, पंचायतों से फोकट में न्याय पाते थे, उन्होंने हमें गरीबी में सन्तोष करना सिखाया, न्याय का मूल्य बताया। उनके प्रताप से बाघ और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं, हिन्दू और मुसलमान एक कलवरिया में शराब पीते हैं।"[1]

"मेरी हजामत" में तीन कहानियाँ हैं—'मेरी हजामत' शीर्षक कहानी में हास्य का निखरा हुआ रूप मिलता है। "सैलून" में थक जाने पर जब लेखक सूट-बूट धारी नाई से ही पूछते हैं—**"आप बता सकते हैं कि इस दुकान का मालिक कहाँ मर गया।"[2]** तो पाठक सहसा हँसे बिना नहीं रह सकता।

"अपना परिचय" शीर्षक आत्म-कथात्मक कहानी में देखिये—**"मेरी खोपड़ी मेरे शरीर का वह उन्नत भाग है जो अक्सर चौखटों से भिड़ा करता है। इसी शिखर पर एक शिखा है जिसकी चकबंदी गाय के खुर को परकार से नाँप कर की गयी थी। लोगों का कहना है कि मेरी इस शिखा से मूर्खता टपकती है। लेकिन मेरा कहना है कि मूर्खता भी मूर्खता करती है जो टपकने के इतने स्थान छोड़ चुटिया से टपकती है।"[3]**

उनका एक उद्धरण और देने का हम लोभ संवरण नहीं कर सकते। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त आधुनिक भारतीय नवयुवकों के जीवन और चरित्र का स्पष्ट चित्र उन्होंने अपनी इस कहानी में प्रस्तुत किया है। अपने एक मित्र के लिखने पर वह उसके छोटे भाई की खैर-खबर लेने उसके कालिज के होस्टल

---

१. महाकवि चच्चा—पृष्ठ ४३.
२. मेरी हजामत—पृष्ठ ५९.
३. मंगल मयूर—पृष्ठ २.

में पहुँच गए। लगभग १५ मिनट के बाद दरवाज़ा खुला। उसका वर्णन वह इस प्रकार करते हैं—

"दरवाज़ा खोलने वाला व्यक्ति—क्या कहा जाए ? एक बार मुझे यह भ्रम हुआ कि मैं लड़कियों के बोर्डिंग हाउस में तो नहीं चला आया ? अवस्था १८ वर्ष की रही होगी। जान पड़ता था कि मूँछों ने जब जब निकलने का अपराध किया तब तब उनकी खबर "राजरानी सोप" से ली गई थी। गरदन सुराहीदार, कमर कमानीदार, बाल चिकने और आबदार, मानों किसी पेटेंट गोंद से चिपकाए गए हों। मांग जैसी कसौटी पर कंचन की लीक.........।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—अन्नपूर्णानन्द जी की कहानी लिखने की अपनी विशिष्ट शैली है। इन्होंने "बिलवासी मिश्र" एवं "महाकवि चच्चा" पात्रों की सृष्टि कर अपनी घटनाओं को संजोया है। भाषा पर तो मानों इनका अधिकार है। कथोपकथन, घटनाएँ सब वास्तविक जीवन से ली गई हैं। विशुद्ध हास्य का सृजन इनकी विशेषता है। इनका व्यंग्य इतना तीखा नहीं कि तिलमिला दे, वरन् एक सिहरन पैदा करता है। मनोरंजन के साथ समाज-सुधार की प्रेरणा देना इनका ध्येय रहा है और उसमें इनको सफलता मिली है। अपने आलम्बनों के प्रति इनका वैर-भाव नहीं वरन् ममता-पूर्ण व्यवहार है। यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि इनकी कहानियाँ खाँड की रोटियाँ हैं जो जिधर से तोड़ो उधर से मीठी होती हैं। इनकी कहानियाँ अस्वाभाविक हास्य एवं अश्लीलता से बची हुई हैं। इनकी कल्पना-शक्ति प्रतिभापूर्ण एवं वर्णन-शैली रोचक है। इनको जितनी सफलता व्यंग्यात्मक कहानी लिखने में मिली है उतनी ही शुद्ध हास्यात्मक एवं चरित्र-प्रधान लिखने में। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"अन्नपूर्णानन्द जी का हास सुरुचिपूर्ण है।"[2]

बेढब बनारसी

इनकी कहानियों के प्रथम संग्रह का नाम "बनारसी इक्का" है। तत्पश्चात् "गांधी जी का भूत", "मसूरीवाली" तथा "टनाटन" नाम से और प्रकाशित हुए हैं। इनकी कहानियों में कुछ तो व्यंग्यात्मक हैं, बाकी केवल मनोरंजन के लिए लिखी गई हैं जिनमें सुधार की कोई भावना नहीं। सिनेमा की बढ़ती हुई रुचि, फ़ैशनपरस्ती, डाक्टर, वैद्य, मूर्ख कवि तथा इनकी

---

१. महाकवि चच्चा—पृष्ठ ८९.

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ ४७४.

व्यंग्यात्मक कहानियों में कथित प्रोफ़ेसर, अन्धविश्वास, पुरातत्व की सनक, सम्पादकों की परेशानी आदि विषयों पर व्यंग्य किये गये हैं।

"बनारसी एक्का" उनकी श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इसमें उपमाओं का संयोजन सुन्दर है। एक चित्रण देखिए—**"साधारण एक्के के घोड़े भारतीय दरिद्रता के अलबम हैं, या यों कहिए कि आजकल के स्कूलों और कालिजों के अधिकांश विद्यार्थियों की चलती फिरती दौड़ती तसवीरें हैं······यह मजनू की तसवीर हैं। पसली की हड्डियाँ ऐसी दृष्टिगोचर होती हैं जैसे एक्स-रे का चित्र। हाँकनें की गति हिन्दी के कहानी लेखकों की पैदाइश की संख्या से कम न होगी। मोटाई इन वीर तुरंगों की ऐसी होती है कि आश्चर्य होता है कि इनकी कमर से कवि और शायर अपनी नायिकाओं की कमर की उपमा न देकर इधर उधर क्यों भटकते रहे? इनका सारा शरीर ऐसा लचकता है जैसे अंग्रेज़ी कानून, जिधर चाहो उधर मोड़ लो।"[1]**

इनकी व्यंग्यात्मक कहानियों में "बकरी" प्रसिद्ध है। इसमें केवल इस भाव की व्यंजना है कि मनुष्य जब यंत्रवत हो जाता है तो उसका जीवन कितना हास्यास्पद हो जाता है। इस कहानी में हास्य के आलम्बन क्लक्टरी कचहरी के पेशकार पालना प्रसाद हैं। उनका चित्रण देखिये—

"इनके साथी कहते थे कि उस जन्म में यह मशीन थे। किसी कार्य में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती थी। कचहरी में जब यह मिसिल पढ़ कर सुनाते थे तब ऐसा जान पड़ता था कि ग्रामोफोन में से शब्द निकल रहे हैं। सिर पर टोपी ऐसे रखते थे कि यदि एक दिन उसका चित्र ले लिया जाता तो जब चाहे उससे मिला लीजिये—एक अंश का भी अन्तर न मिलेगा। यदि एक दिन कोई गिन लेता कि कितना चावल इन्होंने खाया तो सदा इनकी थाली में उतना ही मिलता। एक चावल का भी अन्तर न मिलता। धोबी को रवि-वार के दिन आठ बज कर सैंतीस मिनट पर यह कपड़ा दिया करते थे यदि मृत्यु भी उस समय आती होती तो यह कपड़ा देकर ही मरते ऐसा इनका विचार था। सारा कार्य बनी योजना के अनुसार होता था।"[2]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—बेढब जी की कहानी-कला में त्रुटि केवल इस बात की है कि कहीं-कहीं ये वीभत्स एवं अश्लील हो गए हैं और वहीं इनका हास्य हास्यास्पद हो गया है। उपमाओं के प्रयोग करने में ये कुशल

---

१. बनारसी एक्का—पृष्ठ ३.

२. गाँधी जी का भूत—पृष्ठ ३१.

हैं। ये इनकी शैली की विशिष्टता है। उक्तियाँ भी सुन्दर बन पड़ी हैं। इन्होंने हास्य का उद्रेक पात्रों के अपकर्ष तथा चरित्र-चित्रण के सहारे किया है। घटनाओं द्वारा भी हास्य का उद्रेक किया गया है। इनके व्यंग्य कटु नहीं हैं। इन्होंने मात्रा में अधिक लिखा है किन्तु स्तर कहीं-कहीं गिर गया है। इनकी वर्णन शैली सुरुचिपूर्ण अवश्य है लेकिन कहीं-कहीं कुरुचिपूर्ण वर्णन खटकता है। भाषा परिष्कृत है।

कान्तानाथ पांडे "चोंच"

इनके कहानी संग्रह में "छड़ी बनाम सोंटा" एवं "मौसेरे भाई" प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भी सामाजिक विद्रूपताओं का चित्रण किया है। नारी की पुरुष के समान होने की सनक, नवयुवकों की फैशनपरस्ती, कवि-सम्मेलनों की बाढ़, कथा-वाचक पण्डितों की ज्ञान शून्यता, कचहरियों की दुर्दशा आदि विषयों पर हास्यपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। "भदोही में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन" शीर्षक कहानी में कवि-सम्मेलन के समाप्त होने के बाद संयोजक जी तथा कवियों में जो वार्तालाप हुआ वह देखिए—

"वाह साहब, जनता अलग नाराज़ और आप लोग अलग झल्ला रहे हैं। ६॥ के बजाय ९ बजे आप ही लोगों के कारण सम्मेलन शुरू हुआ, मेरा क्या दोष ? बिना दाढ़ी बनवाए कविता नहीं पढ़ सकते थे ? चारपाई हम कहाँ से लावें ? पब्लिक का काम है। आप लोग तो समधी-दामाद से भी बढ़कर ऐंठ दिखला रहे हैं। यह ऐंठ किसी और को दिखलाइयेगा। आप लोगों की तो करनी ऐसी है कि किराया तक देने को जी नहीं चाहता है और किस मुँह से किराया लीजिएगा ? कौन-सा परिश्रम किया है आपने ? आप में से किसी एक ने भी समस्या-पूर्ति की थी ? वही पुरानी कविताएँ सुनाईं जो अखबारों में छप चुकी थीं। उनमें से दो एक की जमी। बाकी लोग तो नायिका की तरह गलेबाजी कर रहे थे। जनता कविता सुनने आई थी, गीत सुनने नहीं। इससे अच्छा था कि हम लोग कुछ कत्थक या तवायफें बुला लिए होते। ठाकुर गोपालशरण सिंह के आने का भरोसा था, वे भी नहीं आए। पता है उनके न आने पर पब्लिक क्या कह रही थी ? यही न कि सिंह नहीं कुछ स्यार अवश्य आए हैं।"[1]

आजकल की फैशन-परस्ती पर व्यंग्य उन्होंने "मेरे घर की प्रदर्शिनी" नामक कहानी में किया है। लेखक की पत्नी और उनका साला गौरांग दिन भर

१. मौसेरे भाई—पृष्ठ ४१.

प्रदर्शिनी चलने की बात सोच कर षड़यन्त्र करते हैं और अन्त में जब गौरांग लेखक से प्रार्थना करता है तो वह कहता है —

"देखो गौरांग ! मेरी प्रदर्शिनी कितनी अच्छी है······दिन भर में पन्द्रह बार पन्द्रह तरह की साड़ियाँ बदल बदल कर जब तुम्हारी दीदी मेरे पास से निकलती है तो मालूम पड़ता है कि बनारसी और अहमदाबादी दुकानों के स्टाल लगे हैं।······लड़के जब मिठाई देने पर भी लड़ते हुए शोरगुल करने लगते हैं तो मालूम होता है कि मुशायरा हो रहा है।"[१]

कहानी-कला और हास्य-विधान—इनकी कहानियों में अधिकतर स्वप्न का सहारा लिया गया है। लेखक जो स्वप्न में देखता है, उसी का वर्णन करता है। इसलिए अधिकतर पात्र कल्पित हो गये हैं, साधारण जीवन से उनका अधिक मेल नहीं। दूसरे हास्य का उद्रेक वर्णन करने से होता है, स्वाभाविक रूप से नहीं। कहीं कहीं हास्य "अपहसित" की श्रेणी में भी आ जाता है, "स्मित" नहीं रहता। लम्बे लम्बे कथोपकथनों से नीरसता भी यत्र-तत्र आ गई है। इनका हास यत्नज है, उसमें स्वाभाविकता नहीं।

निराला

"सुकुल की बीबी" तथा "चतुरी चमार" इनके हास्य रस की कहानियों के संग्रह हैं। इन्होंने समाज की विद्रूपताओं का चित्रण किया है। निराला ने उन्मुक्त प्रेम, उन्मादिनी शिक्षित युवतियों के स्वतंत्र प्रेम, वृद्ध-विवाह आदि पर व्यंग्य किया है।

श्री गजानन्द शास्त्री ने अपनी चौथी शादी क्यों की है? लेखक व्यंग्यात्मक शैली में उसका औचित्य बतलाता है—

"श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं० गजानन्द शास्त्री की धर्म-पत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्री जी ने आपके साथ चौथी शादी की है—धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोड़सी कन्या के लिये पैंतालीस साल का वर बुरा नहीं लगा—धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख़्तियार किये शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ शास्त्रिणी की साइन-बोर्ड टाँगा-धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी ने उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चलायी—धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है—धर्म की रक्षा के लिए।"[२]

१. छड़ी बनाम सोंटा—पृष्ठ १०.

२. सुकुल की बीबी—पृष्ठ ४०.

इसके अतिरिक्त इसमें तीन कहानियाँ और हैं—सुकुल की बीवी, कला की रूपरेखा और क्या देखा। सुकुल की बीबी कहानी में परीक्षा के निकट लेखक की दशा का हास्यमय वर्णन किया गया है—

"किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर छूने दबाव से फेल हो जाने वाली चिन्ता……अन्त में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लड़के की भाँति लौट आऊँगा।" परीक्षा के बाद फिर—**"मेरे अविचल कंठ से सुनकर कि सूबे में पहला स्थान मेरा होगा, अगर ईमानदारी से पर्चे देखे गये…पर ज्यों ज्यों फल के दिन निकट होते आते मेरी आत्मा-वल्लरी सूखती गयी।"**[1]

कहानी-कला और हास्य-विधान—निराला जी की कहानी मुख्यतः व्यंग्य प्रधान है और वह व्यंग्य है तीखा, कलेजे मे चुभने वाला। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक है। पात्र सजीव हैं, कथोपकथन में तीव्रता है। हास्य का उद्रेक पात्रों के क्रिया-कलापों से स्वयं हुआ है, यत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक"

ये "चाँद" में "विजयानन्द दुबे" के नाम से चिट्ठियाँ लिखा करते थे। उन पत्रों का संकलन "दुबे जी की चिट्ठियाँ" नाम से प्रकाशित हो चुका है। उनमें कुछ पत्र कहानी की श्रेणी में आते हैं, कुछ निबन्ध की श्रेणी में। वह युग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन तथा महात्मा गांधी के द्वारा प्रेरित समाज-सुधार का था। गम्भीरता उस युग का विशेष गुण था। उस युग के लेखकों का साहित्य समाज की गम्भीर समस्याओं को लेकर ही आगे बढ़ता है। इनकी कहानियों में समाज में प्रचलित बुराइयों पर व्यंग्य है। आर्य समाजी लोगों में बहस और शास्त्रार्थ करने की बीमारी होती है। न समय देखते हैं न स्थान, उन्हें अपनी बहस करना। कौशिक जी ऐसी ही एक बारात का वर्णन करते हैं जिसमें ब्याह की लग्न पास आ रही है लेकिन आर्य-समाजी कहते हैं लग्न किस चिड़िया का नाम है—

"बात बात में वेदों का हवाला देना तो इन लोगों का तकिया-कलाम सा था परन्तु ईश्वर झूठ न बुलवाए, उनमें से अधिकांश ऐसे थे जिन्होंने वेद की कभी सूरत भी नहीं देखी थी। परन्तु लड़की वाला टस से मस न हुआ। उसने कह दिया कि विवाह सनातन धर्म के अनुसार होगा। इसी समय एक महाशय

१. सुकुल की बीबी—पृष्ठ १६.

जी बोल उठे—अच्छा, इस विषय पर शास्त्रार्थ हो जाय। मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—आप बहुत ठीक कहते हैं। शास्त्रार्थ अवश्य होना चाहिए, विवाह हो चाहे न हो। यदि आप लोगों ने यह मसला तय कर दिया कि विवाह वैदिक रीति से होना चाहिए अथवा सनातनधर्मी रीति से तो बड़ा उपकार होगा। ऐसे महत्वपूर्ण मसले को सुलझाने के लिए यदि विवाह भी रोक दिया जाय तो कोई बुरी बात नहीं।"[1]

इसके अतिरिक्त कुछ कहानियों में विधवा-विवाह के विरोधियों तथा पर्दा-प्रथा के समर्थकों, जी-हुज़ूरों, नेताओं आदि की खूब खबर ली गई है। कौशिक जी की मृत्यु से पूर्व उनका अन्तिम पत्र प्रकाशित हुआ था। उसमें नेताओं पर करारा व्यंग्य किया गया है—

"नेता की परिभाषा यही है कि अपनी कहो, दूसरे की न सुनो, संसार भर में अपने को ही बुद्धिमान समझो और शेष सारे संसार को वज्र मूर्ख··· । भाई अब तो मेरा भी जी यही चाहता है कि मैं नेतापन पर कमर बाँध लूँ। अवसर अच्छा है, ऐसी धाँधली में भी जो नेता न बना उसका सवेरे सवेरे देखना पाप है। बस, मैं नेता और मेरा बाप नेता, और जो मुझे नेता न माने उसको हिन्दुस्तान से निकाल दो, वह देशद्रोही है।"[2]

उन्होंने नेतापन की "क्रीड" भी बताई है। उसको उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते—

"(१) दोनों वक्त गहरी छानना, (२) अपने आगे किसी की कुछ न सुनना और जो अधिक बड़बड़ाए तो ठोक देना, (३) हिन्दुस्तान से बाहर घूमने के लिए रेल और जहाज का किराया इकट्ठा करना (४) बात बात में अपने को नेता कहना, (५) अपने दल में नित्य एक बार जूता-लात कर लेना, (६) किसी बात पर कभी जमे न रहना कभी कुछ कहना, कभी कुछ, और (७) जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये रोज नए-नए स्वांग लाना जैसे थियेटर, बाइस्कोप वाले रोज नया तमाशा दिखाते हैं।"[3]

कहानी-कला और हास्य-विधान—कौशिक जी की कहानी के दो विशेष गुण हैं। प्रथम पाठक को मनोरंजन की सामग्री देना और दूसरे उसकी

१. दुबे जी की चिट्ठियाँ—पृष्ठ २८६.

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—१९ सितम्बर १९५४, पं० विश्वम्भर नाथ कौशिक के लेख—लेखक प्रद्युम्न पंडित।

३. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—१९ सितम्बर १९५४, पं० विश्वम्भर नाथ कौसिक के लेख—लेखक प्रद्युम्न पंडित।

उत्सुकता बनाये रखना। इनकी भाषा प्रसाद-गुणयुक्त है। इन्होंने हास्य का उद्रेक पात्रों के वार्तालाप में वाक्-छल का पुट देकर किया है। घटनाएँ भी स्वाभाविक हैं। इनमें "स्मित हास्य" तथा व्यंग्य दोनों पर अधिकार है। हमारा निश्चित मत है कि "दुबे जी की चिट्ठियाँ" हिन्दी साहित्य में हास्य-रस की एक स्थायी सम्पत्ति हैं। इन्होंने जिस समस्या को उठाया है उसे अधूरा नहीं छोड़ा, जिस चरित्र का चित्रण किया है उसे पूर्णतः ढाँचे में उतारा है। इन्होंने जो कुछ लिखा वह वास्तविक जीवन से लेकर लिखा। कल्पना का सहारा लेकर उन्होंने हास्य पैदा करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके हास्य साहित्य को पढ़ते समय हमें ऐसा लगता है कि जैसे हम जीवन को देख रहे हैं, कौशिक जी के हास्य में दूसरों को तन्मय कर लेने की क्षमता है।

भगवती चरण वर्मा

आपकी कुछ कहानियों में सामाजिक व्यंग्य का सृजन कलात्मक ढंग से हुआ है। "प्रज़ेण्टस" शीर्षक कहानी में लेखक ने शशिबाला नाम की एक ऐसी स्त्री का चरित्र-चित्रण किया है जिसके माध्यम से आधुनिक शिक्षित युवतियों के एक वर्ग विशेष के प्रेम-व्यापार पर एक कटु व्यंग्य किया गया है। कहानी का नायक शशिबाला के मकान में है, शशिबाला स्नान-घर में है, नायक ड्रेसिंग टेबिल में लगे दर्पण में अपना मुख देखता है। उस टेबिल में चिपके हुये कागज को देखता है तो उसमें नाम लिखा हुआ है प्रकाशचन्द्र। वह यही सोच रहा था कि यह प्रकाशचन्द्र कौन है, तो उसकी निगाह 'वैनेटी-बाक्स' पर पड़ जाती है उसमें नाम लिखा हुआ है "सत्यनारायण"। इसी प्रकार शशिबाला जी के ग्रामोफोन, हारमोनियम पर भी विभिन्न प्रेमियों के नामों की चिटें लगी हुई मिलीं। **"अब तो मैंने कमरे की चीज़ों को गौर से देखना आरम्भ किया। सब में एक एक कागज़ चिपका हुआ और उस कागज़ पर एक एक नाम—जैसे "विलियम गर्बो", "पेस्टनजी सोराबजी बागलीवाला", "रामेन्द्रनाथ चक्रवर्ती", "श्रीकृष्ण रामकृष्ण मेहता", "रामनाथ टंडन", "रामेश्वर सिंह", आदि आदि।"**[1] लेखक को वह उन भेंट की हुई वस्तुओं की संख्या ९७ बताकर कहती हैं—**"आपका नम्बर अट्ठानवें होगा।"**

नारी के अर्थ-प्रेम पर कितना कटु व्यंग्य है ? प्रेम के सौदे "प्रेज़ेण्टस" के लिए किये जाते हैं। इतना मनोवैज्ञानिक तथा हास्य-मय वर्णन अन्यत्र दुर्लभ

१. इंस्टालमेन्ट—श्री भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ ६.

है। "विक्टोरिया क्रास" अँग्रेजों के जमाने में उस व्यक्ति को दिया जाता था जो लड़ाई में बहुत बहादुरी दिखाता था। वर्माजी ने "विक्टोरिया क्रास" शीर्षक कहानी में सुखराम पात्र का विक्टोरिया क्रास पा जाने का वर्णन किया है जो कि लड़ाई में जान बचाकर भागता है। "बाबू साहब, सुखराम की ऐसी बेशरम ज़िन्दगी भी हम लोगों ने नहीं देखी। चारो तरफ से गोलियों की बौछारें हो रही है, तोप के गोले गिर रहे हैं, बम फूट रहे है और सुखराम इन सबों के बीच से सही सलामत भागे जा रहे है। एक गोली कान से बातें करती हुई निकल गई, तोप के गोले से जो जमीन फट के उछली उसी के साथ इन्होंने भी दस फुट की छलाँग मारी। इनका साफा गोलियों से छलनी हो रहा था, जूते की ऐड़ियों में गोलियाँ चिपकी हुई, वर्दी गोलियों से छिदी हुई और सुखराम के बदन पर एक खराश तक नहीं। किन्तु कन्डैल साहब पर उसका विपरीत ही असर होता है—

"सुखराम ने बहुत बहादुरी का काम किया.........ताज्जुब हो रहा है कि यह शख्स इतनी दूर जिन्दा कैसे चला आया। हजारों गोलियों के निशान इसके बदन पर के कपड़ों पर हैं, पर इसके एक भी गोली नहीं लगी......... साथ ही हम सिफारिश करते हैं कि सुखराम को विक्टोरिया क्रास दिया जाय।"

—(इन्सटालमेंट—भ० च० वर्मा)

भाग्य के व्यंग्य की (Irony of Fate) इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति वर्मा जी की लेखनी के सामर्थ्य की ही बात है। हास्य का उद्रेक स्वाभाविक वर्णनों द्वारा हुआ है। कण्डैल साहब यहाँ हास्य के आलम्बन हैं तथा सुखराम के भागने का वर्णन हास्यपूर्ण है। कहानी में रजत हास्य की अवतारणा होती है और कहानी के अन्त में पाठक मुस्करा भर देता है। कथोपकथन सजीव है एवं चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक।

जयनाथ "नलिन"

"नवाबी सनक" एव "जवानी का नशा" इनकी दो हास्य रस की कहानियों के संकलन हैं। "नवाबी सनक" में नवाबों की तकल्लुफ-पसन्दी, पतंगबाज़ी, तुनक-मिजाज़ी आदि का हास्यपूर्ण वर्णन है। "जवानी का नशा" उनकी व्यंग्यात्मक कहानियों का संग्रह है। इसमें "हवाई हमला", "मनीआर्डर के रुपये", "डिबेटर", "परछाईवादी", "इण्टरव्यू" आदि ११ कहानियाँ हैं। इनमें मनुष्य और समाज की न्यूनताओं और दुर्बलताओं को प्रकट किया गया है। "प्रेम की पीड़ा" में उन लोगों पर व्यंग्य किया गया है जो कवि बनने के लिए

प्रेमी बनना आवश्यक समझते हैं एक ऐसे ही नवयुवक का जो कवि बनने के लिए रास्ता चलती स्त्रियों से प्रेम का अभिनय करता है और अपमानित किया जाता है, चित्रण किया गया है। अपनी प्रेमिका की वह कल्पना करता है—

"और आह—मेरी प्राण......वह तो जनाब पहनती है हल्की सी साढ़े तीन तोले की झिलमिल साड़ी, जिसमें बिना हवा ही उठती हैं लाखों लहरियाँ, और जनाब पहनती है बिना बाहों की बाडी। कितने अच्छे लगते हैं उसके पतले पतले लटकते हुए सींक से सुकुमार हाथ। एक इधर हमारी श्रीमती जी के हाथ हैं—मोटे मोटे मूसल से, जैसे किसी दंगल में उतरना हो।"

इसके बाद वह प्रेम का रिहर्सल करता है—

"सोचते सोचते दिल में कुछ दर्द सा मालूम होने लगा। आँखों में आँसू अभी भी न थे। उठा और आँखों में पेन-बाम लगा लिया। उससे वाकई आंखों में आँसू आ गये। अब समस्या यह थी कि दिल का दर्द कैसे सुनाऊँ। लल्ला की महतारी तो अपने चौके-चूल्हे में लगी हुई थीं। खाना बना चुकने पर वह मेरे कमरे में आईं। मैं एक दम करवट बदल कर रह गया और बड़े ज़ोर से एक आह की। वह एक दम चौंक पड़ीं।"[1]

कहानी और रेखाचित्र में विशेष अन्तर नही है। कहानी रेखाचित्र से अधिक व्यापक होती है। **"कहानी के लिए घटना का होना जरूरी नहीं है, पर रेखाचित्र के लिए उसका न होना जरूरी है। घटना का भराव वह सहन नहीं कर सकता। इसी प्रकार कहानी के लिये विश्लेषण किसी प्रकार भी अवांछनीय नहीं है, परन्तु रेखाचित्र का वह प्रायः अनिवार्य साधन है।"**[2]

"शतरंज के मोहरे" नलिन के रेखाचित्रों का संग्रह है। इसमें कुछ राजनीतिक नेताओं तथा कुछ साहित्यिकों के "व्यंग्य-शब्द-चित्रों" का संकलन है। हिन्दी में यह नई चीज़ है। व्यंग्यात्मक कहानियाँ तो मिलती हैं किन्तु व्यंग्यात्मक शब्द-चित्र नहीं। "हिन्दी का चर्खा" शीर्षक से आपने पं० बनारसी दास चतुर्वेदी का व्यंग्य-शब्द-चित्र लिखा है—

"आप इन देवता जी को पहचानते हैं न? नहीं भी पहचानते, तो भी जानते हैं और नहीं जानते, तो भी मानते हैं। इनका शुभ नाम है—बनारसी दास चतुर्वेदी। इनको जानें या न जानें, या न पहचानें पर इनको मानना अवश्य पड़ता है। मजबूरी है; अपने हाथ की बात तो नहीं। चमत्कार को

---

१. जवानी का नशा, पृष्ठ ४५, ४६.
२. विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ८०.

नमस्कार है, चौबे जी को क्या। इनको आप क्या समझते हैं, इनके कार्यकलापों को सिर झुकाना पड़ता है। घासलेट घी की तरह आप प्रसिद्ध हैं और प्याज़ की तरह फायदेमन्द। हींग के बघार की तरह मशहूर इनके कार्यकलाप हैं, सनकियों के समान इनके वार्तालाप हैं।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—इनके रेखाचित्र कला की दृष्टि से कहानियों से श्रेष्ठ हैं। रेखाचित्रों के रंग और रूप का संतुलन ठीक है, कहानियाँ अतिरंजित हो गई हैं। उनमें कल्पित पात्र एवं घटनाओं के सहारे हास्य का सृजन किया गया है जो अस्वाभाविक हो गया है। रेखाचित्रों में भी कहीं-कहीं नीरसता है एवं व्यक्ति का चित्र स्पष्ट नहीं हो सका है। हिन्दी में प्रथम प्रयास होने के कारण उनका महत्व अवश्य है। चित्रण में वह बात नहीं कि पाठक के दिल में चित्रित पात्र की तस्वीर उतार दे।

ज़हूरबख़्श

"हम पिरशीडेन्ट हैं" इनकी ग्यारह हास्य-व्यंग्यात्मक कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में "नेताजी", "कंट्रोल का गुड़", "दवाई", "बहादुर बच्चे", "घर भर जाग उठा" आदि में सामाजिक एवं राजनैतिक विकृतियों पर व्यंग्य किया गया है। जिस कागज को अनपढ़ पिरशीडेन्ट जी आनरेरी मजिस्ट्रेट का हुक्मनामा समझ कर कस्बे भर में शोर मचाते फिरते हैं, उसको लक्ष्य कर जब थानेदार कहकहा लगा कर कहता है—**"देखा है, देखा है। वह तो सनलाइट साबुन का इश्तहार है। पचौली जी (एक अन्य पात्र) हमारे ही यहाँ से ले गये थे।"**

कहानी-कला और हास्य-विधान—इनकी कहानियों में अधिकतर पात्र कल्पित हैं, उनका चित्रण अतिरंजित है। स्वाभाविकता नहीं। हास्य का उद्रेक भी स्वाभाविक नहीं है। यत्नज हास्य है।

यशपाल

"चक्कर क्लब" में इनकी हास्यरस की कहानियाँ संग्रहीत हैं। यशपाल मुख्यतः गम्भीर कहानियों के प्रतिभाशाली लेखक हैं। इसमें समाज के पूँजीपतियों, नेताओं एवं असमाजिक तत्वों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। इसमें एक "बेकार एण्ड कम्पनी" की योजना की गई है। बेकार शब्द की परिभाषा यशपाल जी के अनुसार—**"ऐसे राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता जो**

---

१. शतरंज के मोहरे, पृष्ठ १०७.

काक-वृत्ति से यानी कौवे की तरह छीन झपट कर अपना निर्वाह करते हैं। इस देश की बड़ी-बड़ी रियासतों के मालिक बेकार फिरा करते हैं या सेठ जी भी दुपहर के समय भोजन करने के बाद कुछ देर बेकार में सुस्ताते हैं। यह लोग बेकार नहीं गिने जायेंगे और न "बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड" के मेम्बर बनने के हक़दार होंगे।"[1] आधुनिक नारी फैशन के धुँध में कितनी विकृत हो गई है कि उसमें से नैसर्गिक सौन्दर्य एवं सुषमा मृतप्राय हो गये हैं। "साहित्य, कला और प्रेम" शीर्षक कहानी में अवांछनीय परिवर्तन पर लेखक ने व्यंग्य किया है—
"और आज...आज तो वे जार्जेट की "डल रोड" साड़ी पहन, कालिज की लारी में बैठ, साजन समूह पर बहुत सी धूल और उड़ती उड़ती नजर डालती हुई वहाँ जा छिपती हैं, जहाँ लोहे के सींखचे जड़े फाठक पर लिखा रहता है— "बगैर इजाज़त भीतर आना मना है"। गागर की जगह उनकी बगल में दबी रहती है छतरी। रुनुन-झुनुन करने वाले पायजेब की जगह उनके पैरों से आती है ऊँची एड़ी की खटपट आवाज़। यह ऊँची एड़ी जिसे बेंध कर कोई भाग्य-शाली काँटा उनकी महावर रंगी एड़ी को चूम नहीं सकता और किसी भाग्य-शाली देवर को वह एड़ी छू पाने का अवसर नहीं।"[2]

यशपाल ने पूंजीपतियों की शोषण नीति, काँग्रेसी नेताओं की मदान्धता, धर्म का नाम लेकर अत्याचार पर पर्दा डालने वालों पर तीखा व्यंग्य लिखा है।

कहानी-कला और हास्य-विधान—यशपाल का व्यंग्य सुसंस्कृत है। उसमें तीखापन है पर वह संयत है। इनकी भाषा टकसाली है। "अँग्रेज़ी शब्दों" का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है किन्तु वह खटकता नहीं। हास्य का उद्रेक सजीव कथोपकथन के द्वारा किया गया है। पात्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं कल्पित नहीं। चरित्र चित्रण स्वाभाविक है। इनकी विशेषता है इनकी प्रसाद-गुण-युक्त शैली। स्वाभाविक वर्णन पाठक को बरबस मोह लेता है। मनोरंजन के साथ इनकी कहानियाँ शिक्षाप्रद भी हैं तथा वे समाज सुधार की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करती हैं।

अमृतलाल नागर

"नवाबी मसनद" इनका हास्यरस की कहानियों का संग्रह है। नागर जी का हास्य अधिकांशतः नवाबी जीवन तक ही सीमित रहा है। कुछ इने गिने

१. चक्कर क्लब—परिचय, पृष्ठ ६.
२. चक्कर क्लब—परिचय, पृष्ठ ११.

पात्रों का वृत्त बनाकर ही उनके द्वारा नवाबों की आराम-तलबी, नाज़ुक-मिज़ाजी, शक्कीपन, फिज़ूल तकल्लुफ करने की आदत, अक़्ल का दिवालियापन, बौड़मपन आदि का सजीव वर्णन किया है। नवाब साहब को मामूली जुकाम हो गया है। दरबारी लोग निदान में लगे हुए हैं कि जुकाम का कारण क्या हो सकता है। एक साहब पता लगाते लगाते इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बारिश के मौसम में मूली की हवा जो संखिए का काम करती है वह नवाब साहब को लग गई है। हकीम साहब के सामने तीन बार गश खाने के बाद नवाब साहब पश्चाताप करते हैं—

"हाय, तुमने मुझे पहले क्यों न बताया? तभी मैं कहूँ कि इस कम्बख़्त मूली वाले के इधर गुज़रते ही मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा कि मेरी छाती पर किसी ने बरफ़ की सिल रख दी। हाय, अब मैं क्या करूँ? अरे, तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया।"[1]

कहानी-कला और हास्य-विधान—पात्रों में परिवर्तन न होने के कारण सब कहानियाँ एक ही ढर्रे की हैं। मनोरंजन अवश्य होता है किन्तु पात्र कुछ अजीब से लगते है मानों वे किसी दूसरे लोक के हों। अतिनाटकीयता द्वारा वस्तु-विन्यास किया गया है। घटनाओं में भी कोई तारतम्य नहीं। हास्य का उद्रेक पात्रों की अतिरंजित घटनाओं द्वारा किया गया है जो कला की दृष्टि से श्लाघनीय नहीं कहा जा सकता।

शरदचन्द्र जोशी

'मंत्री जी की डायरी" इनका हास्य-रसपूर्ण गद्य-संग्रह है। "मंत्री जी की डायरी" के अतिरिक्त इसमें "दो भाई", "कफ़न का आराम", तथा "गाँव का पानी" तीन कहानियाँ और संग्रहीत हैं। लेखक ने मंत्री जी की डायरी के एक पृष्ठ में "आपन मुख तुम आपन करनी" मंत्री जी की कलम से ही लिखवाया है कि वे किस प्रकार जनता के पैसे से मौज उड़ा रहे हैं? उनकी पत्नी कितनी ज्यादा मोटी हो गई है? वे किस प्रकार लोगों को धोखा देते हैं? "झूठा जी" और "अक़ल फूटा जी" दो बेकार आदमी किस प्रकार एक नेता की कृपा से लखपती बन जाते हैं? "फैशन का आराम" में गरीबों की विवशता एवं उन पर हकूमत के अत्याचार पर कठोर व्यंग्य है। शिवप्रसाद की स्त्री जिसकी हैज़े से मृत्यु हो गई है, उसको कफ़न तक नौकरशाही के कठिन नियमों के कारण नहीं मिल सका। "मंत्री जी की डायरी" का कुछ अंश देखिये—

---

१. नवाबी सनक—पृष्ठ ६७.

"आज सुबह जब उठा तब बदन टूट रहा था, जैसे खादी का डोरा हो। अस्वस्थ सा हो रहा हूँ। समझ में नहीं आता इतना खाने पर भी बदन कमज़ोर क्यों है। अंडे, गोश्त, घी सब बेकार क्यों जा रहा है। शरीर को अब परिश्रम नहीं करना पड़ता......नौकर से सुना बाहर एक अखबार का सम्पादक प्रतीक्षा कर रहा है। अखबार वाले आज कल बड़े हरामखोर हो रहे हैं। एक सप्ताह हो गया मेरा कहीं फोटो नहीं आया छपकर। आखिर मन्त्री हूँ या मजाक हूँ? साले अभिनेत्रियों के फोटो छापते हैं। अरे हम क्या अभिनेत्रियों से कम हैं। मगर मैंने सोचा आ गया तो ठीक से मिल कर बोल लूँ।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—जोशी जी का व्यंग्य अत्यधिक कटु है। आलम्बन के प्रति तीव्र घृणा के भाव लेखक के मन में हैं, उसी के कारण हास्य "मुँहफट" हो गया है। उसमें निन्दा की मात्रा अधिक है। इनकी सभी कहानियों में कटुता की मात्रा अत्यधिक हो गई है। प्रतीत होता है कि लेखक पूर्वाग्रह से लिख रहा है। हास्य का उद्रेक भी अस्वाभाविक घटनाओं द्वारा हुआ है।

शारदाप्रसाद वर्मा "भुशंडि"

इन्होंने चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी "उसने कहा था" की पैरोडी "चिमिरिखी ने कहा था" शीर्षक से लिखी है। इसी कहानी के नाम पर इन्होंने अपनी पुस्तक का नाम भी वही रखा है। प्रेमचन्द्र जी की "मुक्ति मार्ग", प्रसाद जी की "गुण्डा", चतुरसेन शास्त्री की "दे खुदा की राह पर", सुदर्शन कृत "न्याय-मंत्री" आदि कहानियों की भी पैरोडियाँ भी इसमें संग्रहीत हैं। "उसने कहा था" की पैरोडी को छोड़ कर वाकी पैरोडियां अधिक उत्कृष्ट नहीं हैं। "चिमिरिखी ने कहा था" का प्रारम्भ देखिये —

"प्राइमरी मदरसों के मुदर्रिसों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों, लड़कों तथा लड़कियों की बोली का मरहम लगावें। जब छोटे-छोटे स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र आपस में गाली-गलौज करते, या एक दूसरे के साथ साला-बहनोई का रिश्ता जोड़ते हुए नजर आते हैं, तब यहाँ के शिक्षित स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग वर्ग 'आइए बहन जी, कहिए कुँआरी जी, सुनिए भाई जी', इत्यादि मधुवेष्ठित शब्द बोलते हुए,दृष्टिगोचर होते हैं। क्या मजाल,

१. मंत्री जी की डायरी—पृष्ठ १.

एक भी लफ़्ज मुँह से निकल जाय। उनका शुद्ध शिष्टाचार ऐसा सरस, सरल और आडम्बरहीन होता है, जैसे छिलका उतारा हुआ केला। उस पर "प्लीज़" और "थैंक यू" तो सुन्दरता बढ़ाने में बिजली की लाइट का काम करते हैं।"[1]

कहानी-कला तथा हास्य-विधान—कविता की "पैरोडी" तो हिन्दी में बहुत लिखी गई हैं किन्तु कहानियों की पैरोडियाँ लिखने का श्री गणेश भुशंडी जी ने ही किया है। इनकी "पैरोडियों" में यत्र-तत्र अश्लीलता आ गई है। कहानियों में गति नहीं है बीच-बीच में अवरोध आ गया है। कथानक शिथिल हो गए हैं तथा जिस कहानी की वह पैरोडी है उसके समानान्तर वह चल नहीं पाती। हास्य का उद्रेक पात्रों के बेढंगे क्रिया-कलापों से किया गया है जिसमें अस्वाभाविकता आ गई है। स्वस्थ हास्य का सर्वत्र अभाव है।

"मिलिंद"

"बिल्लो का नकछेदन" आपकी कहानियों तथा लेखों का संग्रह है। आपकी कहानियों के आलम्बन हैं आजकल के ख्याति-प्रिय नेता, ढोंगी समाज-सेवी, तथा-कथित कवि, वैद्य और पेटू। आजकल जयन्तियाँ मनाने का एक रिवाज़-सा हो गया है। एक सेठ जी ने एक व्यायामशाला बनवाई है। उनकी "स्वर्ण-जयन्ती" की योजना देखिए —

"खबर उड़ी है कि आगामी मास में सेठजी की स्वर्ण-जयन्ती पर दीन-बन्धु पार्क में सार्वजनिक सभा में विद्वानों और नेताओं के भाषण होंगे। सेठ जी अभिनन्दन का उत्तर देते हुए भाषण देंगे। इनकी व्यायामशाला के स्वयं-सेवक अंग्रेज़ वेषभूषा के खिंचे इनके चित्र को सलामी देंगे, ग़रीबों को अनाज बाँटा जायगा और उक्त अवसर पर इनकी दानवीरता, धनसम्पन्नता, साहित्य-रसिकता और उदर की भाँति विराट् विद्याव्यसन के, व्यवसाय के, रंग-बिरंगे चित्रों से पूर्ण, वर्णन की एक पचास पेजी पुस्तिका मुफ्त बाँटी जायगी। जिसमें इनके उठने से सोने तक का अब तक के जीवन का सारा हाल छपा होगा, जिसका कम्पोजिंग होनोलूलू में हुआ है, छपाई टिम्बकटू में और जिल्दबन्दी फूल शहर में।"

कहानी-कला और हास्य-विधान—इनकी कहानियों में कलात्मकता नहीं। कहानी केवल विवरण मात्र ही नहीं है, उसमें चरित्र-चित्रण, तथा कथा-तत्व भी आवश्यक है। इनकी कहानियों में घटना-पक्ष कमज़ोर रह गया

---

१. चिमिरिखी ने कहा था—पृष्ठ १.

है। हास्य भी यत्नज है, स्वाभाविक नहीं। कहीं-कही अतिरंजित वर्णन भी मिलता है।

सरयू पंडा गौड़

आपका "कहकहा" शीर्षक कहानी-संग्रह हमारे देखने में आया। आप बिहार के निवासी हैं। इनकी कहानियां में नशेबाजों तथा सनकियों पर व्यंग्य किया गया है। आपकी "मास्टरजी" शीर्षक कहानी में एक ऐसे मूर्ख मास्टर की कहानी जो स्वप्न तो इतने ऊँचे देखता है किन्तु वैसे निरा बुद्धू है। जब इन्सपेक्टर साहब आते हैं तो उसकी क्या दशा होती है? वे इतिहास पढ़ा रहे हैं—

"अकबर का बेटा बाबर जब अपने बाप हुमायूँ की यादगार में लाहौर के चौक में कुतुबमीनार बनवा रहा था·····इसी बीच दारा के भतीजे शाहजहाँ ने अपनी प्यारी बीबी मोती महल के रहने के लिए आगरे में एक बड़ा खूबसूरत और नामी महल बनवाया और चूँकि इस बहुमूल्य महल के बनवाने में उसके खजाने का धेला-धेला खरच हो गया, इसलिए उसने अपना शाही ताज तक बेच कर इस महल में लगा दिया। इसीलिए उसका नाम पड़ा ताजमहल।"[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—पण्डा जी की अधिकतर कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से निम्न हैं। इनमें जी० पी० श्रीवास्तव के समान "धौल-धप्पे" का हास्य मिलता है। कल्पित पात्र, ऊटपटाँग घटनाएँ तथा अतिनाटकीय कथोपकथन इनके कहानियों के अंग हैं। "मुँहफट" हास्य की भरमार है। स्वाभाविकता का सर्वत्र अभाव है।

राहुल सांस्कृत्यायन

"बहुरंगी-मधुपुरी" शीर्षक इनके मनोरंजन कहानियों का संग्रह है। राहुल जी ने मूलतः ब्रिटिश शासन के बाद तथा उससे पूर्व की सामाजिक विकृतियों का खाका खीचा है। साथ में फैशन-परस्ती, छुआछूत आदि विषयों को भी ले लिया गया है। पहली कहानी "बूढ़े लाला" ने मानो पुस्तक की भूमिका का कार्य किया है और दूसरी "हाय बुढ़ापा" में एक ऐसी महिला का चरित्र चित्रण किया गया है जो केवल कृत्रिम शृङ्गार के बल पर अपने यौवन को प्रदर्शित करते रहने का एक अभिनय करती है, परन्तु ऐसा अभिनय जिसमें

---

१. कहकहा—पृष्ठ ५०.

मेजों पर बैठी अन्य तरुणियाँ उसे व्यंग्य की दृष्टि से देखती हैं। "कुमार दुर्जय" नामक कहानी में सामन्तवाद के ढहते हुये महल का अच्छा खाका खींचा गया है। "महाप्रभु" में एक सन्यासी की पोल खोली गई है।

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—राहुल जी प्रतिभाशाली कलाकार है। इनकी कहानियों में बौद्धिक हास मिलता है। स्वाभाविक चरित्र चित्रण के साथ कथोपकथन भी अत्यन्त सजीव है। व्यंग्य मृदुल है, तीखा नहीं।

राधाकृष्ण

ये "घोम-बोस बनर्जी-चटर्जी" नाम से हास्य-रस की कहानियाँ लिखते हैं। सामयिक विद्रूपताएँ ही इनका विषय रहा है। "मैं और चपटू" में आज कल की योजनाओं की बाढ़ पर एक तीखा व्यंग्य किया गया है। चपटू नामक चरित्र कल्पनाओं के महल पर महल बनाता है। पहले लेखक बनने की सोचता है, फिर प्रकाशक, फिर मशीन बनाने वाला, अन्त में जब उसकी अपनी सब योजनाएँ असफल हो जाती है तब उन्हें सरकार में योजना बनाने का कार्य मिल जाता है। **"मगर अब की बार जब ससुराल गया तो चपटू बाबू से मेरी मुलाकात ही नहीं हुई। पूछने पर पता लगा कि वे बड़ी ऊँची नौकरी पाकर दिल्ली चले गए हैं। वहाँ सारे देश की उन्नति और विकास के लिए योजना बना रहे हैं।"**[1]

कहानी-कला एवं हास्य-विधान—इनकी कहानियाँ उच्च-कोटि की हैं। इनका कथा-शिल्प प्रौढ़ है, चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है। कहानियों का उतार-चढ़ाव अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया है। व्यंग्य बड़ा चुभता है। हास्य का उद्रेक चरित्र चित्रण से बिलकुल स्वाभाविक रूप में हुआ है। जहाँ हास्य है वहाँ "स्मित" है, जहाँ व्यंग्य है वह भी सुरुचिपूर्ण। हास्य-रस की कहानियों में रस एवं कला की दृष्टि से इनकी कहानियाँ उच्च कोटि की कही जायेंगी।

बरसानेलाल चतुर्वेदी

"हाथी के पंख" लेखक की कहानियों तथा निबन्धों का संग्रह है। इसमें पारिवारिक समस्याओं को लेकर हास्य रस की सृष्टि की गई है। गृहपति को शुद्ध दूध मिलने की समस्या, बरातों के मनोरंजक अनुभव, घर में देर से आने

१. "तरंग" साप्ताहिक —पृष्ठ ६.

पर "दफ्तर में देर हो गई" का बहाना, आदि कहानी के विषय बनाए गए हैं। "मुझको और न तुझको ठौर" में जब गाँव के दूध वाले से, गली के हलवाई से, डेरीफार्म की दूकान से, शुद्ध दूध मिलने की योजनाएँ असफल सिद्ध होती हैं तो अन्त में यह निश्चय किया जाता है कि घर में ही गाय पाली जाय। कहानी का नायक नौकर पेशा है, दफ्तर से लौटता है तो घर में क्या स्थिति पाता है—

"पहले दिन दफ्तर से लौटा तो घर में झगड़ा हो रहा था। पास वाले किरायेदार के बच्चे को गाय ने सींग मार दिया था। जाकर मैंने मामले को शान्त किया। श्रीमती जी की ड्यूटी शाम को सानी करने की थी। उन्होंने दो दिन तो की, तीसरे दिन उनकी पसली में दर्द हो गया। सानी करना मैंने स्वयं प्रारम्भ किया। एक दिन बछड़ा खो गया। चार घंटे में उसका पता लगा। दूसरे दिन सुबह उठते ही पता चला कि गाय गायब है...दोस्तों को तो दिल्लगी सूझती है लगे पूछने, "कहाँ से आ रहे हो"। मैंने कहा, "काजी हौज"। मुस्करा कर कहने लगे, "अब तक वहाँ जानवर जाते थे, अब क्या आदमी भी जाने लगे।"[1]

कहानी कला एवं हास्य-विधान—लेखक जब स्वयं अपनी आलोचना करता है तब उसके एकाँगी होने का भय रहता है तब भी निष्पक्ष आत्म-विश्लेषण करके यह कहा जा सकता है कि इनकी कहानियों में पारिवारिक स्थितियों को हास्य-मय बनाने का प्रयास किया गया है। वाक्-छल, व्यंग्य एवं स्मित तीनों हास्य के प्रभेदों का प्रयोग किया गया है। जहाँ तक हो सका है लेखक ने यथार्थ ही चित्रण किया है, समस्याएँ अपनी ही लगती हैं, कल्पित नहीं। भाषा में परिष्कार की आवश्यकता है।

उपसंहार

हास्य-रस की कहानियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कहानियों में भी हास्य-रस पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुका है। कौशिक, राधाकृष्ण एवं अन्नपूर्णानन्द की हास्य-रस कहानियाँ विश्व की किन्हीं भी हास्य-रस की कृतियों के सम्मुख रखी जा सकती हैं। चरित्र-चित्रण, कहानी के शिल्प का सर्वांगपूर्ण विकास अब हमें मिलने लगा है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने जिस अभाव का अपने इतिहास में संकेत किया था—**"समाज में चलते जीवन के किसी**

---

१. हाथी के पंख—पृष्ठ ६.

विकृत पक्ष को, या किसी वर्ग के व्यक्तियों की बेढंगी विशेषताओं को हँसने-हँसाने योग्य बनाकर सामने लाना अभी बहुत कम दिखाई दे रहा है।"[1] वह कमी अब पूरी हो गई है। अब हमें राजनैतिक एवं सामाजिक वर्ग के विकृत पक्षों को लेकर लिखी गई अनेक सफल हास्य-रस की कहानियाँ मिली हैं जो कला एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से परिष्कृत एवं सुसंस्कृत हैं।

●

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ ४७४.

: ८ :

उपन्यास साहित्य में हास्य

हिन्दी में उपन्यास का प्रारम्भ भी भारतेन्दु काल से ही हुआ। हम पहले अध्याय में इस बात का वर्णन कर चुके हैं कि भारतेन्दु काल में जैसी उन्नति नाटकों तथा निबन्धों के सृजन में हुई वैसी कथा साहित्य में नहीं। कहानी और उपन्यास बहुत कम मिलते हैं। हास्य रस के उपन्यासों का तो प्रारम्भ से ही अभाव रहा है जो अब तक बना हुआ है। डा० रामविलास शर्मा ने इस अभाव का कारण ठीक ही बताया है—"**उपन्यास और कहानियों का विकास जल्दी न हुआ, इसका मूल कारण निबन्धों की लोकप्रियता थी। रोचक निबन्धों में कथाएँ भी गढ़ कर लेखक अपनी कथा-साहित्य वाली रचनात्मक प्रतिभा का वहीं उपयोग कर लेते थे।**"[1]

चरित्र-चित्रण, वस्तु-विन्यास एवं कथोपकथन ही उपन्यास के उपकरण माने गये हैं। हास्य-रस के उपन्यासों में जो विशेष कला अपेक्षित है, वह है हास्य-विधान।

भारतेन्दु-काल में बालकृष्ण भट्ट के उपन्यास "सौ अजान, एक सुजान" में हास्य की अवतारणा हुई है। मुख्यतः इस उपन्यास में एक अमीर के बिगड़ने और अपने एक सच्चे मित्र की सहायता से सुधरने की कथा है। पढ़े-लिखे बाबुओं की भाषा में अंग्रेज़ी के प्रयोग पर व्यंग्य करते हुए भट्ट जी लिखते हैं—"**मैं आप लोगों के प्रपोज़ल को सेकिंड करता हूँ।**" एक स्थान पर लड़ने वाली औरतों का चित्रण किया गया है—"**हवा के साथ लड़ने वाली कोई कर्कसा न लड़ेगी तो खाया हुआ अन्न कैसे पचेगा, यह सोच अपने पड़ोसियों पर बाण से तीखे और रूखे वचनों की वर्षा कर रही है।**" चरित्र-चित्रण में भी हास्य का पुट मिलता है। बुद्धदास जैन पात्र का चित्रण देखिए —

---

१. भारतेन्दु युग—डा० रामविलास शर्मा, पृष्ठ १३२.

"पानी चार बार छान कर पीता था, पर दूसरे की थाली समूची निगल जाता था। डकार तक न आती थी। उमर इसकी चालीस के ऊपर आ गई थी, दाँत मुँह में एक भी बाकी न बचे थे, तो भी पोपले और खोंठहें मुंह में पान की बीड़ियाँ जमाय, सुरमे की धज्जियों से आँख रँगे, केसरिया चन्दन का एक छोटा सा बेंदा माँथे पर लगाय, चुननदार बालाबर अंगा पहन, लखनऊ के बारीक काम की टोपी या कभी लट्टूदार पगड़ी बाँध जब बाहर निकलता था, तो मानों ब्रज का कन्हैया ही अपने को समझता था।"

द्विवेदी युग में उपन्यास साहित्य की वृद्धि हुई। हास्य रस के उपन्यासकारों में सर्वश्री जी० पी० श्रीवास्तव, निराला एवं उग्र ही मुख्य हैं।

"लतखोरी लाल" जी० पी० श्रीवास्तव का आत्मचरित्र शैली में लिखा उपन्यास है। यह उद्देश्यहीन है। कथा-वस्तु भी सुगठित नहीं है। केवल ऊँट-पटाँग पात्रों से अनर्गल कथोपकथन कराकर पृष्ठों को भरा गया है। जैण्टिलमैनी की धूम, गवने के मजे, सुसराल की बहार, शान की खातिर एवं लाहौल बिला कूवत नामक इसके पाँच अध्याय हैं। "पी० जी० वुडहाउस" जैसा "स्मित" हास्य कहीं देखने को नहीं मिलता। प्रारम्भ से अन्त तक अतिहसित हास्य की भरमार है। संयोगी एवं दैवी घटनाओं के बल पर कथावस्तु आगे बढ़ती है। चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक एवं असफल हुआ है। अश्लीलता तो प्रचुर मात्रा में मिलती है। पात्रों का वार्तालाप देखिये—

"ऐंठूमल—**कहो बेटा, फूल झड़ रहे हैं ?**

बाबा ने भी पिनपिना कर कहा—**और तुम कहो भतीजे, क्या अपनी अम्मा का दूध पी रहे हो ?**

गोदवाली—**अबे तू क्यों तरस रहा है ? तेरी भी अम्मा पास ही है। मार मुँह, देखता क्या है ? बुढ़ापे में फिर एक दफ़े जवानी आ जावेगी।**

मुन्नी—**क्या कहा तूने हरामजादी ?**

गोदवाली—**ऐ, बहुत न दीदा दिखाओ, नहीं आँख फोड़ ही दूँगी।**

मुन्नी—**चल-चल चुड़ैल, भला तू क्या बोलने को मरती है।**

गोदवाली—**अरी वाह-री अपने बाप की जोरू।**

मुन्नी—**चुप छिनाल।**

गोदवाली—**चुप हरजाई।**

मुन्नी—**दुर लुच्ची।**

गोदवाली—**दुर कुत्ती।**"[1]

उक्त अश्लीलता पर पं० बनारसी दास चतुर्वेदी की इस राय से हम सहमत हैं—"**हमारी समझ में यह हास्य रस उच्चकोटि का नहीं जिसकी आशा श्रीमान् श्रीवास्तव जी से की जाती है। इसे तो लट्ठमार मज़ाक कहना उचित होगा।**"[2]

"गंगाजमुनी" (१६२०) श्रीवास्तव का यह उपन्यास "लतखोरी लाल" से अच्छा है। इसमें सस्ते प्रेम का हास्यमय वर्णन किया गया है। नायक पहले एक बंगालिन नलिनी से प्रेम करता है फिर एक कहारी स्त्री चंचल से, फिर अपने एक ईसाइन विद्यार्थी जूलियट से और इसी प्रकार और भी अनेकों स्त्रियों से प्रेम करता है। "प्रेम" का हास्यमय वर्णन देखिए—

"**हत् तेरे प्रेम की। न जाने किस कम्बख़्त का शाप पड़ा है कि तेरा रास्ता कभी सीधा नहीं रहने पाता। कभी बेचैनी तड़पाती है, कभी रुलाई सताती है, कभी बेवफ़ाई रुलाती है, कभी डाह जलाती है, कभी बदनामी जान लेती है और फिर विरह और वियोग तो सत्यानास ही करके छोड़ते हैं।**"

इनके उपन्यासों में अतिनाटकीयता का दोष सर्वत्र पाया जाता है।

"निराला"

कुल्ली-भाट एवं बिल्लेसुर-बकरिहा इनके दो हास्य-रस प्रधान उपन्यास हैं। ये दोनों उपन्यास जीवन-चरित्र शैली में लिखे गये हैं। "कुल्ली भाट" में उन्होंने अपने मित्र पं० पथवारी दीन भट्ट का जीवन-चित्र उपस्थित किया है। इसमें लेखक ने एक बाह्य दर्शक के रूप में प्रचलित प्रशंसात्मक ढंग से ऊँचा उठ कर कुल्ली से अपना नाता जोड़ते हुए उन्हें स्वयं बोलने का अवसर दिया है। ससुराल के स्टेशन डलमऊ पर निराला जी का कुल्ली से प्रथम परिचय हुआ जब कुल्ली लखनऊ ठाट-बाट में बने-चुने उन्हें शेरअन्दाज़पुर पहुँचाने के लिए इक्के पर साथ-साथ बैठे। फिर सास की चेतावनी के विपरीत चलते हुए उन्होंने कुल्ली के घर पर पान खाया और एक बार तो गंगा में डूब जाने का भी उपदेश दिया। पश्चात्, निराला जी की साहित्यिक प्रगति के साथ कुल्ली के जीवन का सुधारवादी पहलू सामने आता है। कुल्ली ने एक मुसलमानिन को रख लिया, उसकी शुद्धि भी अच्छी कराई, हरिजन पाठशाला

१. लतखोरी लाल—पृष्ठ २०३.

२. विशालभारत—मई १६२६, हिन्दी में हास्य-रस।

स्थापित की और फिर मरण-काल तक कांग्रेस के कार्य में योग दिया। कुल्ली ससुराल का वर्णन करते हैं —

"सवेरे जब जगा तब घर में बड़ी चहल पहल थी, साले साहब रो रहे थे......ससुर जी खुड्डी में गिर गये थे, नौकर नहला रहा था। घर में तीन जोड़े बैल घुस आये थे। श्रीमती जी लाठी लेकर हाँकने गयी थीं, एक के ऐसी जमायी कि उसकी एक सींग टूट गई .....महरी पानी भरने गई थी, रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुएँ में चला गया था।"[1]

इसके अतिरिक्त **"धोती छप्पन छुरी हो रही थी"**, ऐसे मुहावरों का प्रयोग बराबर मिलता है। एक उपमा देखिये —

"कवि श्री सुमित्रानन्दन जी पन्त को रायबहादुर पं० शुकदेव बिहारी जी मिश्र ने जैसे मेरी सास जी ने मुझे भी सौ में एक सौ एक नम्बर दिये हैं।"

चरित्र-चित्रण प्रशंसनीय तटस्थता से हुआ है। लेखक ने कहीं भी अतिरंजना एवं अतिनाटकीयता का सहारा नहीं लिया। संयोगों एवं दैवी घटनाओं का सर्वथा अभाव है। एक सामान्य चरित्र का इस खूबी के साथ चित्रण करना निराला जी की विशेषता है। घटना-चक्र तथा चरित्र चित्रण के द्वारा ही इसमें हास्य का उद्रेक हुआ है। व्यंग्य भी मृदुल हैं, विषाक्त नहीं।

"बिल्लेसुर बकरिहा" भी चरित्र-प्रधान उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है। बिल्लेसुर इसका नायक है जिसमें किसी प्रकार की भी असाधारणता नहीं है। उसमें यही एक विशेषता है कि उसने जीवन को निर्विवाद रूप में एक संघर्ष मान लिया है। वह जीवन में पगपग पर ठोकर खाता है किन्तु उन विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत नही हारता। वह जीवन में एकाकी होकर भी व्यक्तिवादी नहीं है। गाँव वाले उसका उपहास करते हैं किन्तु इस पर भी वह सोचता है—

"क्यों एक दूसरे के लिये नहीं खड़ा होता। जवाब कभी कुछ नहीं मिला। फिर भी जान रहते काम करना पड़ता है, यह सच है।"

—(बिल्लेसुर बकरिहा)

निराला जी की लेखनी से चरित्र-चित्रण अत्यन्त संतुलित हुआ है। लेखक ने कहीं भी नायक के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की। लेखक

१. कुल्ली भाट—पृष्ठ ५२.

की नायक के प्रति तटस्थता ही चरित्र चित्रण को सुन्दर बनाती है। बिल्लेसुर के व्यक्तित्व का मूल्यांकन लेखक ने इस प्रकार किया है—

"हमारे सुकरात के ज़बान न थी, पर इसकी फिलासफी लचर न थी। सिर्फ कोई इसकी सुनता न था, इसे भूल-भुलैया से निकलने का रास्ता नहीं दिखा, इसलिये यह भटकता रहा।"

—(बिल्लेसुर बकरिहा)

डा० नगेन्द्र ने "बिल्लेसुर बकरिहा" में हास्य-विधान का विवेचन किया है—**"बिल्लेसुर बकरिहा में हास्य का निवास प्रायः परिस्थिति में नहीं है वरन् वर्णनों अथवा लेखक के अपने संकेत-स्पर्शों में ही है। अपने वर्णनों और उक्तियों को निराला जी ने प्रायः एक साधारण तथ्य को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक सामने उपस्थित कर साधारण और विशेष का अन्तर मिटाते हुए, हास्यमय बनाया है।"**[1]

कहीं-कहीं मामूली सी बात के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों का बड़ी सावधानी से वर्णन कर हास्य का संचार किया गया है मानो उनकी शुद्ध गणना के बिना बात अपना मर्म ही खो बैठेगी। एक उदाहरण लीजिये—

"सास को दिखाने के लिये बिल्लेसुर रोज़ अगरासन निकालते थे। भोजन करके उठते वक्त हाथ में ले लेते थे और रख कर हाथ-मुँह धोकर कुल्ले करके बकरी के बच्चे को खिला देते थे। अगरासन निकालने से लोटे से पानी लेकर तीन दफे थाली के बाहर से चुवाते हुए घुमाते थे अगरासन निकाल कर टुनिकियाँ देते हुए लोटा बजाते थे और आँखें बन्द कर लेते थे।"

—(बिल्लेसुर बकरिहा)

इसके अतिरिक्त किसी अत्यन्त प्रसिद्ध सामयिक प्रसंग से किसी छोटी मोटी घटना का सम्बन्ध बैठा कर वर्णन को हास्यमय बनाया गया है—

"बिल्लेसुर बिना टिकट कटाए कलकत्ते वाली गाड़ी पर बैठ गए। इलाहाबाद पहुँचते पहुँचते चेकर ने कान पकड़ कर उतार दिया। बिल्लेसुर हिन्दुस्तान की जलवायु के अनुसार सविनय कानून भंग कर रहे थे, कुछ बोले नहीं चुपचाप उतर आए, लेकिन सिद्धान्त नहीं छोड़ा।"

दृष्टिकोण की तटस्थता "कुल्ली भाट" तथा "बिल्लेसुर बकरिहा" दोनों को हिन्दी उपन्यास साहित्य में विशेष स्थान दिलाने की क्षमता रखती है।

---

१. विचार और विश्लेषण—पृष्ठ १६१.

द्विवेदी युग में ही एक भिन्न शैली के उन्नायक "उग्र" रहे हैं। "सामाजिक अनाचार" के विरुद्ध जिहाद बोलने वालों में ये अग्रगण्य हैं। "बुधुआ की बेटी," "दिल्ली का दलाल," "चन्द हसीनों के ख़तूत," "गंगाजमुनी" तथा "शराबी" इनके पाँच प्रमुख उपन्यास हैं जिनमें नगर के चक्लों, अनाथालयों, विधवाश्रमों और सेवा-सदनों की पोलें खोली गई हैं और समाज के उन कुम्भीपाकों को अनावृत किया गया है जो चोर-उचक्कों, पियक्कड़ों, सूदखोरों और पथ-भ्रष्ट नौकरपेशों के अड्डे हैं। इन्होंने सामाजिक विकृतियों का व्यंग्यात्मक वर्णन किया है। "चन्द हसीनों के ख़तूत" में एक वर्णन देखिए—**"चारों ओर डण्डाशाही, ईंटाशाही, छुराशाही, तलवारशाही, औरंगशाही और नादिरशाही का बोलबाला था। धूर्त नौकरशाही, अपवित्र नौकरशाही और इन सब ख़ुराफ़ातों की जड़ नौकरशाही इस समय घूँघट में मुँह छिपाए हैं।"**

"बुधुआ की बेटी" में लेखक ने गुलाबचन्द पात्र का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। वह अछूतोद्धार के बहाने बुधुआ भंगी की लड़की को फँसाने का उपक्रम करता है और एक दलाल को बहकाता है। दलाल उसे लड़की के घर लेजाते हुए रास्ते में कहता है—

"ज़रा जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाइए, शाम होने को आ रही है। देर हो जायगी तो वह मिलेगी भी अन्धेरे का ओढ़ना ओढ़े। वैसी हालत में, ऐं ऐं बाबू साहब! इधर मुड़िए, नाले की ओर नहीं, हमें नगवा नहीं जाना है, हम चल रहे हैं दुर्गाकुण्ड के आगे।"[1]

चरित्रों में अबदुल्ला, सन्तो, बुधुआ तथा गुलाबचन्द, हिन्दी उपन्यास के अमर चरित्र हैं। हिन्दी के प्रमुख आलोचकों ने उग्र का उस समय कटु विरोध किया और इन पर समाज को विकृत करने का दोष लगाया। उस समय 'उग्र' ने जो उत्तर उन आलोचकों को दिया उसे हम सर्वथा तर्कसंगत एवं उचित समझते हैं। उन्होंने लिखा—**"है कोई माई का लाल जो हमारे समाज को नीचे से ऊपर तक देख कर, कलेजे पर हाथ धर कर, सत्य के तेज से मस्तक तान कर इस पुस्तक के अकिंचन लेखक से यह कहने का दावा करे कि तुमने जो कुछ लिखा है ग़लत लिखा है। समाज में ऐसी घृणित, रोमांचकारी, काजलकाली तस्वीरें नहीं है। अगर कोई हो तो सोत्साह सामने आवे, मेरे कान उमेठे और छोटे मुंह पर थप्पड़ मारे, मेरे होश ठिकाने करे। मैं उसके**

१. मतवाला—फरवरी १९२८, पृष्ठ ८.

प्रहारों के चरणों के नीचे हृदय-पाँवड़े डालूँगा, मै उसके अभिशापों को सिर माथे पर धारण करूँगा, संभाल लूँगा। अपने पथ में कतर-ब्यौंत करूँगा। सच कहता हूँ, विश्वास मानिए—"सौगन्ध औ गवाह की हाजत नहीं मुझे।"[1]

इनका हास्य-विधान भी स्वाभाविक रूप में हुआ है। व्यंग्य तीखा है। उसमें निन्दा तथा घृणा के भाव भरे हुए हैं। आलम्बन के प्रति पाठक की घृणा एवं तिरस्कार उभारना, जो लेखक का ध्येय है, उसमें लेखक सफल हुआ है। भाषा परिष्कृत है। वास्तव में उग्र की भाषा में जो ओज और धारा-प्रवाहिकता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अतिशयोक्तियाँ कहीं कहीं अवश्य खटकती हैं किन्तु जिन कुत्सित सामाजिक अनाचारों का चित्रण "उग्र" ने किया है उसमें अतिरंजना स्वाभाविक रूप से आ गई है। स्वाभाविकता एवं अतिरंजना का विरोधाभास ही इनकी शैली की विशेषता रही है।

"सेठ बाँकेमल" अमृतलाल नागर का हास्य-रसपूर्ण उपन्यास है। इसमें सेठ बाँकेमल तथा चौबे जी दो प्रमुख पात्र हैं। दोनों पात्र प्राचीन संस्कृति के प्रेमी है जो कि समाज के वर्तमान ढाँचे से अप्रसन्न हैं। वे आधुनिक प्रत्येक बात को देख कर चौकते हैं। लेखक ने उन्हे विभिन्न परिस्थितियों में डालकर हास्य की अवतारणा की है। "कुल की मर्यादा" एवं "प्राचीन संस्कारों की कुण्ठा" इनको सदैव परेशान करती रहती है। यह उपन्यास जीवन चरित शैली में लिखा चरित्र-प्रधान लघु उपन्यास है। "डाग्डर मूँगाराम" अध्याय में सेठ बाँकेमल चौबे जी को लाट साहब की मेमसाहब को जुकाम होने का क़िस्सा सुनाते हैं और साथ में मूँगाराम का महत्व —

"भैया, मुँगाराम डाग्डर ऐसा गजब का था कि एक बार लाट-साब को छींके आने लगीं सुसरीं। वो जागे तो छींकें, और सोवें तो छींकें, छिन छिन में ऐसी छींकें सुसरी कि कै महीने में लाटनी साली खुसकैट हो गई। महाराज विलायत से और लंदन से और जर्मनी, अमरीका, अफ़रीका, चीन और सारी दुनिया तक के डाग्डर ही डाग्डर बुलवा लीने विन्ने...पौंचे साब मूँगाराम। जाते ही लाटनी की नाक पकड़ी। दो मिनट देखभाल के मूँगराम ने कही—जरा एक कैंची मँगा सको हो आप? लाटनी सुसरी खुसकैट हो गई भैयो। बिन्ने कही-कहीं नाक तो नहीं काटेगो यह मेरी? और लाट साहब भी भैयो, यें ही सोचे कि जो नाक कट गई तो ये नकटी मेम साली को लिए कहाँ कहाँ घूमूँगो

1. हिन्दी-उपन्यास—शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ २१४.

...मूँगाराम ने क्या कीना भैयो, कि नाक में कैंची डाल के एक बाल खैंच लीना और सब को दिखा के कही—ये लो साब, ये छींक निकल आई। बात ऐसी थी कि जब ये साँस लेवे थीं तो बाल भी ऊपर को चढ़े था इसी से ये छींकें आये थीं सुसरी।"[1]

इस उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक स्वाभाविक चित्रण हुआ है। भाषा सरल है। सेठ बाँकेमल तथा चौबेजी जैसे चरित्र समाज में नित्य प्रति देखने को मिलते हैं एवं उनकी बातचीत के विषय एवं भाषा भी ऐसी ही होती हैं जैसी इस उपन्यास में हैं। हास्य कहीं भी अपहसित नहीं हुआ है। हाँ, कहीं कहीं घटनाओ को तोड़ने मरोड़ने से अतिशयोक्ति हो गई है जो कि हास्य की उद्भावना के लिए उचित प्रतीत होती है तथा लाट साहब की मेम के जुकाम के लिएं सारे देशों के डाक्टरों का एकत्रित करना किन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को जब तक थोड़ा रंग देकर न दिखाया जायेगा तब तक उत्फुल्ल हास्य की अवतारणा नहीं हो सकती।

"काठ का उल्लू और कबूतर" केशवचन्द्र वर्मा का आधुनिकतम हास्य-रस का उपन्यास है। शिवचरन नामक एक व्यक्ति के ड्राइंग रूम में एक काठ का उल्लू रक्खा हुआ है। रात के समय एक कबूतर रोशनदान से उसमें प्रवेश करता है। लेखक ने कबूतर और काठ के उल्लू के वार्तालाप के माध्यम से कथा-वस्तु का विस्तार किया है। यद्यपि ये शैली "किस्सा तोता मैना" के रूप में हमारे यहाँ बहुत वर्षों से विद्यमान है। अन्तर केवल यह कि जबकि किस्सा तोता मैना में सस्ते प्रेम की कथाओं का वर्णन है, "काठ के उल्लू और कबूतर" में आधुनिक समस्याओं का चित्रण है, किसी एक चरित्र का चित्रण नही। कहीं शायरों और शायरी का मज़ाक है तो कहीं खाट, पीढ़ा आदि की कान्फ्रेन्स कराके आज कल अधिकारों के माँग की जो बाढ़ें आई हैं, उनका खाका खींचा गया है। खाट, टेबिल, पीढ़ा आदि मिल कर अपने ऊपर मालिक द्वारा जो दुर्दशा होती है उसके विरुद्ध संगठित होते हैं। टेबुल पीढ़े से कहती है —

"मेरे दोस्त पीढ़े! तुझे यह जान कर खुशी होगी कि टेबुल ने भी जड़वादी होना स्वीकार कर लिया है। मैंने यह तय कर लिया है कि अब मैं लकड़ी जाति की तरक्की के लिये अपना जीवन दे डालूँगा। मुझे अब दुनियाँ

---

१. सेठ बाँकेमल—पृष्ठ ५८-५९.

में किस चीज़ से मुहब्बत नहीं है और अब से मैं अपने को लकड़ी जाति का एक सेवक ही मानूंगा। और ए साथी पीढ़े, अपने जड़वादी होने की खुशी में मैंने एक रेशमी टेबुल-क्लाथ फाड़ दिया है और मालिक की उँगली से वह खून निकाल लिया है जो उसने लकड़ी जाति के लोगों से चूसा था।"[1]

इसके अतिरिक्त "आदर्श गुरु और बद्‌ज़ात चेले", "कपूत बेटे की दास्तान" आदि अध्यायों में मनोरंजक कथाओं द्वारा हास्य का उद्रेक हुआ है। कथा का विकास स्वाभाविक रूप से नहीं हुआ है। हास्य भौंड़ा है, उसमें स्थूलता है कोमलता नहीं। सर्वत्र संयोगों तथा दैवी घटनाओं का सहारा लिया गया है। चरित्र-चित्रण भी स्वाभाविक नहीं हो पाया। कथोपकथन अवश्य रमणीयता लिए हुए हैं।

"चाँदी का जूता" विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त का हास्यरसात्मक लघु उपन्यास है। इसमें घूँसखोरों, रामराज्य की व्यर्थ दुहाई देने वालों, पाकिट-मारों आदि असमाजिक व्यक्तियों पर व्यंग्य बाण चलाये गये है। वर्तमान समाज में हो रही बेईमानियों का वर्णन नारद जी स्वर्ग में विष्णु भगवान से करते है जो अपराधियों को उचित दण्ड की व्यवस्था करते है। चोर-बाज़ार सम्मेलन, स्वर्ग की गुफ्तगू, टिकट खरीदने का दृश्य, परमिट पंथियों का जीवन तथा नारद जी की व्यस्तता सब कुछ इस उपन्यास में प्राप्त किया जा सकता है। चोर-बाज़ार सम्मेलन में सब अपना वक्तव्य देते है। यूनियन बोर्ड के प्रेसी-डेण्ट प्रसन्नता से कहते हैं—

"महातपस्वी जी! मैं सड़कों की मरम्मत, नालियों और कूड़ों की सफ़ाई से अपनी तिजोरी भरने का विशेष ध्यान रखता हूँ। टैक्स बढ़ानें में मेरा सामना कोई प्रेसीडेण्ट नहीं कर सकेगा।"[2]

इसमें अतिनाटकीयता एवं अतिरंजता अत्यधिक है। हास्य "मुँहफट" है। अस्वाभाविक वर्णनों द्वारा अपहसित हास्य का उद्रेक किया गया है। अश्लीलता भी यत्र-तत्र दिखलाई पड़ती है। हास्य का विधान भी निम्नकोटि का है।

"मिस्टर तिवारी का टेलीफोन" सरयूपण्डा गौड़ का लिखा हुआ हास्य-रस का उपन्यास है। बीस टेलीफोन वार्ताओं द्वारा इस उपन्यास की कथा-वस्तु का निर्माण हुआ है। मस्ते प्रेम, मेहमानों की परेशानी, धर्म-गुरुओं

---

१. काठ के उल्लू और कबूतर—पृष्ठ ४५.

२. चाँदी का जूता—पृष्ठ ६९.

गुरुओं की पोल, चन्दा बटोर कर हज़म कर जाने वालों की समस्या, सिनेमा-संसार की विशेषताएँ आदि का खाका खींचा गया है। इसके प्रमुख पात्र तिवारी जी तथा उनकी धर्मपत्नी हैं। पारिवारिक वार्तालापों के माध्यम से समस्याओं का विवेचन किया गया है। घटनाएँ कम हैं। कथोपकथन अधिक हैं। मेहमानों के बारे में एक स्थान पर तिवारी जी कहते हैं—

"उस दिन हमारे घर घोर दुर्भाग्य से कुछ मेहमान सज्जन आ गये थे। ये मेहमान सज्जन क्या बला हैं और इनके शुभागमन से कैसी दुर्गति घर-वालों को उठानी पड़ती है, इसकी हालत उस गरीब से पूछो जिसका घर महीने में पन्द्रह बार इन भलेमानसों के क़दम-मुबारक से आबाद नहीं बर्बाद होता है। मेहमान क्या आये ग़रीब की शामत आयी। दोनों जून पराठों का कचूमर निकल जाता है और मेहमान भी ऐसे ब्रह्मपिशाच होते हैं, जहाँ पहुँचे कि फिर उसका पिण्ड काहे को छोड़ेंगे, जब तक उसे भली तरह तबाह न कर दें।"[1]

इनके वर्णनों में कलात्मक हास्य का निवास नहीं है। इनका हास्य जी० पी० श्रीवास्तव के हास्य की तरह 'मुंहफट' है। प्रारम्भ से अन्त तक अतिनाटकीयता व्याप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि आप जी० पी० श्रीवास्तव से अधिक प्रभावित हैं। उनकी छाप इन पर सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। लम्बे लम्बे कथोपकथन नीरस हो गए हैं। अतिहसित एवं अपहसित हास्य ही सर्वत्र मिलता है। कहीं-कहीं तो कुरुचि-पूर्ण हास्य के भी दर्शन होते हैं। अस्वाभाविक वर्णन एवं अस्वाभाविक परिस्थितियों की भरमार है। यथार्थ चित्रण का सर्वत्र अभाव है। स्वाभाविक चित्रण तो नाम लेने को नहीं मिलता।

"नवाब लटकन" अरुण का हास्य-रस का उपन्यास है। यह चरित्र-प्रधान है। नवाब लटकन की मूर्खताओं का हास्य-मय वर्णन है। उसके मित्र उसकी मूर्खता का लाभ उठाते हैं तथा अपना घर भरते हैं। लोग उनको छोटी क़ीमत की चीज़ें उल्लू बनाकर अधिक दामों में दे जाते हैं और वे उनकी चालाकियों को समझ भी नहीं पाते। एक वर्णन देखिए—

"नवाब साहब पं० राधेश्याम को एक कमरे में ले गए, जो फर्निचर से खूब सजा हुआ था। नवाब साहब ने एक कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए कहा—"देखिये दोस्त! यह कुर्सी मैंने अभी-अभी मँगवाई है। खूबी इसकी यह

---

१. मिस्टर तिवारी का टेलीफोन—पृष्ठ ६.

है कि इस पर बैठे-बैठे ही चारों तरफ घूम जाइए, आपको क़तई उठाना न पड़ेगा।"[1]

साधारण वस्तु को असाधारण महत्व की बताकर हास्य उद्रेक किया गया है। हास्य-विधान सुन्दर हुआ है। कथानक सुगठित है। कथोपकथन सजीव हैं। नवाब लटकन का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक हुआ है। वह मनोवैज्ञानिक भी है और यथार्थ भी।

"गुनाह बेलज़्जत" द्वारका प्रसाद एम० ए० का हास्य-रस का उपन्यास है। पी० जी० वुडहाउस का अधिक प्रचलन एवं ख्याति का प्रभाव लेखक पर पड़ा है जो कि मुखपृष्ठ के, "जिसे पी० जी० वुडहाउस ने नहीं लिखा", वाक्य से स्पष्ट है। इसका नायक वर्मन है जो, जहाँ तक खाने, कपड़े और खर्चे का सम्बन्ध है, वह अपने परिचितों की हर चीज़ को अपनी समझता है और सदा एक न एक नयी स्कीम लेकर अपने मित्रों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देता है। ऐसी ही एक स्कीम बी० बी० सी० अर्थात् "बैटर-ब्रीडिंग कालोनी" है। वर्मन का उद्देश्य है कि "बी० बी० पी०" के द्वारा इन्सान की नसल को बेहतर बनाया जाय। नीला उनकी प्रेमिका है। प्रेम का चित्रण देखिये—

"शेखर ने कहा—आपने मेरा मतलब समझा नहीं। यह आज की बात है। आप तो अपने आदमी हैं, आप से क्या छिपाऊँ ? इसके पहले कम से कम पंद्रह मर्तबा प्रेम कर चुका हूँ। लेकिन हर बार पाया, वह मेरी भूल थी। लेकिन इस बेर मेरे अन्दर जो हो गया है वह असली चीज़ है। मैंने कहा—तो आप नीला से प्रेम करने लगे हैं, इतनी ही देर में ?"

"प्रेम करने नहीं लगा हूँ, हो गया है। नीला पर मेरी दृष्टि पड़ी और मैं चारों खाने चित्त हो गया, मानो किसी ने पीछे से जुजुत्सका का दाँव मारा हो।"[2]

इसमें "स्मित हास्य" का प्रस्फुटन सुन्दर हुआ है। कथोपकथन सजीव हैं कथानक में प्रवाह है। प्रारम्भ से अन्त तक उपन्यास रोचक है। वर्मन का चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। घटना-वैचित्र्य एवं चरित्र-चित्रण दोनों ही दृष्टियों से यह उपन्यास सुन्दर है।

---

१. नवाब लटकन—अरुण, पृष्ठ ५४.

२. गुनाह बेलज़्जत—पृष्ठ ९६-९७.

"बेढब बनारसी" की "मिस्टर पिगसन की डायरी" को भी हास्य-रस के उपन्यास की श्रेणी में लिया जा सकता है। मिस्टर पिगसन एक मिलिटरी के ऑफीसर हैं वे हिन्दुस्तान के विभिन्न उत्सवों में जाते हैं, कवि सम्मेलन देखते हैं, ब्याह शादियाँ देखते है तथा उनका हास्य-मय वर्णन करते है। एक दिन वे जंगल में घोड़े पर जा रहे थे। एक व्यक्ति पालकी में अपनी स्त्री को बिदा करा के ले जा रहा था। जैसा कि गाँवों में आम रिवाज़ है, लड़कियाँ ससुराल जाते समय रोती जाती हैं। मिस्टर पिगसन ये समझते हैं कि कुछ व्यक्ति एक लड़की को ज़बरदस्ती कहीं ले जा रहें है इसलिए वह रो रही है। वे उस लड़की के पति को धमकाते हैं और अन्त में उन्हें जब पता लगता है कि वह लड़की तो अपने पति के साथ ससुराल जा रही है तो स्वयं लज्जित हो कर वहाँ से चले जाते हैं। इसके वर्णन रोचक है। सामाजिक एवं साहित्यिक विद्रुपताओं पर मृदुल व्यंग्य किया गया है। लेखक ने जो माध्यम चुना है वह श्लाध्य नहीं है। एक विदेशी द्वारा अपना मज़ाक बनवाना हमारी समझ में नहीं आता चाहे वह काल्पनिक ही क्यों न हो। हम इसे असंस्कृत समझते हैं साथ में अब यह कथानक असामयिक भी हो गया है।

उपसंहार

हास्य-रस के उपन्यास साहित्य के विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमारे यहाँ इनका नितान्त अभाव है। "डिकिन्स" के "पिकविक पेपर्स", "स्विफ्ट" के "गुलीवर ट्रविल्स" जैसे हास्य-रस के वृहत उपन्यास बड़ी दूर की वस्तु दिखाई देते है। "कुल्ली भाट" एवं "बिल्लेसुर बकरिहा" को छोड़ कर अन्य उपन्यास सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। पी० जी० वुड हाउस सा प्रतिभाशाली हास्य उपन्यास लेखक हिन्दी में कब होगा, इसकी अभी कोई आशा नहीं दिखलाई पड़ती। हास्य-रस के उपन्यासों का जैसा प्रचलन विदेशी साहित्य में मिलता है अपने यहाँ नहीं। किन्तु पिछले बीस वर्षों में जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं यद्यपि उनमें अभी कलात्मक प्रौढ़ता नहीं आयी किन्तु वे इस अभाव की पूर्ति अवश्य करते है। यदि यह प्रगति मन्द न हुई तो भविष्य में हम उच्चकोटि के हास्य-रस के सृजन की आशा कर सकते है।

●

: ६ :

निबन्ध साहित्य में हास्य

निबन्ध गद्य की वह छोटी रचना है जिसके बन्धान में कसाव हो। निबन्ध का साहित्यिक रूप भारतेन्दु काल में स्थिर हुआ। इनका प्रचार साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुआ। भारतेन्दु काल से पूर्व की गद्य रचनाओं को निबन्ध की कोटि में नहीं रखा जा सकता। ये रचनाएँ धार्मिक कथा-वार्ताओं, काव्य-शास्त्रों, वार्ताओं के रूप में मिलती है जिनका कोई व्यवस्थित रूप नहीं मिलता। भारतवर्ष में हिन्दी-भाषियों की नई शिक्षा तथा अंग्रेज़ी साहित्य से सम्पर्क निबन्ध रचना के सूत्रपात्र करने के दो प्रमख कारण थे।

निबन्ध-साहित्य की अधिक समृद्धि के मूल में एक प्रधान कारण और भी है वह है भारतेन्दु काल के लेखकों की अपने पाठकों से निस्संकोच भाव से बातचीत करने की प्रवृत्ति। **"ले भला बतलाइए तो आप क्या हैं ?"** शीर्षक बातचीत निबन्ध को छोड़कर साहित्य के और किसी अंग में सम्भव नहीं थी। तत्कालीन लेखकों को सन्तोष केवल तटस्थता से अपने पाठक से बातचीत करने में ही नहीं होता था वरन् वे उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध भी स्थापित करना चाहते थे। वे उससे मित्र की भाँति घुल मिल कर अपनी बात समझाना चाहते थे। इसीलिए भारतेन्दु युग में निबन्धों का सृजन सबसे अधिक हुआ।

निबन्धों का वर्गीकरण

प्रधानतः निबन्ध का वर्गीकरण चार भागों में किया जाता है—(१) विचारात्मक, (२) भावात्मक, (३) विवरणात्मक और (४) आत्म-व्यंजक। प्रस्तुत विवेचन में हमारा सम्बन्ध उन्हीं निबन्धों से है जो हास्य-रस पूर्ण है, अतएव हमने हास्य-रस के निवन्धों का वर्गीकरण उपरोक्त लक्ष्य को सम्मुख रख कर इस प्रकार किया है —

(१) **हास्य-प्रधान निबन्ध अर्थात् वे निबन्ध जिनका उद्देश्य एक मात्र पाठकों का मनोरंजन करना हो।**

(२) **व्यंग्य-प्रधान निबन्ध अर्थात् वे निबन्ध जिनका उद्देश्य व्यक्तिगत सामाजिक एवं राजनैतिक विद्रूपताओं पर व्यंग्य करके उनकी भर्त्सना एवं उनका सुधार करना हो।**

हास्य-विधान की दृष्टि से श्लेष एवं वक्रता का प्राचुर्य्य इन लेखों में मिलता है। शुद्ध हास्य का सृजन, आलोचना तथा आक्षेप के अतिरिक्तव्यंग्य के दोनों भेद मिलते हैं—मृदुल व्यंग्य एवं तीखा व्यंग्य।

सृष्टि-क्षेत्र की दृष्टि से व्यक्ति, समाज, राजनीति सभी व्यंग्य के विषय बनाये गए हैं। साधारण से साधारण वस्तु के अतिरंजित चित्रण द्वारा भी अनेक गूढ़ समस्याओं पर लुक-छिप कर व्यंग्य किया गया है। संघवद्ध धर्म, उच्च वर्गों के स्वार्थ, शोषक अधिकारियों द्वारा शोषण, नेताओं की पोल, साहित्यिक डिक्टेटरशाही आदि सभी पर चोट की गई है।

मानसिक अवस्थान की दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन लेखकों के मन में एक घुटन थी और वह चाहती थी निकलना। ब्रिटिश शासन में खुशामदियों का बोलबाला था, धार्मिक ठेकेदारों की तूती बोलती थी, प्रेस एक्ट का भूत हरदम सिर पर सवार रहता था, हास्य एवं व्यंग्य के सहारे उन लोगों ने अपने मन का असन्तोष प्रकट किया। द्विवेदी युग में साहित्यिक भाषा एवं व्याकरण को लेकर हास्य एवं व्यंग्यमय लेख लिखे गए। "अनिस्थिरता" शब्द को लेकर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं बालमुकुन्द गुप्त में जो वाद-विवाद हुआ था उसमें हास्य एवं व्यंग्यमय शैली ही अपनाई गई थी। आधुनिक युग में भी राजनैतिक एवं सामाजिक असंगतियों को विषय बना कर अनेक हास्य एवं व्यंग्यमय लेखों का सृजन हो रहा है।

शैली की दृष्टि से हास्य-रसात्मक निबन्ध भावात्मक भी हो सकते हैं तथा विचारात्मक भी हो सकते हैं। इनमें शब्दों का चुनाव तथा अर्थ अलग-अलग विशेषताएँ रखते हैं। शब्द का बाहरी आकार और होता है किन्तु अभिधा से जो अर्थ निकलता है वह वास्तविक अर्थ नहीं होता। ऊपर से बड़ा मीठा लगता है पर खाने में तीखा स्वाद देता है। व्याज-स्तुति एवं व्याज-निन्दा इस शैली के प्रधान अंग होते हैं। शब्द की व्यन्जना ही अभिव्यंजना की आत्मा बन कर आती है।

व्यंग्य-शैली के तीन रूप हो सकते हैं—परिहासपूर्ण, तीखा एवं श्लेषात्मक। परिहास-पूर्ण शैली में शब्द कम मूल्य के प्रयोग किए जाते हैं। इस शैली में छेड़-छाड़ अधिक मिलती है, गम्भीरता कम। श्लेषात्मक अर्थ इसमें नहीं रहता। इससे केवल मनोरंजन किया जा सकता है अन्य किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती।

तीखा रूप वह होता है जिसमें कठोर, चुभीले तथा तीखे शब्दों का प्रयोग होता है, अन्य के विश्वासों, आस्थाओं, विचारों पर चोट पहुँचाना, तानों तथा उपालम्भ की बौछार करना होता है।

श्लेषात्मक शैली में भाषा की लक्षणाशक्ति प्रधान होती है। सीधे सादे शब्दों में व्यापक अर्थ भर देना, परम्पराओं, विचारों और आस्थाओं को ठोकर मारना, पर गुदगुदा कर, मीठी चुटकियाँ लेकर, नोच खसोट कर नहीं। **"यह शैली ही यथार्थ रूप में "व्यंग्यशैली" कहलाने का अधिकार रखती है। इसी में लेखक के मानसिक सन्तुलन का पता चलता हैं। इसमें प्रौढ़ता की गम्भीरता भी रहती है और जवानी की मस्ती और छेड़छाड़ भी। इसका प्रभाव भी अमिट होता है। बड़ी से बड़ी बात कह दी जाय, विरोधी भी मुस्करा कर बधाई दे। समाज, साहित्य, नैतिकता, शासन—किसी पर भी व्यंग्य शैली में आक्रमण किया जा सकता है। बड़े तर्कों, दार्शनिक बहसों और प्रमाणों से यह काम नहीं निकलता जो इस शैली की रचनाओं से निकलता है।"**[1]

सच तो यह है कि भारतेन्दु काल में जिस व्यंग्य-शैली ने जन्म लिया, वह द्विवेदी युग में पल्लवित हुई तथा आधुनिक युग में पुष्पित होकर मनोरंजन ही नहीं कर रही है वरन् समाज-सुधार की दिशा में इसका योग कम महत्व-पूर्ण नहीं रहा।

भारतेन्दु-युग के प्रमुख निबन्धकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व में निबन्धकार के सच्चे गुण विद्यमान थे। उनके व्यंग्य शैली में लिखे गये निबन्धों में "आप ही तो हैं", "कंकड़-स्तोत्र", "पाँचवें पैगम्बर", "स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन", "जाति-विवेकिनी सभा" आदि मुख्य हैं। इन लेखों में राजनीति, व्यक्ति एवं समाज सभी व्यंग्य के विषय बनाये गये हैं। हास्य-प्रधान लेखों में जिनका उद्देश्य केवल

---

१. निबन्ध और निबन्धकार—जयनाथ नलिन, पृष्ठ ३५.

मनोरंजन करना है, "आप ही तो हैं" महत्वपूर्ण है। लेख के शीर्षक के नीचे एक गधे की तस्वीर है और फिर लेख आरम्भ होता है—

"आप ही तो हैं क्या इसमें कुछ सन्देह है ? सावन के अन्धों को हरियाली छोड़ कर और कुछ थोड़े ही सुझाई पड़ता है। अजी बहुत ही दुबले हो गए हैं, सावन है न ?......... पर सहनशील बड़े हैं आप ही न हैं बिना आप के इतनी कौन सहै ? और फिर आपके कोई दूसरा हो तो, कुछ कहा जाय—यहाँ तो साक्षात आप ही हैं।"[1]

इसमें व्याज स्तुति के माध्यम से शुद्ध हास्य की सर्जना की गई है। "लेवी प्राण लेवी" में राजनैतिक व्यंग्य है। इसमें रईसों की जो लार्ड मेयो के दरबार में आये थे, आलम्बन बनाया गया है। रईसों की भीरुता एवं अव्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं—

"लार्ड साहिब को "लेवी" समझ कर कपड़े भी सब लोग अच्छे पहिन आए थे पर वे सब उस गरमी में बड़े दुःखदाई हो गए। जामे वाले गरमी के मारे जामे के बाहर हुए जाते थे, पगड़ी वालों की पगड़ी सिर की बोझ सी हो रही थी और दुशाले और कमख़ाब की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भाँति जीन रखा था......सब लोग उस बंदीगृह से छूट-छूट कर अपने घर आए। रईसों के नम्बर की यह दशा थी कि आगे के पीछे, पीछे के आगे, अन्धेर नगरी हो रही थी। बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा। ये बिचारे तो मोम की नाव हैं चाहे जिधर फेर दो। राम—पश्चिमोतर देश वासी कब्र कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी।"[2]

"स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन" एक कल्पनात्मक लेख है। इसमें भी हास्य प्रधान है और व्यंग्य प्रच्छन्न, सूक्ष्म तथा हलका है। इसमें तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है। इस लेख से भारतेन्दु की उदार भावना लक्षित होती है। "जाति विवेकिनी सभा" एक सामाजिक व्यंग्य है। इसमें काशी के पण्डितों पर कटु व्यंग्य किया गया है। "पांचवें पैगम्बर" में उस समय की स्थिति पर व्यंग्य है। अँगरेजियत के बढ़ते हुए रंग और कट्टरपन, अंधविश्वास तथा कुरीतियों पर छीटें कसे गए हैं। शैली की दृष्टि से इनमें आलंकारिक शैली और प्रवाह शैली के दर्शन होते हैं। इनके निबंधों की भाषा

---

१. हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका—सन् १८१४, खण्ड १, संख्या ६, पृष्ठ ३४.

२. कवि-वचन-सुधा—खंड २, नम्बर ५, कार्तिक शुक्ल १५, संवत् १६२७.

में कहीं शब्द क्रीड़ा या चमत्कार की प्रवृत्ति दिखाई देती है तो कहीं मुहावरों की बंदिश तथा चलती भाषा की छटा दृष्टिगोचर होती है। अँग्रेजी के तथा उर्दू के शब्दों का भी इन्होंने यथास्थान प्रयोग किया है।

बालकृष्ण भट्ट ने भी असाधारण तथा विचित्र विषयों पर मनोरंजक लेख लिखे। "पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर हैं", "ईश्वर क्या ही ठठोला है", "नाक निगोड़ी भी बुरी बला है", "भकुआ कौन है" तथा 'खटका" आदि इनके शीर्षक हैं। "खटका" शीर्षक लेख का एक अंश देखिए —

"स्कूल में मास्टर साहब साक्षात् यमराज के अवतार, घर में माँ बाप की घुड़की और झिड़की का खटका। बरसवें दिन परीक्षा और दरजा चढ़ाये जाने का खटका। कुछ याद नहीं है, बिना इम्तिहान दिये बनता नहीं। फेल हुए तो अपने साथियों में आँख नीची होती है, साल भर तक किताब के साथ लिपटे रहे, हिस्टरी याद है तो मैथेमैटिक्स का खटका है। खैर, किसी तरह इम्तिहान दे देवाय फारिग हुए अब तो एक नम्बर कम रहने का खटका रहा।"[1]

व्यंग्य-प्रधान लेखों में सामयिक कुरीतियों पर व्यंग्य किये गये हैं यथा "पुरातन तथा आधुनिक सभ्यता", "अकिल अजीरन" "दिल बहलाव के जुदे-जुदे तरीके" शीर्षक लेख का एक उदाहरण देखिए —

"कोई कोई ऐसे मनहूस भी हैं कि फुरसत के वक्त किसी अन्धेरी कोठरी में हाथ पर हाथ रक्खे पहरों तक चुपचाप बैठे रहने से दिल बहलाव हो जाता है। बाज बाज नौसिखिये नई रोशनी वाले जिनका किया धरा आज तक कुछ नहीं हुआ, मुल्क की तरक्की के खब्त में आय आज इस सभा में जाय हड़ाकू मचाया कल उस क्लब में जा टाँय टाँय कर आये। दिल बहलाव हो जाय। इन्हीं में कोई कोई धाऊधप्प गुरूघंटाल किसी क्लब या समाज के सेक्रेटरी या खजानची बन बैठे और सैकड़ों रुपया वसूल कर डकारने लगे। भाँड़ों की नकल, सवारी की सवारी जनाना साथ, आमदनी की आमदनी, दिल बहलाव मुफ्त में।"[2]

भट्ट जी का व्यंग्य और हास्य शिष्ट तथा संयत है। इनकी शैली संस्कृत-निष्ठ रही है किन्तु हास्य-प्रधान निबन्धों में "धाऊधप्प", "गुरुघंटाल", "नौसिखिए" ऐसे शब्दों के प्रयोग से हास्य की सृष्टि की गई है। इन्होंने "हिन्दी

---

१. भट्ट निबन्धावली—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृष्ठ १४३.

२. भट्ट निबन्धावली—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृष्ठ १७.

प्रदीप" के माध्यम से निबन्ध-साहित्य की समृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया। वे चुने-चुने शब्दों का प्रयोग करते हैं व्यर्थ का तूल नहीं बाँधते। इनकी भाषा प्रसंग के अनुसार चलती है। शैली की प्रभावात्मकता स्पष्ट है। वर्णन तथा विवरण प्रधान निबन्धों में चित्रांकन बहुत बड़ी सफलता है। देश की दशा देख आप तिलमिला उठते हैं। अवसर तलाश करके भी विदेशी शासन पर चोट करते है, समाज द्रोहियों और राष्ट्रीय-विरोधियों पर व्यंग्य बाणों की बौछार करते रहते हैं।

भट्ट जी ने हास्य-सृजन के हेतु निबन्धों की एक नई शैली को जन्म दिया था वह था दवाइयों के नुस्खों के रूप में व्यंग्य करना। "विज्ञापनों का किबलेगाँह महाविज्ञापन" शीर्षक से "सभ्यता बट्टी" का नुस्खा देखिए—

"कोई कैसा भी असभ्य हो नीचे लिखे अनुसार एक महीना लगातार इसके सेवन से सभ्य हो जायगा, अंगरेजी कपड़ा पहिने, हैट और चश्मा लगावे। इंगलिश क्वाटर में रहे। जहाँ तक बने अँगरेजी शब्दों का व्यवहार करे। घर वाली को साथ ले साँझ को बाहर हवा खाने जाय। खूब शराब पिये। अपने को हिन्दू कहते शरमाय। मूल्य एक डिब्बी एक बाइबिल।"[1]

स्थान संकोच के कारण अधिक उदाहरण देने में असमर्थ हैं किन्तु "मैम्बरी प्राश" का नुस्खा संक्षेप में दे देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते—

"मेम्बरी-प्राश—यह एक आसव शरबत है। इसको एक "टैम" लेट रोज पी लेने से कौंसिल की मेम्बरी अथवा म्यूनिस्पल मेम्बरी आसानी से मिल सकती है...तीनों हिकमतों के गुण है और वे जुज में है...कलक्टर साहब की हाँ में हाँ का सत्त तीन पाव, लोगों में प्रतिष्ठा और आबरू का आबर पानी, अक्यू अधूरा जगह-दो सेर—हैड टैक्स और चुंगी का स्वास्थ्य ५ छटाँक, मेम्बरों की आपस की "पारटीफीलिंग" का गूदा सवा सेर, इलेक्शन के समय वोट देने वालों की खुशामद और पैगाम का बुरादा ६ माशे,एक करावे का दान,—वोट न आने से मेम्वरों के नाकामयाब होने वाले घर उदासी।"[2]

प्रताप नारायण मिश्र की रग रग में विनोद भरा हुआ था। ये मूल रूप से हास्य-प्रधान लेख लिखने के लिए प्रसिद्ध थे। ये "ब्राह्मण" पत्र के

---

१. हिन्दी प्रदीप—जिल्द २८, संख्या ४, अप्रैल १९०६, पृष्ठ २३.

२. हिन्दी प्रदीप—जिल्द २८, संख्या ४, अप्रैल १९०६, पृष्ठ २३.

सम्पादक थे जो हास्य-रस प्रधान था। ये फक्कड़ तथा मौजी जीव थे। इनके पत्रों में साधारण सूचनायें भी हास्य-मय निकलती थीं जिससे इनकी हास्य-प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। ग्राहकों को बारम्बार चेतावनी देने पर भी वे जब चन्दा नहीं भेजते थे तो आप लिखते हैं—

"बस बाँएँ हाथ से दक्षिणा रख दीजिए या ऋषि और पित्रों को जलदान करने के लिए महीना भर तक यों ही सब बैठे रहिए।"[1]

इनके हास्य-रस पूर्ण निबन्धों में "घूरे के लत्ता बिने, कनातन के डौल बाँधै," "भौ", "तिल","होली," "आप", तथा "और" है। इनमें सामयिक विषयों पर कटाक्ष किए गए है। इनके निबन्धों में श्लेष तथा कहावतों का प्रयोग अत्यधिक मिलता है तथा उन्ही से हास्य का सृजन किया गया है। श्लिष्ट भाषा का एक उदाहरण देखिये—"जब जड़ वृन्त आम बौराते है तब आम खास सभी के बौराने की क्या बात है।" "भौंह" शीर्षक लेख मे मनो-रंजन के साथ शिक्षा भी मिलती है—

"यद्यपि हमारा धन, बल, भाषा इत्यादि सभी निर्जीव हो रहे हैं तो यदि हम पराई भौहैं ताकने की लत छोड़ दे, आपस में बात बात पर भौहैं चढ़ाना छोड़ दें, दृढ़ता से कटिबद्ध होके वीरता से भौहें तान के देश-हित में सन्नद्ध हो जायँ, अपने देश की बनी वस्तुओं का, अपने धर्म का, अपनी भाषा का, अपने पूर्व पुरुषों का रुजगार और व्यवहार का आदर करें तो परमेश्वर हमारे उद्योग का फल दे।"

विदेशी शिक्षा तथा विलायत-यात्रा के बारे में प्रतापनारायण मिश्र उदार नहीं थे। "पढ़े लिखों के लक्षण" शीर्षक व्यंग्य-प्रधान लेख में उन्होंने फ़ैशन-परस्तों की व्याज-स्तुति की है —

"कपड़े ऐसे कि रामलीला के दिनों में सिर्फ काले चेहरे ही की कसर रह जाय, इस पर भी उनमें कोई देशी सूत न हो यदि हिन्दुस्तानी के हाथों से लिये भी न गये हों तो और अच्छा।......भाषा ऐसी कि संस्कृत का शब्द तो कान और जबान से छू न जाना चाहिए। हिन्दी से इतनी लाचारी है कि आया गया इत्यादि शब्द नहीं बच सकते तथापि खास खास बातें अँग्रेजी अथवा टूटी-फूटी अरबी की ही हों। हाँ कोई दाम पूंछ बैठे तो झकमार के राम रहीम आदि के

---

१. ब्राह्मण—कानपुर, १५ नवम्बर १८८३, पृष्ठ १२.

साथ दत्त, प्रसाद, गुलाम आदि जोड के मुँह पर लाना पड़ता है पर इसमें अपना वश क्या है ? वह पिता की बेवकूफ़ी है।"[1]

प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों में विषय की प्रधानता के स्थान पर व्यक्तित्व की प्रधानता है। उन्होंने साधारण से साधारण विषय को अत्यन्त रोचक शैली से लिखा है। इनके व्यंग्य वैयक्तिक तथा तीव्र हैं। इन्होंने व्यंग्य से घरेलू वातावरण की सृष्टि की है।

इन्होंने भी अरबी-फारसी तथा अँग्रेजी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इनकी शैली में आत्मीयता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों ये अपने पाठकों से बात चीत कर रहे हों। ये भट्ट जी की भाँति किसी प्रकार की भूमिका नहीं बाँधते वरन् अपने विषय पर सीधे आ जाते हैं। हास्य और व्यंग्य पूर्ण भाषा में नैतिक शिक्षा देना इनका अपना ढंग है।

हास्योद्रेक करने के इनके दो ही प्रमुख साधन थे—(१) श्लेष तथा (२) कहावतें। इनका व्यंग्य भाषा के बीच कुनैन की गोली पर शक्कर सा है पर शक्कर इतनी नहीं होने पाती थी कि कुनैन की कड़वाहट छिप जाय।

राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखक थे। बृन्दावन से यह "भारतेन्दु" नामक मासिक पत्र निकालते थे। "यमलोक की यात्रा" शीर्षक इन्होने एक हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण लेख लिखा। यह पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो चुका है। इसके मुख पृष्ठ पर प्रकाशित है "पंच का पंच और प्रपंच का प्रपंच ! सब सच है !!! एक घड़ी हँसी में कटैगी बुरा न मानियेगा।" मूल रूप में यह "सारसुधानिधि" में प्रकाशित हुआ था। इसमें धार्मिक एवं राजनैतिक व्यंग्य है। राजनीतिक दमन एवं सामाजिक दुराचारों की पोल खोली गई है। रईस लोग उस समय साहब लोगों को कुत्ते भेंट करते थे। जब वह मरता है तो वैतरणी पार करते समय प्रधान पूछता है कि गौदान किया है कि नही। जब वह मना करता है तो उसे निकालने की आज्ञा दी जाती है। बाद में विनती करता है—

"साहब, प्रथम प्रश्न सुन लीजिए, गोदान का कारण क्या है ? यदि गौ की पूँछ पकड़ कर पार उतर जाते हैं, तो क्या बैल से नहीं उतर सकते। जब बैल से उतर सकते हैं तो कुत्ते ने क्या चोरी की है ? मुझे याद आया कि साहब मजिस्ट्रेट की मेम को एक कुत्ता मैंने दान दिया था, जब गौ यहाँ साक्षात

१. प्रतापनारायण मिश्र—सम्पादक अरोड़ा एवं त्रिपाठी, पृष्ठ ९५.

आ जाती है तो क्या प्रदत्त कुत्ता न आवेगा। मैंने झड़ाक सीटी दी, सीटी सुनते ही मेरा पाला पनासा प्यारा "रत्न" नामी कुत्ता कचहरी के लोगों को हटाता मेरे पास आ खड़ा हुआ मुझे चाटने लगा।"[1]

उक्त लेख आदि से अन्त तक हास्य-रस में डूबा हुआ है। गोस्वामी जी ने "स्तोत्रों" के रूप में भी कई हास्य-रसपूर्ण निबन्ध लिखे। "रेल्वे स्तोत्र" का एक अंश देखिए—

"हे सर्व मंगल मांगल्ये! स्टेशनों पर यात्री लोग तुम्हारी इस प्रकार बाट देखते हैं जैसे चातक स्वाति की, किसान मेघ की, विरहिणी पति की। पर तुम भी खूब झिकाय-झिकाय कंठगत प्राण करके ही आती हो, बस जहाँ तुम्हें यात्रियों ने देखा कि लोट-पोट हो गए। कहीं लोटा कहीं डोर, कहीं गठरी कहीं पुटरी और कहीं लड़का कहीं बाले, विशेष क्या उस समय उनकी ऐसी प्रेममयी दशा हो जाती है कि उन्हें आत्मज्ञान ही नहीं रहता।"[2]

"अंगरेज़ देव महा महापुराण", "उल्लूगाथा" आदि सैकड़ों हास्य-रस-पूर्ण लेख आपने लिखे। इनका हास्य अतिहसित हास्य है। इन लेखों को पढ़-कर पाठक बिना ज़ोर से खिलखिलाये रह नहीं सकता। कठिन समस्याओं को भी वे अपनी घरेलू और चित्ताकर्षक शैली में व्यक्त करने में सफल हुए हैं। इनमें प्रौढ़ चिन्तन-शक्ति एवं तीक्ष्ण रचनात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है। इनके व्यंग्य की चोट करारी है। **"जब राधाचरण धार्मिक अन्ध विश्वास पर चोट करते हैं तो उनकी बोली में कबीर के प्राण बजते दीखते हैं। कबीर के व्यंग्य में कटु तीखापन है, गले से उतरते हुए लकीर सी खींचती है, गोस्वामी जी का व्यंग्य शहद में डूबा, हँसी में लिपटा और कल्पना से रंगा है।"**[3] हम "नलिन" जी के विचारों से पूर्णतः सहमत हैं।

बालमुकुन्द गुप्त बड़े सशक्त व्यंग्य लिखने वाले हुए हैं। वह जिस युग में हुए वह कर्जनशाही अंग्रेज़ राज्य की चढ़ती धूप का ज़माना था। दमनचक्र जारी था। ऐसे समय में हास्य एवं व्यंग्य के सहारे ही हृदय का असन्तोष प्रकट किया जा सकता था। उनका राजनैतिक व्यंग्य कर्जन-केन्द्रित है। 'फुलर' और 'मिन्टो', 'मार्लो' को भी साथ में घसीटा गया है। वे 'शिवशम्भू के चिट्ठे' शीर्षक से राजनैतिक व्यंग्य लिखा करते थे। शिवशम्भू को बालकपन

१. यमलोक की यात्रा (नये नासकेत)—पृष्ठ ४.
२. भारतेन्दु (मासिक)—१४ नवम्बर सन् १८८३, पृष्ठ १२८.
३. निबन्ध और निबन्धकार—जयनाथ नलिन, पृष्ठ ६८.

में बुलबुलों का बड़ा शौक था परन्तु बुलबुल उसे मुश्किल से ही मिलती थीं। एक बार वह स्वप्न में बुलबुलों के देश में पहुँच गया। कर्जन के आत्मसन्तोष की प्रसन्नता को उस स्वप्न की प्रसन्नता से तुलना करते हुए वे अपने पत्र में लिखते हैं—

"आपने माई लार्ड। जब से भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य काम भी किया है? खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहाँ की प्रजा के लिए भी कुछ कर्तव्य पालन किया? एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारिये। आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पाँच वर्ष पूरे हो गए। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में मूलधन समाप्त हो चुका।"[1]

बंग-विच्छेद प्रकरण पर उनका व्यंग्य देखिए —

"सब ज्यों का त्यों है। बँग-देश की भूमि जहाँ थी वहाँ है और उसका हरेक नगर और गाँव जहाँ था वहीं है। कलकत्ता उठाकर चिरापूँजी के पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलाँग उड़कर हुगली के पुल पर नहीं आ बैठा। पूर्व और पश्चिम बंगाल के बीच में कोई चीन की सी दीवार बन नहीं गई है। पूर्व बँगाल पश्चिम बंगाल से अलग हो जाने पर भी अँग्रेजी शासन ही में बना हुआ है और पश्चिम बंगाल भी पहले की भांति उसी शासन में है किसी बात में कुछ फ़र्क नहीं पड़ा। खाली खयाली लड़ाई है। बंग-विच्छेद करके माई लार्ड ने अपना एक ख्याल पूरा किया है। इस्तैफा देकर भी एक ख्याल ही पूरा किया है और इस्तैफा मंजूर हो जाने पर इस देश में पड़े रह कर भी श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्स के स्वागत तक ठहरना एक खयाल मात्र है।"[2]

"आत्माराम" के नाम से इन्होंने साहित्यिक व्यंग्य भी लिखा। 'शिव शम्भु का चिट्ठा" शीर्षक निबन्धों में कथात्मकता का प्राधान्य है। ये अनोखी घटनाओं के संघटित करने में दक्ष है। गुप्त जी का भाषा पर असाधारण अधिकार है। इनकी भाषा बहुत चलती, सजीव और विनोद पूर्ण है। उर्दू के प्रभाव से उनकी भाषा अधिक सजीव है। उनके विचार विनोदपूर्ण वर्णनों में छिपे रहते हैं। लुक छिप कर सामने आते हैं। इनका वाक्य-विन्यास एक दम सधा हुआ है, गति और यति का वैसे ही ध्यान रक्खा गया है जैसे मुक्त छंद में। इनकी भाषा में व्यंग्यपूर्ण प्रतीकात्मकता मिलती है। अप्रस्तुत के द्वारा

१. बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली—पृष्ठ १७६.

२. बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली—पृष्ठ २१८.

प्रस्तुत की प्रतीति यह बहुत सुन्दर और सफल ढंग से कराते हैं। इनकी शैली में भावव्यंजना के चमत्कार के साथ-साथ निराली वक्रता है।

मधुसूदन गोस्वामी—ये राधाचरण गोस्वामी द्वारा सम्पादित "भारतेन्दु" में बराबर हास्य-रस-पूर्ण निबन्ध लिखा करते थे। इनके व्यंग्य "स्तुति" शैली में लिखे गए हैं। "समाचार पत्र" के विराट रूप का यह परिहास पूर्ण शैली में वर्णन करते हैं :—

"जनरव आपकी जंघा है कभी कभी उन पर आप भी चल निकलते हैं। लोकल प्राप्त सम्पादकीय आप के पेट और पीठ है। अगड़ं बगड़ं इनी में भरा रहता है और सब सम्पादकीय प्रस्ताव के पीछे इनको जगह मिलती है। लोकल आपका कण्ठ है और सम्पादकीय आपका मुख है। नोटिस आपके नेत्र और इश्तहार आपकी अपाँग भंगी है। आगामी मूल्य आपका आनन्द और पश्चात् देय आपका क्लेश है। आपका मन आपका अनुग्रह दाम है।"[1]

इनकी भाषा संस्कृत निष्ठ है। वक्र-उक्तियाँ एवं श्लेष आपके हास्य उद्रेक करने के साधन हैं। व्याज-स्तुति के रूप में भी आपने कतिपय लेख लिखे हैं।

द्विवेदी-युग

बाबू गुलाबराय—द्विवेदी-युग के प्रमुख निबन्ध लेखकों में से हैं। तत्कालीन सामाजिक प्रश्नों तथा जटिल समस्याओं पर इन्होंने विनोद-पूर्ण शैली में सुन्दर निबन्ध लिखे। इनके अधिकांश लेख आत्म-व्यंजक हैं। "मधुमेही लेखक की आत्मकथा" शीर्षक लेख में इन्होंने स्वयं को ही आलम्बन बनाया है। इसके अतिरिक्त "समालोचक", "विज्ञापन युग का सफल नवयुवक", "प्रेमी वैज्ञानिक", "आफत का मारा दार्शनिक" भी इनके हास्य-रस-पूर्ण निबन्ध हैं। "ठलुआ क्लब" में ये लेख ठलुओं के सामने पढ़े गये हैं। लेखक मधुमेही है। अपने प्रिय "डाक्टर" को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आलंकारिक शैली में लिखे आपके निबन्ध का यह अंश देखिए :—

"आप साधारण जल को बहुमूल्य औषध बना, उसमें से लक्ष्मीदेवी का प्रादुर्भाव कर समुद्र मंथन का नित्य अभिनय करते हैं। वैसे तो स्वयं धन्वन्तरि-रूप से आपका भी प्रादुर्भाव लक्ष्मी जी के साथ हुआ था। धन्वन्तरि जी अमृत

---

१. भारतेन्दु—दिसम्बर, जनवरी तथा फरवरी तथा मार्च सन् १८८४-८५ का संयुक्तांक—पृष्ठ १९०.

का घट लिए हुए निकले थे। आप की दवाओं की पेटी पीयूषधारा से कम नहीं है। आप अपने ही में धन्वन्तरि एवं चन्द्रमा दोनों के व्यक्तित्व को सम्मिलित किए हुए हैं। चन्द्रमा को औषधियों का पति कहा है। इसी से उसका नाम सुधाकर पड़ा। आप भी सुधाकर हैं क्योंकि अमृतमयी औषधियाँ आपके कर कमलों में निवास करती हैं। वास्तव में आपके "कर" ही सुधा-रूप हैं। सुरा-देवी आपकी सहज भगिनी हैं। इसलिए आपकी प्रत्येक औषध में उनका प्रयोग होता है। लक्ष्मी देवी पर तो आप कृपा करते ही रहते हैं। बिना उनके "सुफल" बोले आपके मन्त्र तथा औषध और रोगी की "हा हा विनती" सब निष्फल हो जाती हैं।"[1]

गुलाबराय जी की भाषा में गम्भीर-व्यंग्य मिलता है। भाषा व्यवहारिक बोलचाल की चलती हुई है। मुहावरों का भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। साथ में संस्कृत के सुभाषितों का भी उपयोग किया गया है। हास्य का उद्रेक वक्र-उक्तियों द्वारा किया गया है। व्याज-स्तुति एवं व्याज-निन्दा के माध्यम से हास्य का सृजन किया गया है। व्यंग्य अवैक्तिक, परिष्कृत एवं "सुसंस्कृत" है।

चन्द्रधरशर्मा गुलेरी की ख्याति हिन्दी-साहित्य में उनकी प्रसिद्ध कलात्मक कहानी "उसने कहा था" शीर्षक से ही है किन्तु वे हास्य-रस के निबन्ध लिखने में भी उतने की सिद्धहस्त थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उनके बारे में ठीक ही लिखा है—"**यह बेधड़क कहा जा सकता है कि शैली की जो विशिष्टता और अर्थगर्भित** वक्रता गुलेरी जी में **मिलती है, वह और किसी लेखक में नहीं। इनके स्मित हास की सामग्री ज्ञान के विविध क्षेत्रों से ली गयी है।" इनके** "कछुआ धरम" शीर्षक लेख का कुछ अंश देखिए—

"अच्छा, अब उसी पंचनद में "वाहीक" आकर बसे। अश्वघोष की फड़कती उपमा के अनुसार धर्म भागा और दण्ड कमण्डल लेकर ऋषि भी भागे। अब ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश और आर्यावर्त की महिमा हो गई, और यह पुराना देश—न तत्र दिवसं वसेत्। बहुत वर्ष पीछे की बात है। समुद्र पर के देशों में और धर्म पक्के हो चले। वे लूटते मारते थे ही बेधरम भी कर देते थे। बस समुद्र-यात्रा बन्द। वहाँ तो राम के बनाए सेतु का दर्शन करके ब्रह्म हत्या मिटती थी और कहाँ नाव में जाने वाले द्विज का प्रायश्चित करा कर भी संग्रह बन्द। वही कछुआ धर्म। ढाल के अंदर बैठे रहो"।

१. ठलुआ क्लब—पृष्ठ १८.

इनकी शैली विचारात्मक है। वाक्यों में प्रसंग छिपे रहते हैं। इनके लेखों का पूरा आनन्द विद्वान ही ले सकता है।

जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी—हास्य रस के अच्छे निबन्ध लेखक थे। द्विवेदी युग में व्यंग्य का अधिक प्रयोग आलोचना-प्रत्यालोचना में होता था। बालमुकुन्द गुप्त सम्पादक थे "भारतमित्र" साप्ताहिक के तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी थे सम्पादक "सरस्वती" मासिक के। आपस में भाषा तथा व्याकरण के प्रश्नों को लेकर नोंक-झोंक होती रहती थी। आक्षेप शैली ही अधिक प्रचलित थी। एक बार द्विवेदी जी ने बाबू श्यामसुन्दर दास पर एक दोहा "सरस्वती" में निकाला—

"मातृभाषा के प्रचारक विमल बी० ए० पास,
सौम्य शील निधान बाबू श्याम सुन्दर दास।"

इसी पर व्यंग्य करते हुए गुप्त जी ने पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के बारे में लिखा—

"पितृ-भाषा के बिगाड़क सफल एफ० ए० फिस्स
जगन्नाथ प्रसाद वेदी बीस कम चौबिस्स।"

जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी गुप्त जी के दल के थे तथा "भारत-मित्र में बराबर लिखा करते थे। एक बार श्री ललित कुमार वन्द्योपाध्याय ने कलकत्ता यूनीवर्सिटी इंस्टीट्यूट में सर गुरुदास बनर्जी की अध्यक्षता में "अनुप्रासेर अट्टहास" शीर्षक बंगला प्रबन्ध का पाठ किया। इसमें उन्होंने बंगभाषा में व्यवहृत, प्रयुक्त और प्रचलित संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी और बंगला शब्द, मुहावरे और कहावतें उद्धृत कर अनुप्रास का एकाधिकार बंगलाभाषा में दिखाया था। प्रबन्ध पाठ के अन्त में "बंगवासी" के तत्कालीन सम्पादक श्री बिहारी लाल सरकार बोले कि **"बंगला ही कविता की भाषा है, क्योंकि इसमें जितना अनुप्रास है उतना और किसी भाषा में नहीं। अनुप्रास कविता का एक गुण है"** चतुर्वेदी जी ने इसी के उत्तर में "अनुप्रास का अन्वेषण लेख लिख डाला है जो अब पुस्तकाकार उपलब्ध है। उक्त निबन्ध में आपने वाणिज्य, व्यापार, साहित्य, धर्म, आश्रम, भोजन सबके वर्णन में अनुप्रास की छटा दिखाई है। "साहित्य" के वर्णन का कुछ अंश देखिए—

"कविकुल कुमुद कलाधर, काव्यकानन केसरी और कविता कुंज कोकिल कालिदास भी काव्य-कल्पना में अनुप्रास का आवाहन करते हैं। कहीं कहीं तो कष्ट-कल्पना से काव्य का कलेवर कलुषित हो जाता है। यह कपोल-कल्पना

नहीं कवि कोविदों का कहना है । खैर, वंशीवट, यमुना निकट, मोर मुकुट, पीत-पट, कालिन्दीकूल, राधा माधव, ब्रजवनिता, ललिता, विधुवदनी, कुँवर कन्हैया, नन्द यशोदा, वसुदेव देवकी, वृन्दावन, गिरि गोवर्द्धन, ग्वाल बाल, गोप गोपी, बाल-मताल, रसाल साल, लवंगलता, विपिन बिहारी, नन्दनन्दन, विरह व्यथा, वियोग व्यथा, संयोग वियोग, मधुर मिलन......प्राणनाथ, प्राणप्रिय, पीन-पयोधर प्रेमपत्र, प्रेमपताका, प्राणदान, सुखस्वप्न आलिंगन चुम्बन, चूमाचाटी, पाद पद्म, कृत्रिम कोप, भ्रूभङ्ग भृकुटीभंगी, मानमर्द्दन और मानभंजन भी अनुप्रास के अधीन हैं ।"[1]

इनकी शैली आलंकारिक है । यहाँ असंगत नामों की संगत बैठने से हास्य का उद्रेक किया गया है । इनकी भाषा में धारावाहिकता है जो इनके निबन्धों को गति देती है । हास्य-रस के लेखकों का यह अपना गुण विशेष होता है । कुशल हास्य लेखक इस ढंग से अपना व्यंग्य-बाण चलाता है कि जिसे वह बाण लग जाए वह भी मुस्करा उठे और चुभे हुए बाण को निकाल कर चूमले और कह उठे "वाह" और चतुर्वेदी जी इसमें सफल हुए है चाहे आचार्य शुक्ल जी को उनके लेख भाषण ही लगते हों ।

आधुनिक युग

शिवपूजन सहाय हास्य-रस-पूर्ण निबन्धों के उत्कृष्ट लेखक हैं । "मुरौ-वत महारानी की जय", "प्रोपेगंडा-प्रभु का प्रताप", "मेरी रामकहानी", "मैं धोबी हूँ", "मै हज्जाम हूँ," "मै रानी हूँ", "मै अन्धी हूँ", आदि शीर्षकों से आपने अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक विद्रूपताओं पर व्यंग्य बाण छोड़े है । शिवजी की विशेषता है मीठी चुटकी लेना, गुदगुदाभर देना, चिकोटी लेना नहीं । इनके व्यंग्य-बाण विषाक्त नहीं हैं । इनके लेखों को हम वर्णनात्मक तथा आत्म-व्यंजक शैलियों में विभाजित कर सकते हैं । वर्णनात्मक शैली में लिखा "प्रोपेगंडा प्रभु का प्रताप" शीर्षक लेख का एक अंश देखिये—

"इन प्रभु जी का भक्त हुए बिना न कोई चाँदी काट सकता है न मूँछ पर ताव दे सकता है, न हार में जीत का सपना देख सकता है, न किसी को उलटे छुरे से मूँड़ सकता है, न दुनिया की आँखों में धूल झोंक सकता है, न मिथ्या महोदधि का मन्थन कर असत्य रत्न निकाल सकता है, न जादू की

---

१. "अनुप्रास का अन्वेषण"—पृष्ठ ८, ९.

छड़ी फेर कर गीदड़ को शेर बना सकता है, न छछूँदर के सिर में चमेली का तेल लगा सकता है, न सूखी रेत में नाव चला सकता है, न ढोल में पोल छिप सकता है, न कोयले पर मौहर की छाप लगा सकता है, इस दुनिया में कुछ भी नहीं कर सकता।"[1]

एक साधारण तथा तुच्छ वस्तु को असाधारण महत्व देकर हास्य का उद्रेक किया गया है। प्रोपेगंडा को प्रभु की उपमा ही नही दी गई वरन् प्रभुता का पूर्ण समावेश उसमें करा दिया गया है। मुहावरों की झड़ी लगा दी गई है। मुहावरों पर ऐसा अधिकार तथा उनका उचित प्रयोग कम लेखकों में देख पड़ता है।

"मैं हज्जाम हूँ" इनका आत्म-व्यंजक शैली में लिखा सुन्दर निबन्ध है। इसमें स्मित हास्य की छटा दर्शनीय है। पहले हज्जाम की प्रशंसा मन भर के की गई है। "प्रथम पुरुष" में लिखे होने के कारण इसमें व्यंजित व्यंग्य की कटुता को शून्य कर देने का सफल प्रयास किया गया है। देखिए—

"आजकल हजामत का पेशा बहुतों ने अपना लिया है। ......यदि कोई नई उमँग का नेता है तो निस्सन्देह नापित भी है क्योंकि जनता की हजामत बनाना ही उसका बँधा रोजगार है। दुनिया की सरकारें प्रजा की हजामत बनाती हैं। निरंकुश लेखक भाषा की हजामत बनाता है स्वयंभू कवि छन्दों की, डाक्टर मरीज़ों की, वकील मुवक्किलों की, टिकट चेकर मुसाफिरों की, दुकानदार ग्राहकों की, पण्डा तीर्थयात्रियों की, समालोचक लेखकों की, सम्पादक पुरस्कार की, प्रकाशक पाठकों की और अनुवादक मूलभावों की हजामत बनाता है। कहाँ तक गिनाऊँ, सब तो हज्जाम ही हज्जाम हैं।[2]

पाठकों के प्रति आत्मीयता का भाव कुशल लेखक का एक विशिष्ट गुण है। शिवपूजन सहाय, ऐसा प्रतीत होता है, मानो लेख के द्वारा अपना मन खोल कर रख रहे हैं। हँसी दूसरे की उड़ा रहे हैं किन्तु अपने ऊपर रख कर। मृदुल हास्य की ऐसी व्यंजना अन्यत्र कम दिखाई देती है। हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि निबन्धों में इतना सुसंस्कृत हास्य, परिष्कृत शैली एवं प्राँजल भाषा का सुयोग बहुत कम मिलेगा।

---

१. "दो घड़ी"—पृष्ठ १२.

२. ,, ,, ,, २६.

हरिशंकर शर्मा के निबन्धों में सामयिक विषयों पर कठोर व्यंग्य मिलता है। व्यक्ति, चरित्र, समाज, व्यवसाय आदि को वस्तुविषय बनाकर शर्माजी ने उनकी विद्रूपताओं का खाका खींचा है। इनके कुछ लेख मनोरंजन-प्रधान हैं तथा कुछ व्यंग्य-प्रधान।

"भारतीय मूछमुण्ड-मण्डल" में मुच्छहीन-परम्परा की हास्यमय रीति से प्रशंसा की गई है—

"धार्मिक संसार ही नहीं, राजनैतिक जगत का भी मुलाहिज़ा फ़रमाइये········· दूर क्यों जाते हो वर्तमान काल में आँखें पसार कर देखिये, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, श्रीनिवास आयंगर, सी० वाई० चिन्तामणि, भाई परमानन्द, श्रीनिवास शास्त्री इत्यादि सैकड़ों "मुछमुण्ड दल" के अनुयायी हैं। यह निमुच्छता साहित्य क्षेत्र में भी विहार करने लगी है। आप गौर से देखें, बदरीनाथ भट्ट, लक्ष्मीधर वाजपेयी, वियोगी हरि, शिवप्रसाद गुप्त, कृष्ण कान्त मालवीय······साहित्य सेवियों के मुँह से मूँछें······के सींग की तरह उड़ गईं और उड़ती जा रही हैं।"[1]

इन्होंने साधारण का असाधारण रूप में वर्णन कर तथा व्याजस्तुति पद्धति का पुट देकर हास्य-सृजन किया है। अनुप्रासिकता इनकी शैली का विशिष्ट गुण है। व्यंग्य इनका कटु नहीं, मृदुल है। "सम्पादक-जन्तु" लेख व्यंग्य प्रधान है इसका कुछ अंश देखिये—

सम्पादक एक विचित्र जन्तु होता है। उसकी शक्ल हज़रत इंसान से बहुत मिलती जुलती है। वही हाथ-पाँव का फैलाव और वही धड़-धरातल का रकबा। ······ सम्पादक जन्तु की "अपर स्टोरी" जिसे गँवार बोली में खोपड़ी और मुर्दा जबान में मस्तिष्क कहते हैं—तरह-तरह की बातों से भरी रहती है। कुछ खोपड़ियों में तास्सुब का तेजाब, खुशामद का खल, बेग़ैरती का बुरादा, ग़ैर इन्साफी का गुड़ और रिश्वतखानी का रौग़न पाया जाता है। कुछ खोपड़ियाँ बिल्कुल इसके बरअक्स होती हैं। रिसर्च करने पर उनमें स्वाभिमान का शहद, देश भक्ति की भँग, स्वार्थ त्याग का शर्बत और उत्साहशीलता का आसव पाया गया है।"[2]

रुद्रदत्त शर्मा हास्य-रस पूर्ण निबन्ध लिखने में सिद्धहस्त थे। इन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती निबन्धकार भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी आदि की भाँति स्वप्न-

---

१. चिड़ियाघर—पृ ९१

२. पिंजरापोल—पृष्ठ ५२.

कल्पना का दामन पकडा है। इन्होने भी "स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी" कराई है तथा "कंठी-जनेऊ" का विवाह् कराया है। ये कट्टर आर्य समाजी थे। हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से इन्होने विरोधियों के सिद्धान्तों पर व्यंग्यवाण छोड़े हैं। इनकी शैली अलंकार एवं अनुप्रासो से बोझिल है। पाठक को रस-ग्रहण कराने में ये शैली बाधक होती है। भाषा संस्कृत-प्रधान है। विषय की एकरूपता भी नहीं मिलती। हास्य यत्नज है। स्वाभाविक नहीं। एक अंश देखिये—

"प्रथम श्री गणेशजी खड़े हुए परन्तु थोंद बड़ी होने के कारण से पैर डगमगाये और धोती खुलने लगी बस यह तो मंगल पाठ करके बैठ गए। तब श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने खड़े होकर कहा......किसी भाँति छल-बल से देवताओं की उन्नति करनी चाहिए।"[1]

और इस प्रकार यह कपोल-कल्पित वर्णन चलता जाता है जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अस्वाभाविक एवं असस्कृत है। जब कला किसी धर्म अथवा पक्ष के समर्थन करने का माध्यम बना दी जाती है तो यही परिणाम होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल यद्यपि गम्भीर विषयों के लेखक थे किन्तु हास्य-रस के छींटे उनके लेखों में यत्र तत्र मिलते है। अरबी, फारसी तथा अंगरेज़ी के शब्दों का प्रयोग वे बहुधा हास्य-सृजन के लिए करते थे यथा लाइसेन्स, लेक्चर, पास, फैशन आदि।

"अपनी कहानी का आरम्भ ही इन्होंने (इंशा अल्लाखाँ ने) इस ढंग से किया है जैसे लखनऊ के भाँड़ घोड़ा कुदाते हुए महफिल में आते हैं।"—
(इतिहास)

इनके लेखों में व्यंग्य-प्रधान वाक्य भी मिलते हैं।

"ऊपरी रँग ढँग से तो ऐसा जान पड़ेगा कि कवि के हृदय के भीतर सेंध लगाकर घुसे हैं और बड़े बड़े गूढ़ कोने झाँक रहे हैं पर कवि के उद्धृत पद्यों से मिलान कीजिए तो पता चलेगा कि कवि के विवक्षित भावों से उनके वाग्विलास का कोई लगाव नहीं है।"— (इतिहास)

हजारी प्रसाद द्विवेदी–शुक्ल जी की भाँति द्विवेदी जी मुख्यतः हास्य-रस के लेखक नहीं है किन्तु आपने भी कहीं कहीं हास्य रस की अच्छी पिचकारी छुड़ाई है। "शिरीष के फूल", "आप फिर बौरा गये", "समालोचक की डाक", "साहित्य का नया क़दम" में हास्य-रस के छींटे मिलते हैं। "क्या आपने मेरी

१. स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी—पृष्ठ १५.

रचना पढ़ी है" श्रेष्ठ हास्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में अपना स्थान रखती है उसका एक अंश देखिये —

"सच पूछिये तो शुरू शुरू में मनुष्य कुछ साम्यवादी ही था। हँसना हँसाना तब शुरू हुआ होगा जब उसने कुछ पूँजी इकट्ठी करली होगी और संचय के साधन जुटा लिए होंगे। मेरा निश्चय मत है कि हँसना हँसाना पूँजीवादी मनोवृत्ति की उपज है। इस युग के हिन्दी साहित्यिक जो हँसना नापसन्द करते हैं उसका कारण शायद यह है कि वे पूँजीवादी बुर्जुआ मनोवृत्ति से मन ही मन घृणा करने लगे हैं। उनकी युक्ति शायद इस प्रकार है—चूँकि संसार के सभी लोग थोड़ा बहुत रो सकते हैं, इसलिए रोना ही वास्तविक धर्म है। फिर भी अधिकाँश साहित्यिक रोते नहीं, केवल रोनी सूरत बनाये रहते हैं।"

अन्नपूर्णानन्द वर्मा ने भी हास्य रस पूर्ण निबन्ध लिखे हैं। आधुनिक कविता, आधुनिक समालोचक, प्रकाशक, रईस आदि इनके निबन्धों के विषय हैं। अधिकतर लेख आत्म-व्यंजक शैली में लिखे गये हैं। लेखक ने हास्य का उद्रेक स्वयं को आलम्बन बना कर किया है। व्यंग्य मृदुल है। हास्य एवं व्यंग्य का सृजन स्वाभाविक रूप से हुआ है। "कविता-खंड" शीर्षक लेख में आधुनिक कविता एवं आधुनिक तथाकथित समालोचकों पर शहद-मय व्यंग्यबाण छोड़े गये हैं।

"पर यह मैं खूब समझता हूँ कि आधुनिक कविता की गतिविधि से अपरिचित होना उतनी ही बड़ी मूर्खता है जितनी बड़ी कि उससे परिचित होते हुए भी उसके सम्बन्ध में अपने विचारों को सबके सामने प्रकट कर देना। मैंने आधुनिक काव्य-ग्रन्थ कम नहीं पढ़े हैं, जिन्हें नहीं भी पढ़ सका हूँ उनमें कई की समालोचना मैंने लिखी हैं। पर आनन्द जिसका नाम है वह राम जाने क्यों मुझे उनमें अधिक नहीं मिला। इधर अधिकाँश हिन्दी कविता जो मेरे देखने में आरही है वह या तो वादी और अफरीकी डकार हैं, या फेफड़ों की फ़ालतू फूत्कार।"[1]

शैली प्रसाद-युक्त है, आलंकारिक नहीं है। वर्मा जी बातचीत के ढंग में लेख लिखते हैं। जो लक्ष्य वह प्राप्त करना चाहते हैं, जिस शिकार का वे शिकार करना चाहते हैं उसे टेढ़े रास्ते से नहीं पकड़ते हैं, सीधे वार करते हैं और उनका तीर सीधा पड़ता है। चार वाक्य "प्रकाशक-पंचदशी" के और देखिए, **"मुझे आज तक हिन्दी में दो ही ग्रन्थ अच्छे लगे, एक तो वह जो मैं लिखने वाला**

---

१. मनमयूर—पृष्ठ ६६.

था पर समय न मिलने से न लिख सका और दूसरा वह जो मैं लिखूँगा यदि समय मिला तो।"[1]

कान्तानाथ पांडे "चोंच" के हास्य रस के निबन्ध वर्णनात्मक कोटि के हैं। अतिरंजित घटनाओं का समावेश करके हास्य का सृजन किया है किन्तु वह कुरुचिपूर्ण नहीं है। प्रताप नारायण मिश्र के दाँत, भौं, आदि शीर्षकों जैसे निबन्धों की भाँति इन्होंने भी "मेरी पैंसिल" शीर्षक एक निबन्ध लिखा है।

"पैंसिल शब्द किस भाषा का है, यह तो आपको डाक्टर मँगलदेव शास्त्री बतलावेंगे, पर मैं आपको इतना अवश्य ही बतला दूँगा कि मेरे पास एक पेंसिल है।......अभी उस दिन सुप्रसिद्ध कलाविद रायकृष्ण दास जी मुझसे यह पैंसिल कला-भवन में रखने के लिए माँग रहे थे। आखिर उन्हें कब तक टरकाऊँगा। एक न एक दिन वह बाबू झटकूराम की तरह इस पैंसिल को मुझसे झटक ही ले जावेंगे। राष्ट्रकवि श्री मैथली शरण गुप्त की पगड़ी, कवि सम्राट पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय की दाढ़ी के काले बाल, मुन्शी अजमेरी के पायजामे का इजारबन्द, प्रसाद जी का लँगोटा, सुभद्रा कुमारी चौहान का फटा जम्पर, बा० जगन्नाथ प्रसाद "भानु" की शेरवानी तथा बा० गोपालराम गहमरी का अँगोछा आखिर वे लोग ले ही गए।"[2]

हास्य का उद्रेक अस्वाभाविक संभावनाओं को लेकर किया गया है। इनके निबन्धों में हास्य स्मित है। मनोरंजन करने में कहानियाँ सफल हुई हैं।

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" ने दुबे जी की चिट्ठियों के रूप में कुछ हास्यरसात्मक पत्र लिखे हैं जिनमें कुछ मनोरंजन-प्रधान लेखों की कोटि में रक्खे जा सकते हैं। आपने इन पत्रों द्वारा चुनावों में बेइमानियाँ, बारातों की विद्रूपताएँ, फैशन-परस्त युवकों की दुर्दशा आदि अनेकों विषयों पर छींटाकशी की है। इनके ये लेखबद्ध-पत्र आत्मीयता लिये हुये हैं। वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक हैं। भाषा सरल एवं प्रसाद-गुण युक्त है। बात सीधी साधी किन्तु अर्थ-विपर्यय ऐसा कि आप हँसी नहीं रोक सकते। कथोपकथन भी बीच बीच में हास्य का सृजन करता है। भारत पराधीन था। कलक्टर साहब के यहाँ जाकर सलाम झुकाना एक फैशन था। दुबे जी भी जाते हैं, वहाँ का वर्णन देखिए:—

"हम साहब के सामने पहुँचे। भीतर जाते समय चपरासी ने टोपी और जूते ही रखवा लिए। हमने साहब को जाते ही एक लम्बा सलाम झुकाया

१. "मन मयूर"—पृष्ठ १७३.
२. "मौसेरे भाई"—पृष्ठ ८१.

साहब ने हमसे हाथ मिलाया—पुर्खों में से आधे दर्जन तो उसी समय गया में पिण्ड पाकर तृप्त हो गए। मैंने साहब से कहा—आपके चपरासी ने टोपी और जूते रखवा लिए हैं, कोई खटके की बात तो नहीं है? आपका जाना बूझा नौकर है न? साहब बोले—नहीं डुब्बे जी, कोई फिकर का बाट नहीं है। अगर आपका टोपी-जूटा चला जाएगा टो हम आपको हजार टोपी और हजार जूटे देने सकटा है। मैंने कहा—तब तो चपरासी टोपी जूते ले ही जाय तो अच्छा है। मैं यह सोच ही रहा था कि साहब फिर बोले—डुबे जी, मैं बीच ही में बोल उठा—साहब न मैं डूबा हूँ, न मैं बहा हूँ, मैं हट्टा-कट्टा आपके सामने बैठा हूँ। आप बार-बार 'डूबे' न कहिए।[1]

श्लेष एवं शब्द विपर्यय द्वारा हास्य उत्पन्न करने में कौशिक जी सिद्ध-हस्त थे। भाषा में धाराप्रवाहिकता बराबर मिलती है।

यशपाल के निबन्धों में भी हास्य की मात्रा यथेष्ट मात्रा में मिलती है। "न्याय का संघर्ष" इनका राजनैतिक निबन्धों का संग्रह है। इसमें भावात्मक एवं विचारात्मक दोनों कोटि के निबन्ध संग्रहीत हैं। "मच्छरों" का वर्णन कितने हास्यमय रूप से किया है।

"दूर पर बहुत से मच्छरों की भनभन सुनाई दी। सोचा, यह क्या दल बल से आक्रमण की तैयारी हो रही है? कह चुका हूँ रात के सन्नाटे में कल्पना अबोध हो उठती है। मच्छरों की उस कान्फ्रेंस की बात समझने में कुछ उलझन अनुभव न हुई, समझ गया, यह लोग अपने स्काउट के न लौट सकने से चिन्तित हो उठे हैं। सोचा कल मच्छर-संसार के समाचार पत्रों में सनसनी-खेज खबर छपेगी—

"एक वीर सैनिक का दुष्ट नर-राक्षस के हाथों बलिदान।

मच्छर-जाति के नर-रक्त पीने के जन्म-सिद्ध अधिकार के विरुद्ध मनुष्योंकी घृणित कार्यवाही।

मच्छर जाति के नौनिहालो! यदि तुम्हारी नसों में तुम्हारे पूर्वजों का रक्त वर्तमान है तो मानव-रक्तपान के अपने अधिकार के लिए लड़ मरो।

सोचा, मच्छरों की असंख्य सेनाओं का आक्रमण होगा और दोनों हाथों के दो चार प्रहारों में अनेक सैनिक वीर-गति को प्राप्त कर जायेंगे।"[2]

---

१. दुबे जी की चिट्ठियाँ—पृष्ठ ११२, ११३.

२. "न्याय का संघर्ष"—पृष्ठ ८५.

बेढ़ब बनारसी के हास्यरसात्मक निबन्धों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—विशुद्ध हास्यात्मक तथा व्यंग्यात्मक। आप अनुप्रासों की झड़ी लगा देते है। शैली वर्णनात्मक है। "ऐनक" शीर्षक आपका एक लघु निवन्ध है उसमें आप "ऐनक" के लाभ बताते हैं—

"ऐनक में कितना लाभ है। बहुत बड़ी सूची है। कहाँ तक गणना कीजिएगा। आँख में कोई धूल झोंकना चाहे तो आपकी ऐनक रक्षा करेगा। दूर की चीज देखना हो तो ऐनक दिखा देगा। अर्थात् वह आपका दूरदर्शी बना। आँखें उड़ना चाहें तो यह ढाल का काम देगा, आँखें उठना चाहें तो यह न उठने देगा। ठीक प्रयोग हो तो आँखों को बैठने भी न देगा। आँख आने वाली हो तो यह आने न देगा और यदि आँख जाने वाली हो तो यह रोक देगा।······इसलिए विलायत के विज्ञानवेत्ताओं ने खोजकर रंगीन ऐनक का आविष्कार कर दिया है। बड़ी-बड़ी सभा, काँग्रेस, काँन्फ्रेंस में, रेल में, मेला तमाशे में रंगीन ऐनक लगा कर जिसकी ओर आप चाहें घंटों घूरा कीजिये। आप अपनी आँखों का फोक्स जिसकी ओर चाहें लगा दीजिए, उसे पता न होगा। शायद खुली आँखों को इस प्रकार कोई देखे तो कोई लात खाने की नौबत आ जाय। अवश्य ही रंगीन ऐनक के आविष्कारक सरस मनुष्य वर्ग के धन्यवाद के पात्र हैं।"[1]

पं० बालकृष्ण भट्ट की "खटका" परम्परा को ही बेढ़ब जी ने आगे बढ़ाया है। नित्य प्रति के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं पर विनोद का रंग चढ़ाकर यह चित्र खींचे गये है। भाषा प्रसाद-गुण-युक्त है, व्यर्थ का शब्दाडंबर नहीं। हास्य-रस के लेखक की एक सीमा होती है यदि वह उससे बाहर जाता है तो हास्य हास्यास्पद हो जाता है जो इनके लेखों में नही हो पाया है। इसी प्रकार "अध्यापक", "तोंद का महत्व" "कुछ नई बाजियाँ", "विलायती" शीर्षक इनके हास्य एवं व्यंग्यमय लेख अच्छे बन पड़े हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि निबन्धों में नीरसता कहीं नही आ पाई है।

श्री गोपाल प्रसाद व्यास हास्य-रस पूर्ण निबन्धों के अच्छे लेखक हैं। डाक्टर, वैद्य, खुशामदी, मेहमान आदि को आलम्बन बना कर आपने उनका खाका खींचा है। अधिकतर इनके लेख व्यंग्य प्रधान हैं। व्यंग्य कहीं-कही कटु हो गया है और वह "संस्कृत" नहीं रहा। आलम्बन के प्रति ममता का भाव न होकर निन्दा एवं घृणा के भाव मुखर हो गये हैं। "साहित्य का भी

---

१. उपहार—पृष्ठ १०३.

कोई उद्देश्य" शीर्षक लेख में "पेशेवर कवियो" पर व्यंग्य करते हुए आपने लिखा है—

"लेकिन फिर भी मेरी समझ में नहीं आया कि कल जब पड़ौस की किसी लड़की को मुँह उठा कर देख लेता था तो मुहल्ले भर में फुसफुसाहट फैल जाया करती थी, लेकिन आज जब भरी सभा में अपने प्रेम का इजहार, अपने दिल का दर्द, अपने अरमानों की दुनिया और अपनी आकांक्षाओं के स्वप्न खुले से खुले शब्दों में बेधड़क होकर सुनाता रहता हूँ, मगर क्या मजाल कि लोग फुसफुसायें, अंगुली उठायें या विरोध करें, उल्टे मस्त हो हो कर झूमते रहते हैं। वाह-वाह के सिवाय उनके मुँह से कुछ निकलता ही नहीं, तब मैंने सोच लिया कि यह धन्धा भी कुछ बुरा नहीं है और मैं कवि बन बैठा। बाद में तो राम कृपा से लड़ाई छिड़ी, लोगों ने रुपया कमाया। बड़े-बड़े कवि सम्मेलन हुए। ब्लैक मार्केट के उन रुपयों में मेरा भी साझा हुआ।"[१]

इनका हास्य "मुँह फट" है। कहीं-कहीं तो वह कुरुचिपूर्ण हो गया है। शैली आत्मव्यंजक है। भाषा में गति है किन्तु उसमें परिष्कार की आवश्यकता है।

कृष्णचन्द्र ने अखबारी ज्योतिषी, अखिल भारतीय हिरोइन्स कान्फ्रेंस, सेठजी, जनतन्त्र दिवस आदि हास्य-रस पूर्ण निबन्ध लिखे है। "हिन्दी का नया कायदा" शीर्षक लेख में बालको की पाठ्य पुस्तको की हास्यानुकृति की गई है। बच्चों के पढ़ाने के माध्यम से लेखक ने उसमें व्यग्य का पुट डाल कर अपनी बात अन्योक्तियों द्वारा कही है। "त" अक्षर पढ़ाने के लिए तोता दिखाया जाता है और बताया जाता है तोता वाला "त"। अब "तोता" की व्याख्या सुनिए —

"बच्चो, तोता उस आदमी को कहते हैं जो अपने मालिक का सधाया हुआ होता है, और वही कहता है जो उसका मालिक उससे कहलवाना चाहता है। तुमने अक्सर ऐसे तोते देखे होंगे। ये हर जगह, हर देश और हर जाति में पाये जाते हैं, और घरों में, जलसों में, दफ्तरों में, असेम्बलियों में अपने मालिक के रटाये हुए वाक्य बोलते रहते हैं। सच पूछो तो दुनिया में उन्हीं तोतों की हुकूमत है।"[२]

---

१. मैंने कहा—पृष्ठ १११.

२. फूल और पत्थर—पृष्ठ १२५.

इनका व्यंग्य मार्मिक है। विचारात्मक शैली में लिखे गये निबन्ध राजनैतिक एवं सामाजिक विद्रूपताओं पर करारी चोट करते हैं। भाषा परिष्कृत एवं प्रसादगुण युक्त है। व्यर्थ का शब्दाडंबर कहीं भी देखने को नहीं मिलता।

ब्रज किशोर चतुर्वेदी हास्य-रस "मिस्टर चुकन्दर" के नाम से लिखते हैं। "श्रीमती बनाम श्रीमता" आपके निबन्धों का संग्रह है। इसमें "श्रीमती" एवं "श्रीमता" के वार्तालाप के रूप में लघु निबन्ध लिखे गये हैं। स्मित हास्य एवं मृदुल व्यंग्य का सुन्दर संयोजन किया गया है। छायावादी कवियों पर, मुच्छ विहीन युवकों पर व्यंग्य बाण बरसाये गये हैं। श्रीमती जी के यह पूछने पर कि मूँछ-दाढ़ी के विषय में किसी कवियित्री ने भी कुछ लिखा है या नहीं, श्रीमता उत्तर देते हैं —

"आज हिन्दी साहित्य मे वेदना-प्रधान कवियित्री श्री महादेवी वर्मा हैं। उन्होंने आचार्य शुक्ल की आज्ञा शिरोधार्य करके पुरुष कवियों का अनुकरण न करके अपनी रचनाओं में क्षितिज पर उठती मेघमाला को ही अपने परमात्मा प्रियतम की दाढ़ी-मूँछ के रूप में देखा है। और वह मेघमाला जब विलीन हो जाती है तब वह समझती हैं परमात्मा प्रियतम "क्लीन शेव" हो चुका। इसी को सत्य मान कर जब विरह से विह्वल होकर उन्हें मिलने में देर मालूम होती है तो यह भावना होती है कि "दाढ़ी-मूँछ" काटने-छांटने में ही देर हो रही है। परन्तु विरह सत्य है। विरह ही सब कुछ है। इसलिये यह पूछना भी नहीं कि दाढ़ी-मूँछ कितनी कट चुकी, कितनी शेष रही है। विरह तो है ही, जल्दी भी क्या करनी है? परन्तु दाढ़ी-मूँछ को भी सजीव मान कर उनके विषय में जो कविता "दीपशिखा" में लिखी गई है वह भी अद्वितीय है।"[1]

इनका व्यंग्य व्यक्तिगत हो गया है जो शुभ नही। अवैयक्तिक व्यंग्य से वर्ग गत व्यंग्य श्रेष्ठ होता है। इनकी भाषा संस्कृत-गर्भित है।

किशोरी लाल गुप्त ने भी हास्य-रस के निबन्ध लिखे हैं। "झूठ बोलने की कला", "कविता कैसे लिखें ?", "विचित्र दीक्षान्त समारोह" आदि विषयों पर इन्होंने लेख लिखे हैं। "विचित्र दीक्षान्त समारोह" आजकल की शिक्षा-पद्धति पर अच्छा व्यंग्य है। आप लिखते हैं —

"हमारे विश्वविद्यालय के अधिकांश छात्र असाधारण और बहुमुखी प्रतिभा वाले होते हैं। उनकी सम्मति में रेल टिकट का लेना दरिद्र भारत के धन

१. श्रीमती बनाम श्रीमता—पृष्ठ ५०.

का अपव्यय करना है और अपनी सेवा आप कर लेना ही देश की सबसे बड़ी सेवा है। अपने पराये का भेद-भाव तो उनमें लेश मात्र भी नहीं है। दूसरों की सभी वस्तुओं को वे अपनी ही समझते हैं और परोपकार की भावना तो उनमें इतनी अधिक है कि यदि कोई व्यक्ति उन्हें भोज का निमन्त्रण दे तो चाहे परीक्षा का पर्चा ही क्यों न छोड़ना पड़े, पर वे उसे निराश न करेंगे।"[1]

"कौतुक बनारसी" ने साहित्यिक विषयों पर मधुर व्यंग्य लिखे हैं। साहित्यिक ठग, अखिल स्वर्गीय कवि सम्मेलन, सरपट वादी साहित्य सम्मेलन, भावी कवियों के पत्र इनके निबन्धो के शीर्षक है जो स्वयं अपने विषयों को स्पष्ट करते हैं। "साहित्यिक चोरों" पर व्यंग्य देखिए—

"साहित्यिक ठगों की बनावट में कोई विशेषता नहीं होती। वैसे ही नाक-कान होते हैं जैसे हम सबके हैं, और अंग भी हम सब के से होते हैं।······लेकिन गजब का कमाल हासिल होता है इन लोगों को। मौका मिला नहीं कि कैंची से साफ कर दिया अपने दोस्त का भी माल। हमने सुना था कि काश्मीर में लोग अंगूर और फलों के खेत के खेत चुरा लेते हैं, लेकिन अचरज तब हुआ जब एक साहित्यिक ठग ने बात ही बात में हमारी कहानी का सारा "आयडिया" हड़प लिया और उस सप्ताह······नामक पत्र में सचित्र कहानी निकल गई।"[2]

अधिकतर निबन्धों में अस्वाभाविक नाम एवं अस्वाभाविक घटनाओं द्वारा हास्य का उद्रेक किया गया है। शैली वर्णनात्मक है। व्यंग्य प्रधान कहानियाँ ही अधिक हैं जिनमें व्यंग्य कटु हो गया है।

प्रभाकर माचवे के व्यंग्यात्मक निबन्धों का संग्रह "खरगोश के सींग" है। इसमें "कुत्ते की डायरी", "संदेश-बटोरक", "मुँह, "पत्नी सेवक संघ", "गाली", "गला", "घूस", "जेब", "पूँछ", "बिल्ली", आदि मनोरंजक निबन्ध हैं। इनके निबन्धों में हास्य गम्भीर हो गया है। प्रसंगों तथा संदर्भों की भर-मार है। निबन्ध को समझने के लिए मानसिक व्यायाम अपेक्षित है। मनोरंजन के लिए पढ़ने वाला पाठक मानसिक व्यायाम नहीं करना चाहता। वैसे आपकी उक्तियाँ मार्मिक होती हैं। भाषा में वक्रता रहती है। 'मुँह" शीर्षक निबन्ध का एक अवतरण देखिये—

---

१. अष्टावक्र—पृष्ठ ६८.

२. कलम कुल्हाड़ा—पृष्ठ ३५.

"लेकिन यह कहानी भी एक बीमारी है, जो बेमुँह के होते हैं, ऐसा कहते रहते हैं। स्त्रियों के मुँह में वैसे ही लगाम नहीं होती। उनके मुँह के रंग भी बदलते रहते हैं जैसे इन्द्र धनुष के। उनके मुँह को इस विज्ञापन युग में भी कवि लोग चन्द्रमुख कहते हैं, यह जान कर भी कि चन्द्र के समीप लाने का मतलब बर्फ से ठण्डे हो जाना है। कुछ लोग होते हैं जो स्त्री मुख देखते ही, या तो मुँह ताकते रहते हैं, या मुँह लटका लेते हैं या फुला लेते हैं। मुँह दिखाई बन्धुओं का खास अधिकार है। पर यह बात मैं मुँह पर क्यों लाऊँ कि स्त्रियाँ ही हैं जिनकी मुँह-थुराई मुँह से ही होती है। मैं पंत की पंक्ति नहीं कह रहा हूँ कि अधर से अधर, गात से गात। मैं ऐसे भी कैसे मिजाज प्रेमी जानता हूँ जो इन मुँहों के पीछे मुँह के बल गिरे हैं, जिन्हें इन कलमुँहियों के पीछे अब मुँह छिपाना पड़ रहा है और शापनहावर की तरह ज़िन्दगी भर के लिए औरत ज़ात से मुँह फुला कर बैठे हैं।"[1]

बरसाने लाल चतुर्वेदी ने हास्य-रस पूर्ण सुन्दर निबन्ध लिखे है। "चाटुकारिता भी एक कला है" में खुशामदियों की पोल खोली गई है। "बारात की बात" में बारातियों की बेढंगी बातों का खाका खींचा गया है। इसी प्रकार "श्री मुफ्तानन्द जी से मिलिये" मैं मुफ्तखोरों पर व्यंग्यवाण छोड़े गये हैं। "चाटु-कारिता भी एक कला है" में से एक अवतरण देखिए—

"आप पूँछना चाहेंगे कि साहित्य कला, कविता कला, शिल्प कला इत्यादि पर जब प्राचीन ग्रन्थ मिलते है तो चाटुकारी कला पर एक भी प्रामाणिक ग्रन्थ क्यों नहीं मिलता? दरअसल इस कला की यही विशेषता है। यह कला गुप्त कला है। प्राचीन चाटुकार ये नहीं चाहते थे कि इस महान कला का प्रचार अनधिकारी व्यक्तियों में हो जिससे इसका महत्व कम हो जाय। उनकी इतनी दूरदर्शिता के होते हुए भी इस कला ने इतनी उन्नति की कि खुशामद कला के पारंगतों की संख्या जितनी आज है उतनी पहले कभी नहीं थीं·····अंग्रेजी राज्य में इस कला की बड़ी उन्नति हुई। उन्होंने तो यहाँ तक किया कि इस कला में दक्ष होने वालों को सार्टिफिकेट तक देना प्रारम्भ कर दिया। पर हमारी यह सरकार इस कला की उन्नति के बारे में विशेष ध्यान नहीं दे रही है, यह दुःख की बात है।"[2]

---

१. खरगोश के सीग—पृष्ठ १८.
२. "हाथी के पंख"—पृष्ठ ३२.

इनकी शैली विचारात्मक है। स्मित हास्य की सुन्दर सृष्टि हुई है। भाषा सरल है। विचारों को बोधगम्य करने में पाठक को परिश्रम नही करना पड़ता। विश्लेषण स्पष्ट है।

उपसंहार

हिन्दी का निबन्ध साहित्य हास्य-रस की दृष्टि से समृद्ध है। भारतेन्दु काल में आलम्बन, अकाल, टैक्स, खुशामदी लोग रहे, द्विवेदी युग में साहित्यिक आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ हास्य एवं व्यंग्यमय निबन्धों के रूप में लिखी गई। आधुनिक युग में राजनैतिक नेता, ब्लैक मार्केट एवं अन्य सामाजिक विद्रूपताएँ हास्य का आलम्बन बनीं। भारतेन्दु ने हास्य-रस के निबन्धो की जो धारा बनाई उसे पं० बालकृष्ण भट्ट एवं प्रताप नारायण मिश्र ने आगे बढ़ाया। भारतेन्दु युग में बालमुकन्द गुप्त हास्य-रस के निबन्ध लेखकों में मील के पत्थर के समान हैं। बाबू गुलाब राय एवं हरिशंकर शर्मा ने हास्य-रस के सुन्दर निबन्ध लिखे। वर्तमान लेखकों में कौशिक, यशपाल, प्रभाकर माचवे, बेढब बनारसी, शिवपूजन सहाय, कृष्णचन्द्र, अन्नपूर्णानन्द, आदि उत्कृष्ट कोटि के निबन्ध लेखक हैं जिनकी कृतियों में उच्च कोटि के हास्य-रस की सृष्टि हुई है।

: १० :

कविता में हास्य

हिन्दी साहित्य में हास्य-रस की परम्परा वीर-गाथा काल से ही पाई जाती है। कायर और डरपोक उस समय में आलम्बन थे। कबीरदास हिन्दी के प्रथम हास्य एवं व्यंग्य कवि माने जा सकते हैं क्योंकि उन्होंने ही प्रथम बार व्यंग्य का अस्त्र लेकर धर्मध्वजियों की धज्जियाँ उड़ाईं। विद्यापति ने भी इसके पूर्व अपने "छद्म-विलास" में "जटलाँ" सास को मूर्ख बनात हुए शिवशंकर की हँसी उड़ाई है। जायसी ने भी पद्मावती रतनसेन के प्रथम मिलन (मधु-चन्द्र) प्रसंग में हास्य की अच्छी योजना की है। महाकवि सूर ने भी व्यंग्य और वक्रोक्ति के अत्यन्त मधुर प्रयोग किये हैं। "भ्रमर-गीत" उपहास एवं व्यंग्य की एक उत्कृष्ट धरोहर है। सूर में हमें हास्य के सब प्रभेदों का आभास मिलता है। तुलसीदास की रामायण में भी हास्य-रस यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। नारद-मोह प्रसंग एवं शिवजी की बारात में हास्य-रस की अच्छी सृष्टि हुई है। रहीम, बिहारी एवं गंग ने भी हास्य-रस के दोहे और सवैये लिखे। रीतिकालीन अलीमुहीबखाँ, प्रीतम और बेनी "बन्दीजन" ने भी हास्यरस के अनेक कवित्त एवं सवैये लिखे।

हास्य के आलम्बनों का क्रमविकास और परिवर्तन भी आदि काल से ही होता रहा है। वीरगाथा काल में कायर, भक्ति काल में आडम्बरी साधु, धर्मध्वजी नेता, भक्तों के आराध्य, सूर के उद्धव, तुलसी के नारद, परशुराम, रीतिकाल में वैद्य, खटमल, दम्भी, सूम और अरसिक रहे हैं।

"उन्नीसवीं शताब्दी में रीतिकाल का अन्त और आधुनिक काल का आरम्भ होता है। भारतेन्दु बाबू दोनों प्रवाहों के संगम-स्थल पर खड़े हुए हैं। उनके समय से ही जहाँ कविता की अन्य प्रगतियों में परिवर्तन हुआ वहाँ हास्य के क्षेत्र में भी नवीनता आई। हास्य से आलम्बन अब सूम तथा अरसिक ही

नहीं रह गये, सरकार के खुशामदी, दम्भी देशभक्त, पुरानी लकीर के फकीर, फैशन के गुलाम आदि में भी हँसने की सामग्री मिलने लगी।"[1]

भारतेन्दु-युग हास्यरस के काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। उस समय के लेखकों का दृष्टिकोण और मानसिक अवस्थान में महान् परिवर्तन लक्षित होता है। **"हरिश्चन्द्र तथा उनके सम-सामयिक लेखकों में जो एक सामान्य गुण लक्षित होता है वह है सजीवता या ज़िन्दादिली। सब में हास्य या विनोद की मात्रा थोड़ी बहुत पाई जाती है।"[2]** इसकाल के लेखकों ने हास्य के सब प्रभेदों का उपयोग किया है। द्विवेदी-युग में यद्यपि उपेक्षाकृत गम्भीरता छाई रही किन्तु द्विवेदी-युग के उपरान्त आधुनिक युग में हास्य-रस पूर्ण कविताओं का प्रवाह निरन्तर बह रहा है।

पश्चिमी सभ्यता का सम्पर्क, पराधीनता, टैक्स, अकाल, महामारी, विवशता ने हास्य-रस के आलम्बनों पर अत्यन्त गहरा प्रभाव डाला था। कंठावरोध था। "मारे और रोवन न दे" वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो रही थी। भारतेन्दु और उनके समसामयिक लेखकवर्ग के पास शासकों एवं खुशामदियों पर मखमल में लपेट कर पादत्राण प्रहार करने के और कोई चारा नहीं था। यही उन लोगों ने किया। हास्य के प्रभेदों का विवेचन अध्याय २ में किया जा चुका है। आलोच्य-काल के हास्य-काव्य की उसी दृष्टिकोण से नाँपजोख यहाँ अपेक्षित है।

व्यंग्य

भारतेन्दु बाबू ने कविता में हास्य-रस का प्रयोग किया। उनकी कविताएँ उनके नाटकों में तथा उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं। जनता तक पहुँचने के उद्देश्य से उन्होंने उस समय के प्रचलित छन्दों का ही प्रयोग किया, जैसे आल्हा, मुकरी, दोहा आदि। उपहास सदा किसी उद्देश्य से लिखा जाता है। उसमें निन्दा का भाव निहित है। अंगरेज़ी जाति पर लिखी हुई यह मुकरी देखिये—

"भीतर भीतर सब रस चूसै, हंसि हंसि कै तन मन धन मूसै,
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन नहिं अँग्रेज।"[3]

---

१. हिन्दी साहित्य में हास्यरस—डा० नगेन्द्र (वीणा—नवम्बर १९३७)
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३९३.
३. हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य—जगदीश पाण्डेय.

इन राजनैतिक व्यंग्यों में वह तेजी है जैसी बिजली केकरेंट में। रस की दृष्टि से यदि देखें तो इस छोटी सी मुकरी में हास्य-रस का अच्छा परिपाक हुआ है। अंगरेज़ आलम्बन है, रस चूसना और धन का हरण करना, बातें बनाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी, शिक्षा और बेकारी, सरकारी अमलों तथा पुलिस पर क्रमशः कितनी मार्मिक चुटकियाँ ली हैं—

"सब गुरुजन को बुरो बतावें, अपनी खिचड़ी आप पकावें,
भीतर तत्व न झूँठी तेजी, क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेजी।"[1]

शिक्षा और बेकारी पर—

"तीन बुलाए तेरह आवें, निज निज बिपदा रोइ सुनावें,
आँखें फूटें भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट।"[2]

सरकारी अमलों पर—

"मतलब ही की बोलै बात, राखै सदा काम की घात,
डोलैं पहिनैं सुन्दर समला, क्यों सखि सज्जन नहिं सखि अमला।"[3]

पुलिस पर—

"रूप दिखावत सरबस लूटै, फन्दे में जो पड़े न छूटै,
कपट कटारी हिय में हुलिस, क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस।"[4]

"व्यंग्य के लिए यथार्थ ही यथेष्ट विषय है। पर जहाँ यथार्थ के फेर में पड़ कर लोग रक्ताल्प ब्यौरों को जुटाने में ही एतिहासिक साधुता का पाण्डित्य प्रदर्शन करने में ही रह जाते हैं वहाँ आलम्बनों को हम परिचित पाकर निंद्य तो समझ लेते हैं पर हँस नहीं पाते"।[5] भारतेन्दु के व्यंग्य में यही विशेषता है कि उन्होने यथार्थ को ही अपना विषय-वस्तु बनाया है और समाज में तत्कालीन प्रचलित दूषणों पर ही व्यंग्य लिखे हैं। "मदिरा-पान" पर दो दोहे देखिए—

"वैष्णव लोग कहावहीं, कंठी मुद्रा धारि,
छिपि छिपि के मदिरा पियहिं, यह जिय माँहि विचारि।

---

१. भारतेन्दु-युग— पृष्ठ १३८.
२. " " " "
३. " " " "
४. " " " "
५. " " " "

होटल में मदिरा पियें, चोट लगे नहिं लाज,
लोट लए ठाढ़े रहत, टोटल देवें काज ।"[1]

शराबखोरी पर कैसा करारा व्यंग्य है । विशेषकर उन धर्मध्वजी पाखण्डियों पर जो समाज को धोखा देते हैं । वास्तव में व्यंग्य का उद्देश्य किसी सामाजिक अथवा राजनैतिक कमजोरी पर चोट करना ही होता है । **"मुशायरा: चिड़ीमार का टोला, भाँति भाँति का जानवर बोला"**—इसी मुशायरे के द्वारा बाँके तिरछे लोगों की थोड़ी सी नुमायश दिखाई गई है । बिगड़ी रुचि के लोगों को वे एक प्रकार से दो पैर का जानवर समझते थे । इसी टोले के मुशायरे में एक नई रोशनी की प्रेमिका अपने पति से कहती है—

"लिखाय नहीं देतो पढ़ाय नहीं देत्यो, सैंया फिरंगिन बनाय नहीं देत्यो ।
लहंगा दुपट्टा नीक ना लागे, मैंमन का गवनु मंगाय नहीं देत्यो ।।
सरसों का उबटन हम ना लगैवें, साबुन से देहिया मलाय नहीं देत्यो ।
बहुत दिना लग खटिया तोड़ी, हिन्दुन का काहे जगाय नहीं देत्यो ।।"[2]

इसी प्रकार "कब्रिस्तान के नये शायर" नाम की उनकी उर्दू की गजल है, उसकी अन्तिम पंक्तियों में टैक्स पर क्या तीखा व्यंग्य है—

"नाम सुनते ही टिक्स का आह करके मर गये,
जानली कानून ने बस मौत का हीला हुआ ।"[3]

उस समय हिन्दी उर्दू का व्यवहार सौतिहा डाहों का सा चल रहा था । राजा शिवप्रसाद आदि जो सरकार-परस्त थे, उर्दू की हिमायत किया करते थे और उन्हीं की तूती बोल रही थी । भारतेन्दु ने ऐसे लोगों पर "स्यापा" लिखा—

"है है उरदू हाय हाय, कहाँ सिधारी हाय हाय, मेरी प्यारी हाय हाय,
मुँशी मुल्ला हाय हाय, बल्ला बिल्ला हाय हाय, रोयें पीटें हाय हाय ।
टाँग घसीटें हाय हाय, सब दिन सोचें हाय हाय, डाढ़ी नोचें हाय हाय ।
दुनिया उलटी हाय हाय, रोजी बिलटी हाय हाय, सब मुखतारी हाय हाय,
किसने मारी हाय हाय, खबर नवीसी हाय हाय, दाँता पीसी हाय हाय,
एडीटरपोशी हाय हाय, शौखबयानी हाय हाय, फिर नहिं आनी हाय हाय ।"[4]

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली—पृष्ठ ३८१.
२. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—अगस्त १८७६, पृष्ठ २६.
३. " " " " " "
४. " " " १८७४, खण्ड १, पृष्ठ ३.

उपरोक्त व्यंग्य सीमा पार कर गया है। इसमें क्रोध एवं निन्दा की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो गई है। भारतेन्दु काल में "स्यापा" हास्यरस की कविता लिखने का एक माध्यम था। पंडित बालकृष्ण भट्ट एवं पं० राधाचरण गोस्वामी ने भी इस माध्यम को अपनाया था। ब्रिटिश शासन था। टैक्सों की भरमार थी। जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। भट्ट जी ने मंहगी और टैक्स को लक्ष बनाकर लिखा—

"गाओ स्यापा, हय हय टिक्कस, सब मिलि रोओ हय हय टिक्कस।
इन्कमटैक्स के बाबा जन्मे, चुंगी के परपोते,
चाखो यह फल ब्रिटिश रूल को, जिनके हैं हम जीते, हय हय टिक्कस।
जो जन यह स्पाया को गैहें, टिक्कस की व्याधा नहिं पैहैं,
खैर मनाओ आठों याम, एडीटर को खत राखो राम, हय हय टिक्कस।"[१]

जिस प्रकार हनुमान-चालीसा के पाठ करने से बाधायें दूर हो जाती हैं, भट्ट जी ने "स्यापे" का वही महत्त्व बताकर व्यंग्य किया है। "इलवर्ट-बिल" के विरोध में उस समय गर्म वातावरण था। पं० राधाचरण गोस्वमी ने "इलवर्ट-बिल" पर "स्यापा" माध्यम के व्यंग्य लिखा—

"है इलवर्ट बिल हायं हाय, है है मुश्किल हाय हाय,
है हकतल्फी हाय हाय, सब इकतरफी हाय हाय।
बच्चा बच्ची हाय हाय, चच्चा चच्ची हाय हाय,
सच्चा बनियाँ हाय हाय, बड़ा कहनिया हाय हाय।
बूढ़ा बेड़ा हाय हाय, रेड़ मरेड़ा हाय हाय,
हिन्दुस्तानी हाय हाय, मरियो नानी हाय हाय।
पार्लो से नट् हाय हाय, मिस्टर वेनट हाय हाय,
जोड़ो चन्दा हाय हाय, हुक्मी बन्दा हाय हाय।
इंगलिश माइन हाय हाय, हर इक लाइन हाय हाय,
जब तक दम है हाय हाय, सिर की कसम हाय हाय।"[२]

यह हास अपहसित हास है। इस व्यंग्य में कठोरता अधिक है। भारतेन्दु काल के व्यंग्य लेखकों में राजनैतिक व्यंग्य की मात्रा अधिक पाई जाती है। पं० प्रतापनारायण मिश्र का व्यंग्य उच्चकोटि का था। उस समय

१. हिन्दी प्रदीप—मार्च, सन् १८७८.
२. भारतेन्दु—२० जून, सन् १८८३, पृष्ठ ४८.

नवयुवकों ने अँगरेजी फैशन का प्रचार बड़ी तेजी के साथ बढ़ रहा था। जागरुक कवि इसमें अपनी भारतीय संस्कृति का ह्रास देख कब चुप रहने वाले थे—

"तन मन सों उद्योग न करहीं, बाबू बनिये के हित मरहीं,
परदेशिन सेवत अनुरागे, सब फल खाय धतूरन लागे।"[1]

मिश्र जी ने पाखंडियों और दम्भियों पर भी व्यंग्य कसे हैं—

"मुख में चारि वेद की बातें, मन पर तन पर तिय की घातें,
धनि बकुला भक्तन की करनी, हाथ सुमरनी बगल कतरनी।"[2]

जिस प्रकार कबीर दास ने अपने युग के पाखंडियों पर व्यंग्य किये हैं उसी भाँति मिश्र जी ने भी उनकी खूब खबर ली है। दयानन्द स्वामी इस समय ही समाज-सुधार आन्दोलन चला रहे थे। यद्यपि मिश्र जी भी सनातन धर्म के मानने वाले थे किन्तु इसके साथ वे सनातनधर्मी पाखंडियों की धज्जियाँ उड़ाने में कभी नहीं चूकते थे। ऐसे पंडितों की कमी नहीं थी कि जिनके घर पर वेद के निशान भी नहीं थे लेकिन वे दयानन्द स्वामी पर ईंट-पत्थर फेंकने को तैयार थे—

"पोथी केहि के घर ते आवैं, कबहूँ सपन्यौ देखा नाहिं,
रिगविद जुजविद साम अथर बन, सुनियत आल्हखण्ड के माँहि।"[3]

कैसी विडम्बना है? अक्षर ज्ञान नहीं है किन्तु पंडित बनने में सब से आगे हैं। जिस समय यह निश्चय हुआ कि चन्दा करके वेदों को मंगाया जाय उस समय सब खिसक गये। इन लोगों की धूर्तता पर मिश्र जी ने लिखा है—

"मरत मरत दयानन्द मरिगै, हिन्दू रहे आयु तक सोय,
पूत बियाहैं पाँच बरस को, गहने धरत फिरैं घरबार।
रुपया फँ रैं जल्लादन पर, घर भरि देंय पतुरियन क्यार,
वेद मंगैवे के चन्दा की सुनतै, नाम सूखि जिउ जाय।"[4]

प्रताप नारायण मिश्र की व्यंग्य कला "तृप्यन्ताम" शीर्षक कविता में सुन्दर प्रकार से प्रस्फुटित हुई है। हिन्दुओं में अपने पूर्वजों के नाम पर तर्पण किया जाता है। श्रद्धा प्रदर्शन की यह एक क्रिया है। कवि कहता है कि इन

---

१. प्रताप लहरी (लोकोक्ति-शतक), पृष्ठ ६७.
२. प्रताप लहरी (लोकोकित-शतक)—पृष्ठ ६५.
३. ,, ,, ,, ,, ६५.
४. ,, ,, ,, ,, २१०.

गुलाम हाथों से कैसे तर्पण करूँ ? इस गुलाम मस्तक को कैसे झुकाऊँ ? उस समय के कविगण अपनी प्रेयसियों की नागिन जैसी जुल्फों का वर्णन करने में नहीं चूक रहे थे। ऐसे कवियों पर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है—

"मंहगी और टिकस के मारे हमहिं क्षुधा पीड़ित तन छाम,
साग पात लौं मिलै न जिय भरि लेबों वृथा दूध को नाम।
तुमहिं कहा प्यावैं जब हमरो कटत रहत गौवंश तमाम,
केवल सुमुखि अलक उपमा लहि नाग देवता तृप्यन्ताम।"[1]

मरे हुओं को खाने को मिल रहा है किन्तु जीवित व्यक्ति भूखों मर रहे हैं—

"मरेहु खाउ तुम खीर खाँड़, हम जियहिं क्षुधा कृश निपटि निकामा।"[2]

व्यंग्य में जितनी कटुता अधिक होगी, जितनी तिक्तता अधिक होगी, वह चोट उतनी अधिक करेगी। "तृप्यन्ताम" कविता के अन्त में भी मिश्र जी यह कह कर कि अकाल और महँगी में किसी और देवता का तर्पण तो संभव नहीं है, केवल मृत्यु देवता के तृप्त होने के सभी साधन मौजूद हैं —

"लैसन इनकम चुंगी चन्दा, पुलिस अदालत बरसा धाम,
सब के हाथन असन बसन जीवन, संसयमय रहत सुदाम।
जो इनहू ते प्रान बचै तो गोली बोलति हाय धड़ाम,
मृत्यु देवता नमस्कार तव सब प्रकार बस तृप्यन्ताम॥"[3]

मिश्र जी के व्यंग्य में पित्त का अंश भी अधिक हो गया है। इसलिए उसमें घृणा का भाव अधिक प्रबल हो गया है। कर्जनशाही का समय था और जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। बालमुकुन्द गुप्त का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी व्यंग्य साहित्य में गुप्त जी की देन बहुत ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने भी अपने समसामयिक एवं पूर्ववर्ती कवियों की भाँति लोक-साहित्य के छन्द चुने। टेसू, जोजीड़ा, आदि में ही उनकी कविता मिलती है। प्रेमचन्द की भाँति गुप्त जी भी उर्दू से ही हिन्दी में आये थे। इसलिए उनकी भाषा में उर्दू का चुलबुलापन और रवानगी मिलती है। उनका व्यंग्य मुख्यतः राजनैतिक एवं साहित्यिक है।

---

१. ब्राह्मण—१५ अक्टूबर, हरिश्चन्द्र संवत् ५.
२. " " " "
३. गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ६९८.

लार्ड कर्ज़न के समय में दिल्ली दरबार हुआ था। कर्जन ने उस पर देश का बहुत सा रुपया खर्च किया था। इस घर-फूंक तमाशा दिखाने वाले खेल पर गुप्त जी ने टेसू लिखा—

"अब के टेसू रँग रँगीले, अब के टेसू छैल छबीले।
होगा दिल्ली में दरबार, सुनकर चौंक पड़ा संसार।
शोर पड़ा दुनिया में भारी, दिल्ली में है बड़ी तयारी।
देश देश के राजा आवें, ख़ेमें डेरे साथ उठावें।
घर दर बेचों करो उधार, बढ़िया हो पोशाक तयार।
हाथी घोड़े भीड़ भड़ाका, देखें सब घर फूंक तमाशा॥"[1]

जब कर्जन ही उस धनुष यज्ञ के राम थे तो उनके वैभव को देखने उनकी सास और सालियाँ विलायत से आईं। हिन्दुओं में न्यौछावर करके पानी पीना प्रसन्नता का द्योतक है। इस रिवाज़ के माध्यम से गुप्त जी ने कैसी मार्मिक चुटकी ली है—

"माता सास ठाठ यह देखें, बार बार कै पानी पीवें।
देखेंगे वह छटा निराली, पास लाट के सासू साली॥"[2]

"मुफ्त का चन्दन, घिस मेरे नन्दन"। दूसरे के पैसे पर ही जब शान दिखाने को मिले तो उसमें कमी ही क्यों की जाय। गुप्त जी ने कर्ज़न की उस शानबान का जिसके आगे सम्राट के 'ड्यूक आफ कनाट' को भी नीचा देखना पड़ा था, इस प्रकार किया है—

"मुझसा कोई हुआ न होगा, यह जाने कोई जानन जोगा।
मैं जो कुछ चाहूँ सो होय, मेरे ऊपर और न कोय।
राजा का भाई था आया, उसको भी नीचा दिखलाया।
पहले मुझको मिला सलाम, तब फिर उससे हुआ कलाम।
मुझको सोना उसको चाँदी, मुझको बीबी उसको बाँदी॥"[3]

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना लोकोक्ति को चरितार्थ कराकर हास्य की सृष्टि की गई है। रस की दृष्टि से कर्ज़न इसके आलम्बन हैं, उनकी झूँठी शेखी मारना उद्दीपन और अपने को राजा से भी ऊँचा सिद्ध करने के प्रयास

---

१. गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ६६८.
२. " " " ६६९.
३. " " " ७१०.

आदि संचारी भाव हैं। वास्तव में ड्यूक को चाँदी की कुर्सी और कर्ज़न ने अपने लिए सोने का सिंहासन ही रक्खा था। किचनर और कर्ज़न में इस कारण मतभेद हो गया था कि किचनर वाइसराय की कौंसिल में फौजी मेम्बर के अस्तित्व को फौजी मामलों में अनुचित हस्तक्षेप समझते थे। वे स्वयं फौजी मामलों में भी सर्वेसर्वा रहना चाहते थे। गुप्त जी ने इस संघर्ष को "मल्लयुद्ध" का नाम दिया है। कर्ज़न ने एक बार हिन्दुस्तानियों को झूँठा कहा था। इस पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं—

"बन के सच्चों के सरदार, करके खूब सत्य परचार।
धन्यवाद सुनते थे कर्जन, उतरी एक स्वर्ग से दर्जन।
उसने लेकर तागा सुई, जादू की एक खोदी कुई।
उससे निकली फौजी बात, चली तबेले में तब लात।
भिड़ गए जंगी मुल्की लाट, चक्की से चक्की का पाट।
गुत्थम गुत्था धींगा मुश्ती, खूब हुई दोनों में कुश्ती।
ऊपर किचनर नीचे कर्जन, खड़ी तमाशा देखे दर्जन।
कलम करे कितनी चरचर, भाले के वह नहीं बराबर।
जो जीता सो मजे उड़ावे, जो हारा सो घर को जावे॥"[१]

सैनिक और सिविल शक्तियाँ भिड़ीं। इसका फल भोगना पड़ा बेचारे बंगाल को। मास्टर साहब स्कूल में प्रधानाध्यापक से गालियाँ खाकर जायें और घर पर जाकर अपने बच्चों पर उबल पड़ें। ठीक इसी प्रकार कर्ज़न जाते जाते बंग-भंग करके अपना रोष प्रकट कर गए—

"आहा, ओहो, हुर्रे हुर्रे, बंग देश के उड़ गए धुर्रे,
रह न सका भारत का लाट, तो भी बंग किया दो पाट।
पहले सब कुछ कर जाता हूँ, पीछे अपने घर जाता हूँ,
बेशक मिली उधर से लात, किन्तु यहाँ तो रह गई बात।
अफसर से खा लेना मार, पर अधीन को दे पैजार,
ज़बर्दस्त से चट दब जाना, ज़ेरदस्त को अकड़ दिखाना॥"[२]

कर्ज़न के कृष्ण मुख कर जाने के बाद मार्ली मिन्टो आये किन्तु बंग-भंग ज्यों का त्यों रहा। लिबरल दल के मार्ले ने भी उसे यह कह कर टाल दिया—

---

१. गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ७१०.
२. ,, ,, ,, ,, ७१०.

"लिबरल दल की हुई बहाली, खुशी हुआ तब सब बंगाली,
पीटें ढोल बजावें ताली, होली है भाई होली है ।
नहीं कोई लिबरल नहिं कोई टोरी, जो परनाला सो ही मोरी,
दोनों का है पन्थ अघोरी, होली है भाई होली है ।"[1]

कर्ज़न के चेले पूर्वी बंगाल के लेफ्टीनेन्ट महोदय को लड़कों के राजनैतिक आन्दोलन का दमन कर सकने के कारण नीचा देखना पड़ा। वे कुछ स्कूलों को यूनिवर्सिटी द्वारा अमान्यता दिलाना चाहते थे, किन्तु भारत सरकार इसके पक्ष में नहीं थी। अन्त में उसने त्याग पत्र दे दिया लेकिन इसका भी कोई असर नहीं हुआ। उस पर गुप्त जी का व्यंग्य देखिए—

"नानी बोली टेसू लाल, कहती हूँ तुझसे सब हाल ।
मास नवम्बर कर्ज़न लाट, उलट चले शासन का ठाट ।
फुलरगंज को गद्दी देकर, चल दिये अपना सा मुँह लेकर ।
फुलरगंज ने की वह जंग, सब बंगाल हो गया दंग ।
लड़कों से की खूब लड़ाई, पुरखों की पलटन बुलवाई ।
अन्त तक लड़कों से लड़े, आखिर को उल्टे मुँह पड़े ।
पकड़ा पूरा एक न साल, आप गये रह गया अकाल ।
खूब वचन गुरवर का पाला, पर आखिर को हुआ दिवाला ।।"[2]

गुप्त जी सनातन धर्मी थे। उनमें एक विचित्रता यह थी कि जहां वे पोंगा पन्थियों के विरोधी थे वहीं वे जाति क्रांतिकारी सुधारों के भी विरुद्ध थे। उनकी एक कविता "प्लेग की भूतनी" में कटु व्यंग्य है। यह व्यंग्य बूढ़ों पर किया गया है जो कि अपने दकियानूसीपन से भारत की प्रगति में रोड़े अटका रहे थे—

"कच्चे कच्चे लड़के खाऊँ, युवती और जवान,
बूढ़ों को नहिं हाथ लगाऊँ, बूढ़ा बेईमान ।"

प्लेग का जवानों के प्रति प्रेम एवं बूढ़ों को जीवित रखने की चेष्टा में जो असंगति है उसी से हास्य की उद्भावना हुई है। सर सैयद अहमद खां लोगों को कांग्रेस से अलग रहने की सलाह दिया करते थे। गुप्त जी इससे तिलमिला उठे थे। उन्हें अपना क्षोभ "सर सैयद का बुढ़ापा" नामक कविता में किया है—

१. गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ७१८.
२. ,, ,, पृष्ठ ७१६.

"बहुत जी चुके बूढ़े बाबा, चलिए मौत बुलाती है,
छोड़ सोच मौत से मिललो, जो सब का सोच मिटाती है।"[1]

मोत का सप्रेम निमन्त्रण कौन पाना चाहेगा ? सर सैयद का विरोध उर्दू साहित्य में महाकवि अकबर ने बड़े ज़ोर से किया था किन्तु हिन्दी कविता में यह विरोध शायद गुप्त जी ही की कविता में ध्वनित हुआ है। अकबर से गुप्त जी की समता और भी कई बातों को लेकर है। दोनों ही अंग्रेज़ों के खिलाफ और उनके आलोचक थे। दोनों ही योरोप से आने वाली रोशनी को नापसन्द करते थे और दोनों ही सुधारों के नारों से घबराते थे तथा दोनों ही ने अपने मजामत के प्रकाशनार्थ कटूक्ति पूर्ण पद्यों का माध्यम चुना था। गुप्त जी जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सुधारों को शंका की दृष्टि से देखते थे क्योंकि उन्हें सुधारों के नारों के बीच में वास्तविकता लुप्त होती दिखाई देती थी—

"हाथी यह सुधार का लोगो, पूँछ इधर भई पूँछ उधर।
आओ आओ पता लगाओ, मूँड़ किधर भई मूँड किधर।
इधर को देखो, उधर को देखो, जिधर को देखो दुम की दुम॥"[2]

पं० प्रताप नारायण मिश्र की छाप श्री बालमुकन्द गुप्त पर स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। यद्यपि अति आधुनिक व्यंग्य उस समय से अधिक पैना और उन्नत है परन्तु भारतेन्दु काल के लेखकों का सबसे बड़ा श्रेय इस बात में है कि उन्होंने इन नई वस्तुओं का प्रारम्भ हिन्दी में किया है। श्री बालमुकन्द गुप्त के बारे में पं० श्री नारायण चतुर्वेदी के इस कथन से हम पूर्णतः सहमत हैं कि "गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य में सामयिक प्रश्नों पर क्रमपूर्वक व्यंग्य-विनोद लिखने की परम्परा प्रारम्भ की। उनकी चलाई परम्परा आज भी हिन्दी पत्रों में चल रही है। कहा है कि "अनुकरण सबसे बड़ी प्रशंसा है", हिन्दी संसार उनका अनुकरण करके हृदय से आदर कर रहा है, अवश्य ही उनके व्यंग्य में कमियाँ पाई जाती हैं जो प्रारम्भिक तथा परम्पराहीन कृतियों में मिलती हैं। उनके पास पूर्ववर्ती पंडितों के बनाये माँपदण्ड न थे। किन्तु यह एक अंश में ही असुविधा थी क्योंकि परम्पराओं से वंधे रहने के कारण उनकी रचनाओं में ताज़गी थी। उनमें एक विशेष प्रकार की स्पष्टता और सिधाई थी जो बाद की कृतियों की कृत्रिमता में बहुधा मन्द हो जाती है। आज का व्यंग्य-साहित्य अधिक उन्नत, अधिक तीखा, अधिक "मखमल में लपेटा" और

---

१. गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग, पृष्ठ ६२१.
२. " " पृष्ठ ६२२.

शर्करा, मंडित है। उसकी ध्वनि अधिक गहरी है किन्तु गुप्त जी के व्यंग्य में कुछ बात ही अनोखी थी। उसमें जो स्वाभाविकता थी और हृदय में गुदगुदाने तथा मर्मस्थल पर हलकी चोट करने की जो शक्ति थी वह आज कम देखने को मिलती है।

इसी काल में पं० शिवनाथ शर्मा भी अच्छे व्यंग्य लेखक हुए हैं। इनकी पुस्तक "मिस्टर व्यास की कथा" हास्य-रस का सुन्दर ग्रन्थ है। "आनन्द" नामक साप्ताहिक पत्र में "मिस्टर व्यास की कथा" शीर्षक से आम हास्य-रस के लेख एवं कविता लिखा करते थे। ब्रिटिश काल में जहाँ सरकार की नीति पर व्यंग्य बाण छोड़ने वाले थे वहाँ खुशामदी और "जी-हुजूरों" की भी कमी नहीं थी। शर्मा जी ने ऐसे व्यक्तियों को आड़े हाथों लिया है। "तर्ज खुशामद या वशीकरण विधि" शीर्षक कविता में आप लिखते हैं—

"देखते साहब को हो जावे खड़ा,
टोपी जूता फेंक के होवे बड़ा।
खैरख्वाही में झुके जिस तरह घास,
लौट आए दण्डवत कर बने लास।
या झुकाए हाथ को दमकशी से,
फिर कहे, आदाब करता है गुलाम।
बंदगी का साथ छू ले जमी से,
फिर कहे, आदाब करता है गुलाम।
चुप रहे गोया लगी मुँह में लगाम,
फिर अगर साहब कहे, सब चैन है?
तो कहे, सब चैन है सब चैन है॥[1]

उस समय लोग खिताब पाने के लिए तरह-तरह के अनैतिक कार्य करते थे, अंग्रेज़ कलक्टर एवं उनकी मेमों को देवताओं की तरह पूजते थे। ऐसे लोगों को आलम्बन बना कर शर्मा जी ने लिखा है—

"सामाजिक खुशामदी जेते,
हैं खिताब पर लट्टू तेते।
जिलाधीश इनके कुलदेवा,
लैं लैं जांय सदा उत मेवा।

१. मिस्टर व्यास की कथा—पृष्ठ १००.

मेमहिं कुलदेवी करि मानें,
बाबा-गन कहँ बाबा जानें।
बैरा को गुरुसौंसनमानैं,
पितामही आया कहं जानें।"[१]

उनके लिए साहब कुलदेवता, मेम कुलदेवी बैरा गुरु और आया पितामही थे। ऐसे खुशामदियों के प्रति अपनी घृणा और अमर्ष के भाव इसी प्रकार व्यक्त किये जा सकते थे। पं० प्रताप नारायण मिश्र की छाप उस युग के प्रत्येक कवि पर स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। मिश्र जी लिखित "तृप्यन्ताम्" शीर्षक कविता का उल्लेख पीछे किया जा चुका है, शर्मा जी ने भी इसी शीर्षक से बड़े मार्मिक व्यंग्य लिखे—

"छापा सबै अचारजकीन,
घर-घर कलम लई चिरकीन।
फारम एक जबै लिखलीन,
बनि लिक्खाड़ भए परबीन।
अब आचार्य, रहै बेकाम,
गहु यह कोरी "तृप्यान्ताम्"।"[२]

अधकचरे लेखक जो कलम पकड़ना भी नहीं जानते हैं उन लोगों को इसमें आलम्बन बनाया गया है। शर्माजी ने खोखले समालोचकों की भी अच्छी खबर ली है—

"बने समालोचक के रूप,
सुन्दरताहू गने कुरूप।
नकल करें उच्छिष्ट समान,
निन्दा करिवे के हित बान।
पुनि लिखिबे को कह्यो न काम,
बस अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।"[३]

उनकी एक कविता "स्वार्थ की सवारी" शीर्षक है इसमें उन्होंने लाला, मुंशी, पंडित, साहब, बाबा जी, वकील, एडीटर, आदि की स्वार्थपरता पर छींटे कसे हैं। सब लोगों का प्रारम्भ में सम्मिलित गान कराया है—

---

१. मिस्टर व्यास की कथा,—पृष्ठ २०१.
२. " " १४४.
३. " " १४८.

"महाराज स्वारथ इधर आज आते।
अहा क्या मजेदार से यार आते।
जमाने के हाकिम हैं शागिर्द इनके।
ये कानून को रोज रद्दी बनाते।
सचाई शक्ल देख कोसों पै भागी।
धरम को ये धक्के व मुक्के लगाते।
तनज्जुल को मसनद के ऊपर बिठाते।
अहा इनकी बीबी है रिश्वत दुलारी।
इसी से कचहरी के हाकिम कहाते।
हिकारत से है आपका दोस्ताना।
हया पर हजारों तर्बाह सुनाते।
डरो इनसे सब हिंद के खैर ख्वाहो।
है हिन्दू व हिन्दी को कोड़े लगाते।।" [1]

रिश्वतखोरी, झूठ, हिन्दी से घृणा आदि जो उस समय की प्रचलित बुराइयाँ थी, इन बुराइयों के करने वालों की अच्छी तरह से खबर ली गई है। मिश्र जी की तरह इन्होंने भी आल्हा लिखे। एक आल्हा "राजनैतिक दंगल" शीर्षक से लिखा जिसके आलम्वन वे पढ़े लिखे लोग हैं जो कि राजनैतिक पहलवानी में दम भरते थे और जिनका काम सभा सुसाइटियों में झगड़ा पैदा करना होता था—

"सूरत नगर सुभग सूरत मंह, तहाँ तापती पुण्य प्रवाह।
मची काँग्रेस दल की लीला, फैले पूर्ण रूप उत्साह।।"

× × ×

"रास बिहारी बने सभापति, तिलक तिलक बिन सूने माथ,
यह कब नव दल देख सकैं बस, बाताबाती चलिगैं हाथ।
"हम मारिंगे", "हम पीटिंगे" कहि कहि गरम चले लठ तान,
जूता जूती सोटा डंडा, लगे चलन, मचिगो घमसान।
चली द्वन्द की झपटा झपटी, विषधर काँग्रेस मैदान,
लगी चोट जब भागे भैया, प्रतिनिधि करि हाय हाय की तान।
लेडी काँपैं, साहब नाचैं, लै लै सभ्य साज को नाम,
अल्ला अल्ला करैं मुसल्ला, हिन्दुन परो राम ते काम।
"गाड गाड" करि भागे साहब, रहे सबै पतलून संभाल।" [2]

---

१. मिस्टर व्यास की कथा—पृष्ठ १४९.

२. ,, ,, १०८.

जो हो, श्री विश्वनाथ शर्मा एक अच्छे व्यंग्य लेखक थे । उन्होंने परिमाण में अधिक लिखा किन्तु जहाँ परिमाण में अधिक लिखा जाता है उसमें स्तर का कुछ गिर जाना स्वाभाविक ही है। ऐसा प्रतीत है कि इन्हें सम्पादक होने के नाते कुछ न कुछ नित्य लिखना पड़ता था। इनके व्यंग्य में अपेक्षित चोट का अभाव है। तुकबन्दी ही अधिक है। शब्द-जन्य हास्य है जो कि बहुत उच्च कोटि का नहीं है। उसमें साहित्यिकता कम तथा अस्वाभाविकता अधिक है।

भारतेन्दु युग में हास्य लेखकों की जो एक बाढ़ आ गई थी वह द्विवेदी युग में क्षीण हो गई। द्विवेदी जी गम्भीर व्यक्ति थे और उनके युग के साहित्य में इसका प्रभाव स्पष्ट है। भाषा-परिष्कार, खड़ी बोली की स्थापना आदि विषयों में लोगों की शक्ति का व्यय अधिक हुआ। द्विवेदी युग में गम्भीरता छाई रही। द्विवेदी युग में व्यंग्य चित्रों का प्रचलन अवश्य हुआ। उस युग की पत्र पत्रिकाओं में "आज" की "अरबी न फारसी", "संसार" की "छेड़छाड़" या "देशदूत" की "भंग की तरंग" न थी। हिन्दी जनता में पठन का प्रचार बहुत कम था। शिक्षित वर्ग अंग्रेजी पत्र का ही ग्राहक था। ऐसी परिस्थितियों में हिन्दी पत्रिकाओं को विशेष आकर्षक तथा रोचक बनाना अनिवार्य था। द्विवेदी जी को आधुनिक "बेधड़क" या "चोंच" की प्रतिभा नहीं मिली थी। वे सरस्वती में निम्नकोटि की सामिग्री जाने भी नहीं देना चाहते थे। उनका लक्ष्य था हिन्दी पाठकों की रुचि का परिष्कार। हिन्दी में ध्येय-पूरक वस्तु न पाकर उन्होंने संस्कृत का आश्रय लिया। "मनोरंजक-श्लोक" खण्ड के अन्तर्गत संस्कृत के मनोरंजक एवं उपयोगी श्लोक नियमित रूप से भावार्थ सहित प्रकाशित होने लगे।

केवल मनोरंजक श्लोकों को ही पाठकों की तृप्ति का अपर्याप्त साधन समझ कर द्विवेदी जी ने यथावकाश "विनोद और आख्यायिका" खंड का समावेश किया। "हँसी-दिल्लगी" खंड की एक-वर्षीय योजना सम्भवतः स्वरचित "जम्बुकी न्याय", "टेसू की टाँग" और "सरगौ नरक ठेकाना नाहिं" को विशेष महत्व देने और उनके व्यँग्य तथा आक्षेप की अप्रिय कटुता को सह्य बनाने के लिए ही की गई थी। ऐसा भी हो सकता है कि यह खंड प्रयोग रूप में समाविष्ट किया गया है परन्तु लेखकों और पाठकों की अरुचि के कारण बन्द कर दिया गया हो।

"द्विवेदी-युग" में हास्य की कमी पड़ गई। मिश्र जी (प्रताप नारायण) की भाँति सजीव तथा घर फूँक तमाशा देखने वाले लेखक इस समय नहीं रह गये थे। संघर्ष इस युग में बहुमुखी हो चला। फलतः लेखकों की प्रतिभा भी अनेक ओर बँट गयी थी। व्यंग्य का प्रयोग अब उतना अधिक न रह गया जितना भारतेन्दु-युग में था। तब भी हास्य रस के छींटे यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। द्विवेदी जी स्वयं पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वालों से चिढ़ते थे। ऐसे लोगों को आलम्बन बना कर उन्होंने "कल्हू अलैहत" नाम से "सरगौ नरक ठिकाना नाहिं" शीर्षक व्यंग्य लिखा है—

"अचकनु पहिरि बूट हम डाँटा, बाबू बनेन डेरात डेरात,
लागे न जावे जाय समझ माँ, कण्ठु फूट तब बना बतात।
जब तक हमरे तन माँ तनिकौ, रहा गाँउ के रस का अंसु,
तब तक हम अखबार किताबें, लिख लिख कीन उजागर बंसु।"[1]

द्विवेदी जी ने अन्योक्ति के माध्यम से भी व्यंग्य की सृष्टि की—

"हरी घास खुरखुरी लगै अति, भूसा लगै करारा है,
दाना भूलि पेट यदि पहुँचै, काटै अस जस आरा है।
लच्छेदार चीथड़े कूड़ा, जिन्हें बुहार निकारा है,
सोई सुनो सुजान शिरोमणि, मोहन भोग हमारा है॥"[2]

इसमें उन सम्पादकों को जो रद्दी चीज़ों को छाप कर जनता की मनोवृत्ति बिगाड़ते थे और सुन्दर रचनाओं को लौटा देते थे, आलम्बन बनाया गया है। सत्साहित्य को हरी घास की उपमा तथा गन्दे साहित्य को, भैसे की उपमा देकर अन्योक्ति को सुन्दर रूप से निबाहा गया है।

द्विवेदी युग के हास्य कवियों में नाथूराम "शंकर" का विशिष्ट स्थान है। शंकर जी आर्य समाजी थे। वे अन्ध विश्वास के कट्टर विरोधी थे। उनके पास विरोध प्रदर्शन का अस्त्र था, व्यंग्य। ब्राह्मणों को आलम्बन बना कर उनका लिखा एक व्यंग्य यह है—

"ठेके पर लेकर वैतरणी देकर दाढ़ी मूँछ,
वाटर बाईसिकल के द्वारा बिना गाय की पूँछ;

---

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिंह, पृष्ठ १८०.
२. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिंह, पृष्ठ १८१.

मरों को पार उतारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा ।"[१]

इनके व्यंग्य में ईर्ष्या तथा घृणा की मात्रा अधिक मिलती है। इनका व्यंग्य फटकार तथा फब्तियों से ओत-प्रोत है। इन्होंने एक कविता में ब्रजराज से पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने के बहाने भारतीय जनों पर व्यंग्य किया है—

"भड़क भुला दो भूतकाल के सजिए वर्तमान के साज,
फैशन फेर इण्डिया भर के गोरे गार्ड बनो ब्रजराज;
गौरवर्ण वृषभानु सुता का काढ़ो काले तन पर तोप,
नाथ उतारो मोर मुकुट को सिर पै सजो साहबी टोप;
पाउडर चन्दन पोंछ लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय,
अंजन अँखियों में मत पाओ, आला एनक लेहु लगाय ।"[२]

फैशन परस्तों के तो वे पीछे ही पड़ गये थे। फैशन के गुलामों को आलम्बन बना कर लिखा हुआ उनका यह कवित्त बहुत प्रसिद्ध हुआ है—

"ईस गिरजा को छोड़, ईश गिरजा में जाय,
शंकर सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे ।
बूट पतलून कोट कम्फर्टर टोपी डाट,
जाकट की पाकट में वाच लटकावेंगे ।
घूमेंगे घमंडी बने रंडी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरंडी मीट होटल में खावेंगे ।
फारसी की छारसी उड़ाय अंग्रेजी पढ़,
मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे ।"[३]

शंकर के काव्य में तिक्तता का अंश अधिक है और कहीं अश्लीलता भी आ गई है। संयम तथा शिष्टता की कमी खटकती है।

ईश्वरी प्रसाद शर्मा भी द्विवेदी-युग के व्यंग्यकार थे। उनकी "लंठ शिरोमणि" शीर्षक कविता में ऐसे लोगों का खाका खींचा गया है जो अपने रोब-दोब से लोगों को दबा देना चाहते हैं—

---

१. हास्य के सिद्धान्त—पृष्ठ १३२.
२. सरस्वती—पृष्ठ २३, सन् १९०६.
३. अनुराग रत्न—पृष्ठ २३६.

"खोली जो जुबान है खिलाफ में हमारे,
हम मारे लात लात जूतों के कचूमर निकारेंगे।
फोरेंगे तुम्हारी खोपड़ी को खंड-खंड करि,
हो सके सम्हालो नहिं जांत तोरि डारेंगे।
पोल मत खोलना हमारी कबौ भूल करि,
हमहूँ तिहारे काज बहुत सवारेंगे।
झूमि-झूमि लायेंगे अपार धन चन्दा करि,
खाइ आप कछुक तुम्हारी जेब डारेंगे।"[1]

ईश्वरी प्रसाद शर्मा का व्यंग्य भी असंयत तथा परुषता लिए हुए है। इनके तथा शंकर के व्यंग्य में हास्य है। द्विवेदी-युग में "पढ़ीस" का व्यंग्य बहुत ही मार्मिक रहा है। ये "अवधी" भाषा में लिखते थे। इनकी मृत्यु पर "माधुरी" नामक मासिक पत्र में "पढ़ीस-अंक" निकाला था। आधुनिक शिक्षा की महत्व-हीनता पर "पढ़ीस" ने लिखा—

"सबि पट्टी बिक्की असट्टियमा,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।
पुरखिन का पानी खुवयि मिला,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।
अल्ला-बल्ला सबु बेंचि खोंचि,
दुयि सउका मनिया-अडरु किहिनि।
उहु उड़िगा चाहिय पानी मा,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।"[2]

पिता जी ने सब कुछ बेचकर दो सौ रुपये लड़के को मनीआर्डर द्वारा विद्याध्ययन को भेजा और उसने सब चायपानी में बेकार खो दिया और उसके बाद—

"कालरु नकटाई सूटु हैटु,
बंगला पर पहुँचे सजे बजे।
नउकर न पायनि पोंचनि की,
लरिकउनू ए० मे० पास किहिनि।"[3]

---

१. महन्त रामायण—पृष्ठ २५.
२. चकल्लस—पृष्ठ २.
३. ,, पृष्ठ ८८.

ए० मे० पास करने के बाद पाँच रुपये की भी नौकरी न मिलना कितना हास्यास्पद है। मुकदमेबाजी का रोग ग्रामीणों में बुरी तरह घर कर गया था। ऐसे लोगों को आलम्बन बना कर "मुरहू चले कचेहरी का" शीर्षक कविता मे "पढ़ीस" जी ने अच्छा व्यंगय कसा है—

"बट्टू बाबा की बिटिया का,
इनका प्याता गरियायि दिहिसि।
बसि बजी फउजदारी तिहिते अब,
पहुंचे आप कचेहरी का।
दुयि बीसी रुपया उनन उआ,
लयि लिहिनि उकील बलहटरजी।
तारीख बढ़ायनि पेसी की,
तब पहुँचे आप कचेहरी का।
युहु दीखु मुकदमाबाजी का,
नसनस मा पइठ, पढ़ीसन के।
काली की किरपा कयिसि होय,
जो छुटिसि रोग कचहरी का।"[1]

"हम कनउजिया बाँमन आहिन" शीर्षक कविता में अनमेल तथा वृद्ध-विवाह पर व्यंग्य किया गया है। तीन बीबियाँ हैं और तेरह लड़के हैं लेकिन घर का क्या हाल है—

"दुलहिनी तीन, लरिका त्यारह,
सब मच्छा - भवनति पेटु भरवि।
घरमां मूसा डंडयि प्यालयिं,
हम कनउजिया बांमन आहिन।
बिटिया बइछीं बत्तिस की,
पोती बर्स अठारह की झलकीं।
मरजाद का झंडा झूलि रहा,
हम कनउजिया बांमन आहिन।"[2]

उस पर भी अभी विवाह की इच्छा है—

"चउथेपन चउथ बियाहे के,
बिद्दकरा बइठ घर का घेरे।

१. चकल्लस—पृष्ठ ८६.
२. चकल्लस—पृष्ठ ८६.

चउथे दिन चउथो चालु चलीं,
हम कनउजिया बांमन ग्राहिन।"[1]

पढ़ीस जी का व्यंग स्वाभाविक है। इसमें कटुता कम है। यह शर्करा-मंडित है।

पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी इस काल के प्रतिभा-सम्पन्न हास्य लेखक हुए हैं। इनका ग्रधिकतर हास्य वाणी-जन्य रहा है। इनको उस समय में "हास्यरसावतार" कहा जाता है। कहीं-कहीं इनकी कुछ प्रकाशित पंक्तियाँ मिल जाती हैं—

"किसी धर्म पर जब नहीं भक्ती, हुई मेम से तब ग्रनुरक्ती।
ईसा पर विश्वास जमाया, क्रिस्तानी से नेह लगाया।
ग्राय पिता ने लाट जमाई, फिरी राय तब मेरी भाई।
है मौका तब ऐसा ग्राता, बदल विचार सभी का जाता।"[2]

इसमें ग्रालम्बन ऐसा व्यक्ति है जो पाखंडी है, जो कहता कुछ है ग्रौर करता कुछ है। जिन लोगों के कोई सिद्धान्त नहीं है, स्वार्थ ही जिनका एक-मात्र सिद्धान्त है। मेम से प्रेम हो गया तो साथ में ईसाई धर्म में भी जग गया ग्रौर परिणाम-स्वरूप विचार बदल गये ग्रौर हो गये ईसाई। इसी तरह से एक विधवा-विवाह के पक्के समर्थक का किसी क्वारी लड़की से सगाई हो जाने पर उनके विचार कैसे बदल जाते हैं—

"फिर समाज को देखा भाला, नहीं यहाँ कुछ ग्रौर कसाला।
केवल ग्राँखें करके बन्द, खाग्रो पिग्रो करो ग्रानंद।
विधवा से लेने की शिच्छा, हुई चित्त में मेरे इच्छा।
पर क्वारी से हुई सगाई, फिरी राय तब मेरी भाई।
है मौका जब ऐसा ग्राता, बदल विचार सभी का जाता॥"[3]

इसी प्रकार श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने "वैद्यों" की मरम्मत की है—

"सेर भर सोने को हजार मन कण्डे में,
खाक कर छोटू वैद्य रस जो बनाते हैं।

---

१. चकल्लस—पृष्ठ ९०.
२. प्रेमा (हास्यरसांक) ग्रप्रैल १९३१—पृष्ठ ६७.
३. ,, ,, ,, ,,

लाला उसे खाते तो यम को लजाते,
और बूढ़े उसे खाते तो देव बन जाते हैं।
रस है या स्वर्ग का विमान है या पुष्प रथ,
खाने में दे नहीं स्वर्ग ही सिधाते हैं।
सुलभ हुआ है खैरागढ़ में स्वर्गवास,
लूट धन छोटूं वैद्य सुयश कमाते हैं।"[1]

वैद्य लोग भोले मरीज़ों को किस प्रकार बहका कर धन लूटते हैं और किस प्रकार उस कीमती रस को पीकर शीघ्र ही स्वर्ग लोक की यात्रा को प्रस्थान कर जाते हैं। यह चित्रण स्वाभाविक है तथा इसमें कटुता की मात्रा भी कम है।

निराला जी यद्यपि हास्य-कवि के रूप में प्रसिद्ध नहीं हैं किन्तु उनके साहित्य के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि व्यंग्य लिखने की जो असाधारण प्रतिभा उनमें विद्यमान है वह अद्‌भुत है। "परिमल" काल से ही कवि का इस ओर ध्यान रहा है। पंचवटी-प्रसंग में सूर्पणखा के चित्रण में गुप्त हास्य है। आगे कहीं-कहीं तीखे व्यंग्य भी है। यथा—

"छुट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवी-भोगियों की तो बात ही निराली है।"[2]

यहाँ देवों के साथ भोगियों कह कर खूब फबती कसी गई है। इसमें कवि का तात्पर्य व्यंग्य द्वारा दोनों से साभिप्रायत्व का आरोप करना है। "अनामिका" नामक उनके संग्रह में दम्भी और बगुला भगतों की खबर ली गई है—

"मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन,
झोली से पुए निकाल लिऐ,
बढ़ते कपियों के हाथ दिए,
देखा भी नहीं उधर फिर कर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया किया देर दानव,
बोला मैं "धन्य श्रेष्ठ मानव।"

---

१. प्रेमा (हास्यरसांक) अप्रैल १९३१—पृठ १०२.
२. परिमल—पृष्ठ १२.

अथवा

"ढ़के हृदय में स्वार्थ, लगाये ऊपर चन्दन,
करते समयनदीश-नन्दिनी का अभिनन्दन।" [1]

वृद्ध विवाह को आलम्बन बना कर "सरोज-स्मृति" शीर्षक कविता में निराला जी ने कैसा तीखा व्यंग्य लिखा है—

"ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके वर-कन्या अर्थ खेद।"

× × ×

"ये जो जमुना के से कछार,
पद फटे बिवाई के उधार।
खाने के मुख ज्यों, पिये तेल,
चमरोंधे जूते से सकेल।
निकले, जी लेते, घोर गन्द,
उन चरणों को मैं यथा अन्ध।
कल घ्राण-प्राण से रहित,
हो पूजूँ ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरजा विवाह,
करने की मुझको नहीं चाह।"

कवि का व्यँग्यात्मक कविता का पूर्ण विकास "कुकुरमुत्ता" में दिखलाई पड़ता है। सन् ४२ में जब यह रचना प्रथमबार प्रकाश में आई, लोग इसे देख कर चौंक पड़े। साम्यवाद का बिगुल सुन कर यहाँ का युवक-सम्प्रदाय जब नया-नया चैतन्य हुआ और अनेक पूँजीपति भी शुक्रिया इस सम्प्रदाय में सम्मिलित होने के लिए लालायित को उठे, तभी "कुकुरमुत्ता" प्रकाशित हुआ। अपने ढँग कीं अनोखी कृति है यह। इसमें शक नहीं। इसमें उन धनीमानी व्यक्तियों के प्रति तीखा व्यंग्य है जो केवल शौक से साम्यवादी बनने के उत्सुक थे।

साम्यभाव भीतर से जगना चाहिये, बाहर की नकल उसका कार्टून तैयार कर देती है। "कुकुरमुत्ता" के ही शब्दों में—

"कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता।"

---

१. अनामिका—पृष्ठ २८.

"कुकुरमुत्ता" सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि स्वरूप है। अस्तु, नवाब साहब ने अपनी पुत्री से "कुकुरमुत्ता" की तारीफ सुन कर माली को बुलाया और—

> **"बोले, चल गुलाब जहाँ थे, उगा,**
> **हम भी सब के साथ चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।**
> **बोला माली—"फर्माएं मुआफ खता",**
> **कुकुरमुत्ता उगायें नहीं उगता।"**

कुकुरमुत्ता एक दुधारी तलवार है। इसका व्यंग्य दो तरफ है। पहली ओर का संकेत ऊपर दिया चुका है। दूसरी ओर साम्यवादी नवयुवकों के स्वभाव की अशिष्टता तथा अहंकार पर व्यंग्य किया गया है। समाजवाद की बुराइयों की कवि ने समासोक्ति के आवरण में बड़ी सुन्दर आलोचना की है। पूरा मजा तो आद्यन्त पढ़ने पर ही आवेगा, अनुमान के लिए नीचे की पंक्तियाँ पर्याप्त होंगी—

> **"पहाड़ी से उठा सर ऐंठ कर बोला,**
> **अबे, सुन बे गुलाब,**
> **भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो आब।**
> **खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,**
> **डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।**
> × × ×
> **तू नहीं मैं ही बड़ा।"[१]**

निराला के व्यंग्य के क्षेत्र अगणित हैं। गम्भीर पुस्तक "तुलसीदास" में भी निराला अपनी व्यंग्यात्मिका प्रवृति को नहीं छोड़ सके हैं। रत्नावली का भाई जिस समय उसे लिवाने आया है, वह समझाता हुआ कह बैठता है—

> **"तुझसे पीछे भेजी जाकर,**
> **आई वे कई बार नैहर,**
> **पर तुझे भेजते क्यों श्रीवर जी डरते?"**

रतन के प्रति तुलसी के अत्यधिक मोह के साथ ज्यादा उम्र में विवाहित स्त्रियों के नैहर में जाकर पापाचार करने की ओर इशारा है। "रानी और कानी" में तो विधि की विडम्बना का मर्मस्पर्शी व्यंग्यात्मक विधान अपने

१. कुकुरमुत्ता—पृष्ठ ३३.

ढँग का अकेला ही है। एक लड़की है कानी, ऐसी कानी कुरूप। पर माँ ने प्यार से नाम रक्खा है, रानी—

"माँ कहती थी उसको रानी,
आदर से जैसा था नाम,
लेकिन उल्टा ही रूप,
चेचक-मुं-दाग, काला नाक चपटी,
गंजा सर एक आँख कानी।"

ऐसी कानी "रानी" का विवाह किससे हो ? स्त्रियों में ही तो समाज समस्त गुणों को अपेक्षित मानता आया है। किसी सर्वगुणसम्पन्न नारी का विवाह कैसे भी चरित्रहीन व्यक्ति से हो, कोई बात नहीं। पर स्त्री में एक भी अवगुण रहने से उसका विवाह असम्भव प्रायः है। माँ की दुःखद चिन्ता देख कर रानी बेचारी रोने लगती है। उसके प्रति लोग हमदर्दी दिखलाते हैं लेकिन उससे विवाह कोई नहीं करता। यह एक कठोर व्यंग्य है। सहानुभूति के साथ ऐसी अवस्था में उसकी वेदना को कुरेद-कुरेद कर उकसाते हैं। हाईकोर्ट के मदमस्त वकीलों की कैसी खबर ली गई है—

"दौड़े हैं बादल काले-काले,
हाई कोर्ट के बकले मतवाले,
चाहिए जहाँ वहाँ नहीं बरसे,
देखा धान सूखते नहीं तरसे,
जहाँ भरा पानी वहाँ छूट पड़े,
कहकहे लगाये टूट पड़े।"

आज के साहित्यिक भी कवि के व्यंग्य विषय बनने से न छूटे। अंग्रेजी साहित्य में टी० एस० ईलियट एक प्रयोगवादी कलाकार माने जाते हैं। कविता और आलोचना दोनों के क्षेत्र में उन्होंने एक क्रांति मचा दी है। अतीत को भग्न खण्डहरों का विश्रृंखल ढेर न मान कर एक जीवित परम्परा मानने का श्रेय उनको ही सर्व प्रथम प्राप्त हुआ है। उनके नवीन प्रयोगों को लक्ष्य करके निराला ने कहा है—

"कहाँ का रोड़ कहीं का पत्थर,
टी० एस० ईलियट ने जैसे दे मारा,

पढ़ने वालों ने जिगर पर रख कर,
हाथ कहा लिख दिया जहाँ सारा।"

आधुनिक युग में हास्य के आलम्बन बदल गये हैं। लीडर, चुनाव, चुँगी, चन्दा, आदि विषयों पर पर्याप्त व्यंग्य लिखा गया है। लाला भिखारी-मल के पैरोकार लाला को वोट दिलाने की वकालत करते हुए कहते हैं—

"बढ़-बढ़ के लाला ने दावत खिलाई,
कोठी हवेली दुकानें बनाई।
सीधे हैं जाने न छल-बल को,
वोट दे दो रे भाई भिखारी मल को।"[1]

पं० हरिशंकर शर्मा ने भी पं० प्रताप नारायण मिश्र की भाँति तृप्य-न्ताम् पर एक कविता "अल्हड़राम की रें रें" शीर्षक से लिखी है। हिन्दुओं की अकर्मण्यता एवं लापरवाही पर व्यंग्य करते हुए शर्मा जी ने लिखा है—

"हिन्दू सुनो खोलकर कान,
हो जाओ बिल्कुल वीरान।
ऋषि मुनियों को जाओ भूल,
काटो दैविक धर्मबबूल, तृप्यन्ताम्।"[2]

लोगों में अपने धर्म तथा प्राचीन ऋषियों की वाणी का मज़ाक उड़ाने में आनन्द आने लगा था। ऐसे लोगों पर ही शर्मा जी ने व्यंग्य कसा है। शर्मा जी ने समस्यापूर्ति के रूप में भी समाज के विभिन्न वर्गों के ऊपर व्यंग्य करते हैं। समस्या है "आता है याद हमको गुजरा हुआ जमाना"। एक कवि जी दूसरों की कविता चुराकर अपने नाम से छपवाता है वही उसी के मुखारविन्द से कहलवाया है—

"ले लेख दूसरों के निज नाम से छपाना,
आता है याद हमको गुजरा हुआ जमाना।"

ऐसे ही कौंसिल कवि कहते हैं—

"बनकर प्रजा का प्रतिनिधि कुछ भी न कर दिखाना,
आता है याद हमको गुजरा हुआ जमाना।"

---

१. चिड़ियाघर—पृष्ठ २५.
२. „ „ ५५.

"चपर पंच" शीर्षक कविता में स्थायी पंचों की खबर ली गई है—

"रकम दूसरों की गटकते रहो,
सटासट माला सटकते रहो।
बनो धर्म के धाम संसार में,
अड़ाओ सदा टाँग उपकार में।
पकड़ गाय दो चार चन्दा करो,
न पानी पिलाओ न चन्दा धरो।
स्वयं मौज मारो मजे में रहो।
भजो भोर गोपाल "शिव शिव" कहो।"[1]

उर्दू के कवि अकबर ने कहा था—

"लीडरों की धूम है और फौलोअर कोई नहीं"

यह धारा हिन्दी में भी बही। लीडर को आलम्बन बना कर बहुत से हास्य-लेखकों ने कविताएँ लिखीं। यह निर्विवाद सत्य है कि जिस प्रकार एक असफल कवि आलोचक बन जाता है उसी प्रकार एक असफल वकील लीडर बन जाता है। "अगुआ की आत्म कथा" शीर्षक कविता में शर्मा जी ने ऐसे ही एक असफल वकील पर व्यंग्य किया है। एक वकील साहब की जब न वकालत चली, न नौकरी मिली, न तिजारत चली तो अन्त में—

"अन्त में जगी देश की भक्ति,
मिली फिर मुझे अनोखी शक्ति।
देश दुर्दशा बखान बखान,
तोड़ने लगा निराली तान।"[2]

किन्तु सच्ची देश भक्ति हो तब तो ? वह एक बहाना था। देश-भक्ति का तो ढोंग मात्र था—

"मगर मैं चलता था वह चाल,
न होता बाँका जिससे बाल।
दिया उपदेश किया आराम,
यही था बस मेरा प्रोग्राम।"[3]

---

१. चिड़ियाघर—पृष्ठ ६८.
२. ,, ,, १३३.
३. ,, ,, १३३.

उन्हें कार्य कौन-सा करना पड़ता था—

"मिली है जनता रूपी गाय,
बड़ी भोली-भाली है हाय।
दुहा करता हूँ मैं दिन-रात,
न कपिला कभी उठाती लात।"[1]

शर्मा जी का व्यंग्य काफी मार्मिक है। काँग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। सदस्य बनने का चन्दा चार आना था। बहुत से लोग जो पहले अमन सभाई रह चुके थे वे भी काँग्रेस में घुस रहे थे। "चवन्नी का चमत्कार" शीर्षक कविता में शर्मा जी ने ऐसे लोगों की खबर ली है—

"जो देश भक्ति से द्रोह किया करते थे,
जो अमन-सभा की महिमा पर मरते थे।
जनता में निश-दिन भीरु-भाव भरते थे,
वे आज चवन्नी चंदे को भुगता कर,
बन रहे तपस्या-पुंज सकल गुण आकर।"[2]

शर्मा जी के व्यंग्य में निराला जी की गहराई और मार्मिकता तो नहीं है किन्तु साधारणत: यह व्यंग्य उच्चकोटि का कहा जा सकता है। छन्द पुराने और सरल हैं। भाषा भी मार्जित है। शर्मा जी का लक्ष्य समाज सुधार था और उसमें वह पर्याप्त मात्रा में सफल भी हुए हैं। जिस प्रकार भारतेन्दु जी रीति काल तथा भारतेन्दु काल के संधि-स्थल पर खड़े दिखाई देते हैं ठीक उसी प्रकार शर्मा जी द्विवेदी काल तथा आधुनिक काल के सन्धि स्थल पर खड़े दिखाई देते हैं। उनमें प्राचीन परिपाटी के छन्द कवित्त और सवैये मिलते हैं तो आधुनिक छायावादी ढंग की कविता के छन्द भी मिलते हैं।

आधुनिक व्यंग्य लेखकों में बेढब बनारसी का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अँग्रेजी शब्दों के प्रयोग से हास्य उत्पन्न करने का प्रयास किया है। ये उर्दू छन्दों से अधिक प्रभावित हैं तथा गज़ल और शेरों में ही अधिक कविताएँ लिखी हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'बेढब की बहक" की भूमिका में यह स्वीकार करते हुए कि हास्य से संसार में बड़े-बड़े सुधार और उपकार हुए हैं, लिखा है, "मेरा यह सब कुछ लक्ष्य नहीं है। जैसे कुछ लोग कला कला के लिए की दुहाई देते हैं, मैं विनोद विनोद के लिए लिखता हूँ।" व्यंग्य के बारे में अपने विचार

---

१. चिड़ियाघर—पृष्ठ १३३.
२. पिंजरापोल—पृष्ठ ११६.

प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है, व्यंग्य हास्य की आत्मा है, बिना व्यंग्य के काव्य कानी सुन्दरी के समान है, इसलिए स्थल स्थल पर व्यंग्य का पुट इसमें मिलेगा परन्तु वह किसी ओर लक्षित करके नहीं लिखा गया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ ये रचनाएँ शिष्ट तथा श्लील हैं। हम बेढब जी के इस कथन को सत्य नहीं मानते। व्यंग्य सोद्देश्य होता है और उसमें निन्दा या सुधार की भावना अवश्य होती है, नहीं तो व्यंग्य-व्यंग्य नही रहता। जहाँ तक श्लीलत्व तथा अश्लीलत्व का प्रश्न है यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि बेढब जी अश्लीलता के दोष से बच नहीं पाये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अन्दर का यह चोर ही उनसे पेशगी सफाई दिलवा देना चाहता है। मर्म के क्षण व्यंग्य की जड़ है। अकबर का कलाम इसलिए इतना ज़ोरदार हुआ कि उसमें अपने जमाने की छोटी से छोटी बात को भी भाँप लेने की अद्भुत शक्ति थी जिसके सहारे वह हमें चौका देता था। बेढब में पर्यवेक्षण की अच्छी शक्ति है। उन्होंने समाज में प्रचलित दूषणों को आलोचक की पैनी निगाह से देखा है और फैशन परस्ती, बेकारी, नौकरी के लिए दौड़, हाकिमों की खुशामद, विदेशी सभ्यता की गुलामी आदि विषयों पर मार्मिक व्यंग्य लिखे हैं। नकली खद्दर-धारियों पर बेढब जी ने लिखा है—

"बाहर सभा में देखिये खद्दर का ठाट है,
घर में मगर विलायती सब ठाट बाट है।
मिलते हैं चुपके-चुपके गवर्नर से लाट से,
लेक्चर में मुँह पे रहता सदा बायकाट है।" [1]

जब से मिनिस्टरों का राज्य आया, व्यंग्य लेखकों के ये भी शिकार बने। अप्रत्यक्ष रूप से मिनिस्टरों पर तथा प्रत्यक्ष रूप से मिनिस्टर-पूजकों पर बेढब जी ने कैसी मीठी चुटकी ली है—

"उन्हें दुनिया से क्या मतलब, मिनिस्टर के जो बन्दे हैं,
कहीं वह आ गये तो पार्टी औ खूब चन्दे हैं।
किसी स्कूल विद्यालय का डेपूटेशन जो ले जाओ,
तो कहते हैं कि भाई आजकल व्यापार मन्दे हैं।" [2]

एक शेर में एसेम्बली में घुसने वालों पर छीटाकशी की है—

---

१. बेढब की बहक—पृष्ठ २.
२. " " " ९८.

"कुछ चाटने की चीज़, वहाँ पर जरूर है,
हैं घुस रहे जो लोग असेम्बली के द्वार में ।"[१]

बेढब जी अपने मिनिस्टर के साथ शीर्षक गज़ल में मिनिस्टर महोदय का परिचय तथा गौरवगान करते हैं—

"कैसे पहचानते भला मुझको,
वह मिनिस्टर के साथ आये थे ।
आज वह हो गये मेरे मालिक,
जिनसे जूते कभी सिलाये थे ।
हो गया अस्पताल घर उनका,
कितने रोगी वहाँ पे आये थे ।"[२]

रोगी शब्द में कैसी सुन्दर व्यंजना है । जिस प्रकार रोगी अपने रोग निवारण के लिए अस्पताल जाते हैं उसी प्रकार अपने अपने स्वार्थ लेकर मिनिस्टरों के घर पर लोग छा जाते हैं । अधकचरे साहित्यकार पर एक शेर देखिये—

"पढ़ के दर्जा तीन तक वे बन गये साहित्यकार,
और मम्मट से वह अपने को समझते कम नहीं ।"

बेकार ग्रेजुएट को आलम्बन बना कर उसकी विचित्र वेष भूषा के संचारियों का पुट देकर आपने लिखा है—

"पहनकर सूट डिगरी लेके क्लर्की खोजते हैं हम,
पढ़ी दस साल अंग्रेज़ी, यही अंजाम है इसका ।"

फैशन के गुलामों को आलम्बन बना कर बेढब जी लिखते हैं—

"बड़ी इन्सल्ट है मेरी जो कहना बाप का मानूँ,
नहीं इंगलिश पढ़ी और रोब वह इतना जमाते हैं ।
न बदरीनाथ जाते हैं, न अब जावें हैं वह काशी,
मिसों के दरशनों को लंदनों पैरिस वह जाते हैं ।"[३]

ब्रिटिश हुकूमत के समय जो सरकार-परस्त होते थे, वे साहब की चिलम भरते थे । उन्हीं को ही टाइटिल दिये जाते थे और वे ही आनरेरी

---

१. बेढब की बहक—पृष्ठ ८६
२. ,, ,, ७४.
३. ,, ,, ३३.

मजिस्ट्रेट बनाये जाते थे। ऐसे लोगों पर बेढब जी ने कैसा करारा व्यंग्य कहा है—

"पीके जूठी लाट साहब की शराब,
आनरेरी वह मजिस्ट्रेट हो गए।"[1]

आज के नौजवानों की जनानी सूरत और आचार-हीनता पर बेढब जी लिखते हैं—

"नजाकत औरतों सी, बाल लम्बे, साफ मूँछें हैं,
नए फैशन के लोगों की अजब सूरत जनानी है।
पता मुझको नहीं कुछ इंडिया में भी है लिटरेचर,
मगर है याद सारा मिल्टनो-बेकन जबानी है।
जनेऊ इनकी नेकटाई है पाउडर इनका टीका है,
नये बाबू को ह्विस्की आजकल गंगा का पानी है।"[2]

कहीं कहीं पर बेढब जी अश्लील हो गये हैं। यथा—

"हमारे नौजवाँ शैदा हुए इतने मिठाई पर,
मुहासा भी मिसों के मुँह का उनको रामदाना है।
नयी तालीम का बेढब यही निकला नतीजा है,
चचा के सामने लेडी लिए लेटा भतीजा है।"[3]

कान्तानाथ पांडे चोंच भी आधुनिक कालीन लेखकों में अग्रगण्य है। चोंच ने भी आधुनिक कुरीतियों पर सामयिक व्यंग्य लिखे हैं। इनका हास्य स्वाभाविक है। इन्होंने बेढब जी की भाँति अंग्रेजी शब्दों के अत्यधिक प्रयोग का कृत्रिम साधन उपयोग में नहीं लाया। आज का युग आत्म विज्ञापन का युग है। अपनी आत्म विज्ञापन शीर्षक कविता में ऐसे ही एक खोखले लीडर की खबर ली गई है—

"मेरा भाषण भूषित करता अखबारों का है प्रथम पृष्ठ,
मेरे पिट्ठू कहते फिरते हैं याज्ञवल्क्य ये हैं वशिष्ठ।
पर सचमुच क्या है बतला दूँ रक्खा है मैंने क्लर्क एक,
जो एम. ए. है शास्त्री भी है, लिखता मेरे भाषण अनेक।

---

१. बेढब की बहक—पृष्ठ १७.
२. ,, ,, १०.
३. ,, ,, १०.

मुझको तो है हर भाँति अहो,
काले अक्षर भैंसे समान;
मैं हूँ लीडर मैं हूँ महान् ।"[1]

फैशन परस्त युवकों को अधिकतर आधुनिक व्यंग्य लेखकों ने आलम्बन बनाया है—

"मूँछ की गायब निशानी खूब है,
कमर की पतली कमानी खूब है ।
वाह मिस्टर मुलमुले भण्डारकर,
आपकी सूरत जनानी खूब है ।"[2]

सार्वजनिक संस्थाओं में घुसकर चन्दा जमा कर अपने भवन बनाने वाले महानुभावों पर भी चोंच जी ने व्यंग्य वाण छोड़े है—

"जब कि औरों ने गोलियाँ खायीं,
धूप में हो खड़े पिकेटिंग की ।
मैं था चन्दा वसूलता जाकर,
घूंस से घर जमी बना लिया मैने ।"[3]

इसी विषय को लेकर उन्होंने एक और कटूक्तिपूर्ण दोहा लिखा है—

"चन्दा और पद ग्रहण की, जब लग मन में खान,
पटवारी और पन्त हैं दोनों एक समान ।"[4]

पुरानी परिपाटी के काव्यों में बचनेश जी का स्थान मुख्य है । इन्होंने कवित्त और सवैयों द्वारा काफी व्यंग्य-वाणों की वर्षा की है । एक महा मोटे अभिमानी सेठ का चित्रण देखिए—

"हाथ न उठाते न प्रणाम को नवाते माथ,
फूल गया पेट है न ठौर से हैं टरते ।
गद्दी पर तकिया सहारे धरे रहते है,
न बिना सवारी कभी एक पग धरते ।

---

१. खरीखोटी—पृष्ठ ६९.
२. ,, ,, ८८.
३. खरीखोटी—पृष्ठ १०३.
४. ,, ९९.

भाखें बचनेश क्या न आखें उठा देखते हैं,
बोलते न कुछ मुँह से न बात करते।
मार गई लाला को मिजाज की बिमारी,
सिर्फ त्योरी बदले से जानदार जान परते।"[१]

बचनेश जी ने मनोभावों का चित्रण करके भी व्यंग्य लिखा है। लाला लोगों की कायरता प्रसिद्ध है। कांग्रेस की उस अवस्था का जब लोग तिरंगा झंडा देख कर गिरफ्तार कर लिये जाते थे, स्मरण करते हुए लाला जी की होली के अवसर पर की गई प्रार्थना सुनिये—

"झोंकि लेंइ धूरि औरि उलीचि लेंइ कीच चाहे,
फगुआ है तारकोल मुँह में चुपरि लेंइ।
बाजो हरि नंगो करि स्वांग हूँ बनाइ लेंइ,
बचनेश और जौन चाहें तौन करि लेंइ।
लाला कहें बरस भरे का तिउहार आज,
रोइहै मेहरि लरिकन आप धरि लेंइ।
डारै मत पीरो हरो रंग धुतिया पै,
जानि झंडा है तिरंगा कुतवाल न पकरि लेंइ।"[२]

इनकी "बम का गोला" शीर्षक कविता में उत्कृष्ठ व्यंग्य प्रस्फुटित हुआ है—

"बम बम का शब्द सुना बंगले के पास ही में,
चोख उठी मेम सिर साहब का तमका।
फोन किया लेन को तो बचनेश फौरन ही,
पुलिस समेत कप्तान आय धमका।
घेर कर बाबा की कुटी की ली तलाशी,
वहाँ छिपा पत्तियों में कुछ गोल गोल चमका।
हाथ से टटोला तब जाना बम बोला साधु,
लिंग है ये भोला का न गोला यहाँ बम का।"[३]

ये चमत्कारवादी कवि हैं। इनके कवित्तों में अधिकतर चमत्कारपूर्ण उक्तियों में हास्य का सृजन किया गया है। बेधड़क बनारसी भी आधुनिक

---

१. सरस्वती—अगस्त १९५४.

२. सरस्वती—अगस्त १९५४.

३. सरस्वती—अगस्त १९५४.

हास्य के लेखकों में प्रमुख हैं। इन्होंने भी सामाजिक एवं राजनैतिक व्यंग्य लिखे हैं। इन्होंने भी रुबाइया, शेर, आदि उर्दू के छंदों का प्रयोग किया है। बेढब बनारसी की तरह अंग्रेज़ी शब्दो के प्रयोग में हास्य उत्पन्न किया है। आजकल के नौजवानों पर इनका व्यंग्य देखिये—

"देखिए यह सीन कितना ग्रैंड है,
देह है या साइकिल स्टैंड है।
हो भले सूरत हमारी इण्डियन,
दिल हमारा मेड-इन-इंगलैंड है।"

"हमारे नौजवानों की जवानी देखते जाओ" शीर्षक स्वतंत्र कविता में आधुनिक नवयुवकों पर और भी व्यंग्य कसे गये है—

"हमारे नौजवानों की जवानी देखते जाओ,
नई चप्पल हुई जैसे पुरानी देखते जाओ।
हुए हैं सूखकर ऐसे गोया टेनिस के रैकेट हैं,
उछलती बाल जैसी जिन्दगानी देखते जाओ।
धँसी आखें हैं चिपके गाल निकली नार चिपटा मुँह,
यही सौन्दर्य की है चौमुहानी देखते जाओ।
लड़े दिल से हुए घायल गिरे चौचक मरे कुछ कुछ,
यही बेधड़क इनकी पहलवानी देखते जाओ।"[1]

"दिल में मेरे यह कसाला रह गया" शीर्षक कविता में इन्होंने कई भयानक असंगतियों पर व्यंग्य कसे हैं—

बेकारी पर—"अब तो डिप्लोमा सभी बेकार हैं,
बाँधना उनमें मसाला रह गया।"

सिनेमा पर—"भीड़ मस्तों की सिनेमा में घुसी,
रह गई मस्जिद शिवाला रह गया।
जिन्दगी में यह सिनेमा का असर,
मार डाला मार डाला रह गया।"[2]

आजकल के स्वार्थी मित्रों से बेधड़क जी परेशान हैं, अपने इस भाव को उन्होंने एक शेर में व्यक्त किया है—

---

१. धर्मयुग होलिकांक—मार्च १९५३.

२. " " "

"हास्य रस में ही लिखा करता हूँ मैं,
और यों मनहूसियत हरता हूँ मैं।
नाम मेरा हो भले ही बेधड़क,
दोस्तों से बहुत ही डरता हूँ मैं।
'एक्सक्यूज़ मी' कहते हुए घर में घुसे,
'प्लीज़' कह कर माँग ली मेरी किताब।
थैंक्यू कह कर वे चलते बने,
आजकल की दोस्ती ऐसी जनाब।"[1]

बेधड़क जी का व्यंग्य अधिकतर सामाजिक है। उसमें तिक्तता का अंश अपेक्षाकृत कम है। श्री गोपाल प्रसाद व्यास इस क्षेत्र में पत्नीवाद लेकर आये। इनकी अधिकतर कवितायें पत्नी पर आधारित हैं। पत्नी को आलम्बन बना कर हास्य कविता लिखना उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता। दूसरे उसमें नीरसता आने की भी आशंका बराबर बनी रहती है। एक ही आलम्बन, एक ही प्रकार की बातचीत, एक ही प्रकार के शब्द कुछ घिसे घिसाये से लगते हैं। इनके काव्य में खसम-लुगाई के झगड़े ही अधिकतर मिलते हैं। यह देवर-भाभी के प्रचलित प्रकरण का रूपान्तर मात्र है। इसमें सहज हास्य न होकर कृत्रिमता अधिक है। स्नान न करने वाले आदमियों को लेकर इनका एक आत्मस्थ व्यंग्य देखिये। कवि अपनी पत्नी से स्नान न करने के औचित्य को सिद्धान्त रूप से बताता है—

"तो तुम कहती हो—मैं स्नान,
भजन पूजन—सब किया करूँ।
जो औरों को उपदेश करूँ,
उसका खुद भी व्रत लिया करूँ।
प्रियतमे, ग़लत सिद्धान्त,
एक कहते हैं दूजे करते हैं।
तुम स्वयं देख लो युद्ध भूमि में,
सेनापति कब मरते हैं?"[2]

आजकल के तथाकथित कवियों पर व्यंग्य करते हुए व्यास जी ने लिखा है—

---

१. धर्मयुग होलिकांक—मार्च १९५३.

२. अजी सुनो—पृष्ठ १७१.

"आखिर हिन्दी का लेखक था हो गई जरा सी वाह-वाह,
दो चार किताबें छपी कि बस, गुब्बारे जैसा फूल गया।
फिर क्या था बातों बातों में,
कवि कालिदास को मात किया।
खा गये सूर तुलसी चक्कर,
जब मैंने दिन को रात किया।
और इस युग के कवि अरे राम,
वह तो सब निरे अनाड़ी हैं।"[1]

कहीं कहीं इनकी कविता केवल तुकबन्दी और शब्दों के साथ खिलवाड़ लगती है, यथा—

"तो बन्दा कविता भूल गया,
मैं अपने में ही फूल गया।
सारा आदर्श फिजूल गया,
मैं कविता लिखना भूल गया।"[2]

इनकी कविता में रस ढूँढना रेगिस्तान में आम्रवृक्ष खोजना है। हास्य में नहीं, गम्भीरता से मैं उनकी भूमिका में लिखी हुई उनकी पत्नी की उनकी कविता के बारे में सम्मति से बिल्कुल सहमत हूँ—

"मेरी पत्नी के विचार से कविता, खास तौर पर मेरी तुकबन्दी, बिल्कुल वाहियात चीज़ है।"

कहीं-कहीं पर व्यास जी ने हिन्दी में चिरकीन की याद दिलाने का प्रयास किया है, यथा—

"वे आठ बजे पर उठते हैं,
उठते ही चाय मंगाते हैं।
फिर लेकर के अखबार,
"लैट्रिन" में सीधे घुस जाते हैं।
जब घड़ी बजाती साढ़े नौ,
तब कहीं पखाने जाते हैं।"[3]

---

१. अजी सुनो—पृष्ठ १७१.
२. ,, ,, ३२.
३. ,, ,, ७४.

इधर रमई काका अवधी भाषा में अच्छा व्यंग्य लिखते हैं। "पढ़ीस" जी की "चकल्लस" की चर्चा पीछे की जा चुकी है। रमई काका ने इधर अधिकतर ग्रामीण समाज तथा शहरी समाज के वैषम्य पर व्यंग्य लिखे हैं। मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग से हास्य सृजन इनकी शैली की विशेषता है। "रमई काका" की एक प्रसिद्ध कविता है जिसका शीर्षक है "धोखा"। आधुनिक सभ्यता और फैशन परस्तों पर इसमें बड़ा चुटीला व्यंग्य लिखा गया है। एक ग्रामीण शहर में पहली बार जाता है। संस्कार से जिसे वह जनाना समझता है, शहर में वही उसे मर्दों का रूप दिखलाई देता है। तब उसे धोखा हो जाता है—

"म्वाछन का कीन्हे सफाचट, मुँह पाउडर और सिर केश बड़े,
तहमद पहिने अंडी ओड़े, बाबू जी बाँके रहे खड़े।
इन कहा मेम साहब सलाम, उइ बोले चुप बे डैमफूल,
मैं मेम नहीं हूँ साहेब हूँ, हम कहा फिरिउ धोखा होइगा।"[1]

आगे उन्हें इसी प्रकार के धोखे और हुए हैं। इनकी व्यंग्य की अपनी शैली है और उसमें वे सफल हुए हैं। अंग्रेजी सभ्यता ने हमारे पारिवारिक बन्धन बहुत कुछ ढीले कर दिये। स्वतन्त्रता की शौक में पत्नी भी स्वतन्त्र हो गई और पति महाशय भी स्वतन्त्र हो गये। "रमई काका" ने ऐसे ही एक आधुनिक परिवार के नौकर से अपनी मालकिन का चित्रण करवाया है—

"मेम साहब के सुनो हवाल, चलै उइ अउरौं उल्टी चाल।
न साहेब ते सूधे बतलायं, गिरी थारी अइसी झन्नायं।
कबौं छुउकनु जइसी खड़क्यांय, पटाका अइसी दगि दगि जायं।
कहे सरकार कचहरी जांय अकेले मां तब मगन दिखायं।
फूनमां कोहू ते बतरायं, कोयलिया मिठ-बोलनी हुइ जांय॥"[2]

और जब नौकर उनसे इस व्यवहार का कारण पूछता है तब वे कहती हैं—

"सुनो वह नौकर है उरदास, कहा उन डैमफूल बदमास,
अरे तुइ नौकर है महा गँवार, न जाने अंग्रेजी बेउहार।"[3]

---

१. बौछार—पृष्ठ ६८.
२. ,, ,, ६५,
३. ,, ,, ६५.

रमई काका ने अधिकतर आधुनिक फैशन परस्तों और पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने वालों पर ही छींटेकसी की है। पति अपटुडेट है और पत्नी सीधी-साधी भारतीय युवती, घर में क्या हाल होता है—

"लरिकउ कहिन वाटर दइवे,
बहुरेवा पाथर लइआइ।
यतने मां मचिगा मगमच्छस,
यह छीछाल्यादरि ह्याखौतो।
बनिगा भोजन तब थरिया मां,
उन लाय धरे छूरी कांटा।
डरि भागि बहुरिया चउकाते,
यह छीछाल्यादरि ह्याखौ तो।"[1]

क्या गांवों में और क्या शहरों में बूढ़े तो अपना विवाह रचा ही लेते हैं। ऐसे ही एक "बुढ़उ का बियाहु" शीर्षक कविता में रमई काका की उक्ति देखिए—

"दुलहा की दुलहा का बाबा,
जेहि मुड़े मौरु धरावा है।
यहु करैं वियाहु हियाँ कहू से,
मरघट का पाहुनु आवा है।
ओंठें पर याको म्वाछ नहिन,
यहि सफाचट्टु करवावा है।
बसि जाना दुसरी दुलहिनि कै,
यहु तेरहीं करकै आवा है।"[2]

आजकल के युग में क्या कोतवाली, क्या स्कूल, क्या अस्पताल, गरीब की सुनवाई कहीं नहीं होती है। इसी व्यवहार पर एक कठोर व्यंग्य रमई काका ने 'पेट की पीर' नामक कविता में किया है। एक ग्रामीण अपने पेट के इलाज के लिए शहर के अस्पताल में दाखिल होना चाहता है तो उसे क्या उत्तर मिलता है—

"फिरि मेडिकल कालिज गयन,
डाक्टर कहिनि नहीं खटिया खाली।

१. बौछार—पृष्ठ ४१.
२. बौछार—पृष्ठ २८.

हम कहा अरे सरकारों मां का,
खटियन के हैं कंगाली।
उठइ देहाती कहि जरि लियिन,
फिर कहिनि हमारा जाव घरै।
बिन खटिया भरती नहीं होत है,
जिये चहै कोउ चहै मरे।"[1]

लेकिन जब वह "सिफारिशी" चिट्ठी लेकर पहुँचता है तब—

"चट लेटि गयन होइ कै निरास,
मुलु चिट्ठी लइ मलिकन वाली।
फिरि आमन तब भरती होइगेन,
और खटिया भै चटपट खाली।"[2]

आधुनिकमतम व्यंग्य लेखकों में रमई काका का स्थान अद्वितीय है।

कुंज बिहारी पांड़े ने भी आधुनिक विषमताओं पर सुन्दर व्यंग्य लिखे हैं। आजकल का युग नेताओं का है। "मंत्री जी की जबानी" शीर्षक कविता में उनका व्यंग्य देखिये—

"कसम तुम्हारी खाकर कहता, मैं मन्त्री बन कर पछताया,
जितनी मांगे हुई कभी उससे कम नहीं दिये आश्वासन।
एक-एक दिन में कितनी ही प्रदर्शिनी परिषदें सम्हालीं,
जहाँ-जहाँ पहुँचा दे भाषण उजली करदीं रातें काली।"[3]

नकली नेता के खोखले पर तथा धूर्तता का पर्दा-फास कर दिया गया। वे नेता कैसे हुए यह उनकी जबानी सुनिये—

"कभी दबाया पूंजीपति को, और कभी मजदूर दबाये,
इस प्रकार दोनों के बीच पड़ा हूँ अपनी टाँग अड़ाये।
वह शोषक है और नहीं मैं पोषक उनका किसे बताऊँ,
करता रहता यत्न सन्तुलन शोषक शोषित में रस पाऊँ।"[4]

---

१. मिनसार—पृष्ठ ८३.

२. ,, ,, ,,

३. उपवन—पृष्ठ ३२.

४. ,, ,, ३३.

पाण्डेय जी में पर्यवेक्षण शक्ति यथेष्ट है। वह सामाजिक कुरीतियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं और उन दूषणों को व्यंग्य की पैनी छुरी से तराशते हैं। "दैनिक पत्र" की आत्म-रक्षा के व्याज से उन्होंने अधकचरे सम्वाद-दाताओं पर महाव्यंग्य प्रहार किया है—

"खाली हल्ला सुन कर तीन मरे नौ घायल" लिख सकता हूँ,
ज्ञात हुआ विश्वस्त सूत्र जी से जब उतर रहे थे "बस" से।
छंगू की औरत ने पीटा एल० पी० शर्मा को चप्पल से,
कितनी उजली खादी पहिनों पर मैं धूल झाड़ सकता हूँ" [1]

पाण्डेय जी की मुहावरेदानी और भाषा की सजावट अपनी चीज़ है। सिनेमा गृह भी आधुनिक युग की देन है। देश के नवयुवकों का सभी फिल्मों के प्रभाव से कैसा नैतिक पतन हो रहा है यह किसी से छिपा नहीं है। युग की गंदगी दूर करने तथा समाज को स्वच्छ धरातल पर प्रतिष्ठित करने का व्यंग्य आज आवश्यक है। "सिनेमा गृह" कविता में पांडेय जी ने क्या ही चुटकी ली है—

"पर्दे के भीतर की चीजें हैं पर्दे के ऊपर दिखती,
साथ रजतपट के कितने ही हृदय पटों में फिल्में चलतीं।
छूते नहीं, जलाते जलते अंगारों से अंग यहाँ हैं,
वैवाहिक स्वातंत्र्य-सूत्र की गुप चुप यहाँ ग्रन्थियाँ लगती।
उमड़े नीर भरे मेघों के दिल को चीर बिजलियाँ मिलती,
जहाँ काँपते हैं स्पन्दन और बिलखती मौन व्यथायें।" [2]

सिनेमा गृह पर व्यंग्य लिखने वाले दूसरे प्रसिद्ध कवि है, "वंशीधर शुक्ल"। एक देहाती सिनेमा में जाता है। पहले तो वह आश्चर्यान्वित हो जाता है लेकिन जब सिनेमा शुरू हो जाता है तो वह देखता है—

"कोइ नंगी कोइ अधनंगी, कोई सुघर कोई विसख परी,
कोइ उजलि-उजलि कोइ लालि-लालि, कोउ कागपरी कोइ सुवापरी।
कहुँ बहिनि चली भाई दौरा, सूने मकान मां मेलु किहिसि,
कहुँ गुरू चले चेली मिलिगै, देवर भाभी कस खेलु किहिसि।
कोई नद्दी कोई जंगल मां, प्रेमी प्रेमिक मेलाय रहे,
इन पर ना कोई दफा लगै, सब हाकिम देखि सिहाय रहै।" [3]

---

१. उपवन—पृष्ठ ११.
२. उपवन—पृष्ठ ११.
३. माधुरी कविता अंक

आगे चलकर सिनेमा से पड़ते बुरे नैतिक प्रभाव को देख कर कवि का व्यंग्य और भी तीखा हो जाता है और वह घृणा तथा क्रोध से कहने लगता है—

"जब ध्यान धरै न तौ जान परा, यह छारि-छारि अंग्रेजी है,
भारती धरमु मारे झौंकसि बस देखति कँपी करेजी है।
रहि-रहि मन मां गुस्सा आवै रहि-रहि दुगनी आगी भड़कै,
जो तनिक देर का होत नवाबी, करित हार दुह-दुह बढ़िकै।" [1]

बंशीधर शुक्ल की आस्था भारतीय संस्कृति में ही रही है। उन्होंने फैशन पर भी कठोर व्यंग्य लिखा है। अपनी "शंकर वेदना" कविता में पहले तो गम्भीरतापूर्वक शंकर का महत्व वर्णित है, तत्पश्चात् आधुनिक युग में उनकी स्थिति बता कर अंग्रेज़ी फैशन पर अप्रत्यक्ष रूप से कटूक्ति की गई है—

"सेतिव कोउ समाज, ऋषी की पदवी पैतिउ,
होतिउ शिखा विहीन, अली आलिम कहवैतिउ।
गोरा होति सरूप लाहिकी गद्दी देतेन,
होतिउ डिग्रीदार चट बापू कहि देतेन।

सब गुन ह्वै फैसन तजे, घूमि रहेउ फटहा बने,
को मानें नेता तुम्हें, नेहरू जी के सामने।"

इधर हास्य रस युक्त चुटकीले दोहे लिखने में देहाती जी ने यथेष्ट कीर्ति प्राप्त की है। फैशन पर उनका एक व्यंग्य देखिए—

"कारे मुख पर पाउडर की शोभा सरसाय,
मनौ धुवाना भीति पै कलई दीन पोताय।"

लाला लोगों की अर्थ लोलुपता तथा गरीबों के खून चूसने की प्रवृत्ति पर कैसा तीखा व्यंग्य है—

"छीलें पेड़ बबूर के तो अति बाढ़त गोंद,
काटे पेट गरीब के तो अति बाढ़त तोंद।"

इसी प्रकार दम्भियों तथा मूर्खों पर जो फैशन के बल पर समाज में प्रतिष्ठा पाने की लालसा रखते हैं और अपने भोले भाइयों पर रौब जमाते हैं उनको लेकर देहाती जी लिखते हैं—

"नहिं विद्या नहिं बुद्धि बल, बिन धन करत कमाल,
खाली मूँछ मुड़ाय कै, बनत जवाहर लाल।"

---

१. माधुरी कविता अङ्क

देहाती जी ने शब्दों की खिलवाड़ नहीं की है बल्कि उसमें उपमा अलंकार इत्यादि का अच्छा प्रयोग किया है। आपके दोहे चुभते हुए और उनकी पैनी दृष्टि के द्योतक हैं। कवि 'भुशण्डि जी' ने भी सामयिक प्रसंगों पर सुन्दर व्यंग्य लिखे हैं। उनकी कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। कण्ट्रोल के जमाने में राशन-कार्ड पर व्यंग्य देखिए—

"आज अन्नदाता तुम्हीं, हमारे लार्ड,
बारम्बार प्रणाम है, तुम्हें राशनिंग कार्ड।"[१]

कण्ट्रोल के युग में ऐसा अंधेर खाता था कि जब रिश्वत और सिफारिश से सिनेमा और बड़ी बड़ी कोठियाँ तो आनन फानन में बन जाती थीं किन्तु गरीबों के चुचाते मकानों को सीमेन्ट भी नहीं मिल पाती थी—

"महलों पर होते महल खड़े,
बन रहे सिनेमा बड़े बड़े।
पर कुटियों के सामान हेतु,
कानूनी रोड़े अधिक अड़े।"

आधुनिक शिक्षा पद्धति पर तथा पढ़ाई के गिरते हुए स्तर पर भुशण्डि जी ने तीखा व्यंग्य कसा है—

"अब बच्चों के कोर्स भी, ऐसा,
ज्यों चूहे की पीठ पर है गणेश भगवान।
जिसे देखकर गारजियन, बा देते हैं खीस,
होटल के बिल सी हुई, अब पढ़ने की फीस।
लड़के तो स्कूल में छीला करते घास,
उनको ट्यूटर चाहिए, घर में बारह मास।"[२]

पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी भी प्रसिद्ध व्यंग्य लेखकों में हैं। उन्होंने अधिकतर साहित्यिक व्यंग्य लिखे हैं। उनकी पर्यवेक्षण शक्ति बहुत ही व्यापक है। आप साहित्यिक व्यंग्य लिखने में सिद्धहस्त हैं। पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कविता में भविष्य शीर्षक एक लेख में कमल का फूल और करेले के फूल को कवि के दृष्टिकोण में एक बताया गया था, उस पर उन्होंने एक व्यंग्य लिखा था "करेला-लोचनी"—

---

१. जमालगोटा—पृष्ठ २.
२. जमालगोटा—पृष्ठ ६.

"कैसे आज बताऊँ लोचन ?
कमल नयन यदि कहता हूँ,
तो कहलाऊँगा दकियानूसी।
मृगलोचनी बताता हूँ तो,
बन जाऊँगा भक्षक भूसी।"[1]

बहुत सोच विचार के बाद कवि आँख के लिए एक उपमा ढूंढ़ निकालता है—

"सदृश करेला आँख तुम्हारी,
वैसी करुई,
वैसी तीखी।
वैसी नोकें प्रिये तुम्हारी,
और जब कभी क्रोधित होती,
तब तुम नयन फाड़ हो देती।
नीम चढ़े तब निम्ब करेले की उपमा पूरी कर देती॥"[2]

हिन्दी के एक प्रसिद्ध पत्रकार पर व्यंग्य करते हुये उन्होंने लिखा है—

"मुझे उम्मीद है कि कामयाब होंगे,
ढोल निज कीर्ति का बजाते सदा जाइए।
मित्रों की सम्मति मंगा कर हजारों ही,
टेस्टिमोनियल की पूरी बैटरी लगाइये।"

अपने मित्रों की सम्मतियों को छाप कर अपने को ऊँचा बताने की कुप्रथा पर करारा व्यंग्य है। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे", "दिमागी ऐयाशी" लिख कर एक साहित्यिक महानुभाव ने आधुनिक कवियों पर काफी व्यंग्य कसे थे। चतुर्वेदी जी ने स्वयं उनकी पोल खोल कर रख दी है—

"सस्ती देश भक्ति पूर्ण हलकी सी कविता लिख,
वाह वाही लूटना अमानसिक ऐयाशा है ?
समयानुसार तुकबंदियाँ किसानों पै लिख,
पैसे का कमाना क्या दिमागी ऐयाशी नहीं।"[3]

---

१. छेड़छाड़—पृष्ठ २२.
२. ,, ,, ४२.
३. ,, ,, ६३.

हिन्दी में आलोचकों की बाढ़ बहुत दिनों से आई हुई है। इन अधकचरे समालोचकों ने हिन्दी समालोचना का स्तर नीचा कर दिया है। आत्म-विज्ञान, सम्पादक मित्रों की कृपा, पुस्तक और लेख छपवाने की क्षमता, शुद्ध हिन्दी लिख सकने की योग्यता, बड़े आदमियों के सार्टिफिकेट इनकी विशेषतायें हैं और ये ही इनके प्रधान अस्त्र हैं। ऐसे अधकचरे समालोचकों को लेकर चतुर्वेदी जी ने लिखा है—

"अधकचरा जो वैद्य मिले तो हानि प्रान की,
अधकचरा गुरु मिले, यात्रा होय नरक की।
सब अधकचरों के वही लेकिन काटे कान,
अधकचरा साहित्य का होता जिसका ज्ञान।
तुलसी उससे डरें, सूर उससे घबरावें,
बूढ़े केशवदास विनय कर हा हा खावें।
सुकवि बिहारी लाल जान की ख़ैर मनावें,
देव दबक कर रहे न भय से सम्मुख आवें।
करें अनर्थन अर्थ का यह भीषण विद्वान्,
इस भय से हैं काँपते कवि कोविद के प्रान।"[1]

एक असाधारण तथा असामान्य गुण जो इनमें मिलता है वह है अपने ऊपर व्यंग्य लिखने की विशेषता। दूसरों पर व्यंग्य लिखने वालों की कमी नहीं है किन्तु अपने को हास्य का आलम्बन बनाने वाले शायद उँगली पर गिनने लायक भी न मिलें। इन्होंने बड़े-बड़े साहित्यिकों की पेशी यमराज के यहाँ कराई है और उनको उचित दण्ड दिलवाया है। स्वयं को उपस्थित करके अपना परिचय देते हैं—

"श्री विनोद शर्मा है नाम इस मानव का,
बोले चित्रगुप्त यह कवि है न पण्डित है।
रंचक साहित्य का तो ज्ञान इसे है भी नहीं,
किन्तु टाँग अपनी साहित्य में अड़ाता है।"[2]

परिचय के बाद स्वयं ही दण्ड दिलवाने का प्रस्ताव रखते हैं—

"रखकर समक्ष में करेला लोचिनो को ये,
बीस साल नित्य पाँच कविता लिखा करें।

---

१. छेड़छाड़—पृष्ठ ५७.
२. छेड़छाड़—पृष्ट ६५.

जिनमें हो प्रशंसा श्री प्रधान बाबूराम जी की,
और जो बनावे नहीं, काटें खटकीरा इसे।"[1]

इस प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व श्री रामधारी सिंह "दिनकर" का आधुनिक खोखली मानवता पर जो कटु व्यंग्य हाल ही में लिखा गया है उसको उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। अनैतिक तथा खुशामदी व्यक्ति को कुत्ते के बहाने खुलकर सुनाई गई है—

"राम जो तुम्हारा स्वान है,
कोढ़ी है, अपाहिज है, बड़ा बेईमान है।
अयश में डालता है तुमको,
बनियों के सामने हिलाता सदा दुम को।
जूंठी पत्तलें भी चाट लेता है,
राही जो मिले तो भौंकता है काट लेता है।"[2]

ऐसे लोगों पर "दिनकर" का व्यंग्य बहुत ही तीखा हो गया है। उसमें घृणा तथा द्वेष के भाव बहुत प्रज्वलित हो उठे हैं। इसमें पित्त का अंश बहुत तीव्र हो उठा है। आगे वे कहते हैं—

"नरक में चौकड़ी है भरता,
औघड़ है वमन का पान नित्य करता।
नाक दबी, गलने को कान हैं,
रोम झरे जा रहे जो पाप का निशान है।
तुलसी के पास चल सोता है,
श्वान भी ढकोसलों में तेज़ बड़ा होता है।
प्रेम पुचकार सुनता नहीं,
जूते खाए बिना किसी को भी गुनता नहीं।
राम ! मेरी जूतियों में नाल दो,
इसके गले में या चिकौटी एक काट दो।[3]

परिहास (Irony)

मूलतः प्रच्छन्न वैपरीत्य में ही परिहास है। प्रतीति और वस्तु, आकृति और अन्तरात्मा, शब्द और ध्वनि, कृपा तथा कटाक्ष के वैपरीत्य में ही स्थित

१. छेड़छाड़—पृष्ठ ६५.
२. चाणक्य—पृष्ठ १, आठवीं पुस्तक।
३. चाणक्य—पृष्ठ १, आठवीं पुस्तक।

है। हास्य का विषय ध्वनि में से उत्पन्न होता है। व्याज-स्तुति, व्याज-निन्दा, आदि इसके प्रमुख भेद हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सुन्दर परिहास लिखे हैं। मांस-भक्षकों पर उनका लिखा एक परिहास देखिए—

"धन्य वे लोग जे मांस खाते,
हरना चिड़ा भेड़ इत्यादि नित चाब जाते।
प्रथम भोजन बहुरि होइ पूजा, सुनित अतिहि सुखमाभरे दिवस जाते,
स्वर्ग को वास यह लोक में है, तिन्है नित्य एहि रीति दिन जे बिताते।"[१]

ऊपरी तौर पर मांसाहारियों की स्तुति मालूम देती है किन्तु प्रच्छन्न रूप से उनका मज़ाक उड़ाया जा रहा है। इसी प्रकार शराबियों की स्तुति के ब्याज से निन्दा की गई है—

"सुनिए चित्त धर यह बात।
जिन न खायो मच्छ, जिन नहिं कियो मदिरा-पान।
कछु कियो नहिं तिन जगत में यह सुनिस्चै जान।"[२]

इसी प्रकार मांस भक्षण तथा "ब्रांडी सेवन" पर दो कटूक्तियां और मनन करने योग्य हैं—

"अरे तिल भर मछरी खाइवो, कोटि गऊ को दान,
ते नर सीधे जात हैं, सुरपुर बैठि विमान।"[३]

× × ×

"ब्रांडी को अरु ब्रह्म को, पहिलो अक्षर एक,
तासों ब्राह्मों धर्म में, यामें दोष न नेक।"[४]

मांस भक्षण करने पर स्वर्ग का मिलना तथा ब्रह्म-समाज में ब्रांडी पीने में तनिक भी दोष न होना व्याज-स्तुति के सुन्दर उदाहरण है। पं० प्रताप नारायण मिश्र ने भी वक्र-उक्तियों का प्रयोग अपनी कविता में यथेष्ट मात्रा में किया है। मनुष्य पुण्य कार्य करके अपना जन्म सुफल मानता है। वह ऐसे

---

१. भारतेन्दु नाटकावली—पृष्ठ ३६४.
२. ,, ,, पृष्ठ ३६५.
३. ,, ,, पृष्ठ ३७६.
४. ,, ,, पृष्ठ ३८०.

कार्य करता है जिससे उसे यश लाभ मिले किन्तु मिश्र जी ने "जन्म सुफल कब होय ?" शीर्षक कविता में सुन्दर वक्रोक्तियों द्वारा परिहास किया है। सेठ जी कहते हैं कि उनका जन्म सुफल जब होगा—

"बुधि विद्या बल मनुजता, छुवहिं न हम कहँ कोय,
लछमिनियाँ घर में बसैं, जन्म सुफल तब होय।"[1]

इसी प्रकार एक अमीर का जन्म सुफल कब होगा—

"हवा न लागै देह पर, करैं खुशामद लोय,
कोउ न खरी हमते कहै, जन्म सुफल तब होय।"[2]

वकील और पुलिस वालों का कल्याण इसी में है कि लोग आपस में लड़ें और मुकदमेबाजी करें—

"फूट बढ़ै सब घरन में, हारैं जीतैं कोय,
खुली अदालत नित रहै, जन्म सुफल तब होय।"[3]

इसी प्रकार पुलिस वालों की मनोकामना पूरी कब होय—

"झूँठी साँची कैसिहूं, वारिदात में कोय,
आय भलो मानुस फँसै, जन्म सुफल तब होय।"[4]

पं० प्रतापनारायण मिश्र ने "कानपुर माहात्म्य" शीर्षक कविता में भी वक्र-उक्ति का प्रयोग किया है—

"मदिरा देवी हैजा ठाकुर, फूट भवानी मत महाराज,
सब के ऊपर स्वारथ राना, नगरी नामवरी के राज।"[5]

बालमुकुन्द गुप्त ने भी हास्य के सब प्रभेदों का उपयोग किया है। उनकी "कलियुग के हनुमान" शीर्षक कविता वक्र उक्तियों से भरी पड़ी है। हनुमान जी पहले अपने त्रेता युग के कर्तव्यों को बताते हुए बाद में कहते हैं—

"या कलि में कहा एतोइ बल हम में नाहीं ?
बाँधि पूंछ सरें वेद पार सागर के जाहीं ?
सात समन्दर के पार वेद की उड़ै पताका,

---

१. प्रताप लहरी—पृष्ठ ४१.
२. ,, ,, ,,
३. ,, ,, ४२.
४. ,, ,, ,,
५. ,, ,, २१७.

रोकै पूंछ पसार आन धर्म्मन को नाका।
यज्ञ मलेच्छन की सारी करकै भरभण्डा,
अपने मुख महँ डारि आहिं सब मुर्गी अण्डा।
कूकर सूकर बीफ सीफ कछु रहे न बाकी,
स्वयं होय तरु रूप करहिं ऐसी चालाकी।
अहो भ्रातृगण! बैठ करत क्या सोच विचारा?
मारि एक छल्लाँग करुहु भारत उद्धारा।"[1]

कलियुग के हनुमान के व्याज से ऐसे व्यक्तियों का परिहास किया है जो देशोद्धार के बहाने दुनियाँ के कुकर्म करते हैं तथा भ्रष्टाचार फैला रहे हैं। इसी प्रकार 'जोरूदास' शीर्षक कविता द्वारा "पत्नी-भक्तों" पर वक्र-उक्ति कही गई है—

"अपना कोई नाहीं रे,
बिन जोरू सिरताज जगत में कोई नाहीं रे।
मात पिता निज सुख लग जायो अपने सुख के भाई,
एक जोरू ही संग चलेगी ऐसी शिक्षा पाई।
मिले शिक्षिता सभ्या जोरू सुख का सार यही है,
राखे सदा ताहि काँधे पर सुख का सार यही है।
मूरख मात पिता ने पहले बहु सुख आदर पायो,
पै इस सभ्यकाल में सो सब चालै नाहिं चलायो।"[2]

गुप्त जी ने एक "जोगीड़ा" लिखा है जिसमें बाबा जी और उनके चेलों का वार्तालाप कराया है। चेलागण पूछते हैं—

"यती जी इसका खोलो भेद।
अण्डा भला कि रण्डा बाबा, आँत भली या मेद,
बिस्कुट भला कि सोहन हलवा, बक बक भला कि वेद।"[3]

इसका उत्तर बाबा देते हैं—

"जो अण्डा सोही ब्रह्माण्डा, इसमें नाहीं भेद,
दोनों अच्छे समझो बच्चे सोई आंत सोइ मेद।

---

१. गुप्त निबन्धावली—पृष्ठ ६७५.
२. गुप्त निबन्धावली—पृष्ठ ६७८.
३. मिस्टर व्यास की कथा—पृष्ठ ३९०.

वेद का सार यही है, बुद्धि का पार यही है,
मिले तो अण्डा चक्खो, मिले तो मण्डा भक्खो।"[१]

पं० शिवनाथ शर्मा ने लीडर की व्याज स्तुति लिखी है—

"लीडर के परि पाँयन पूजो,
और न देव जगत में दूजो।
दिन जब लीडर रात कहावे,
कूद कूद कर चेलो गावे।
सत्य असत्य कहो डर नाहीं,
कारज सब योंही बन जाहीं।
अब स्वराज्य की चाल यह, टट्टी ओट शिकार,
नासहु कथन स्वतन्त्रता, परतंत्रता कि प्रचार।"

इसी प्रकार "मिस्टर-स्तोत्रम्" शीर्षक से आजकल के फैशनेबुल युवक पर परिहास लिखा है—

"कोट बूट जाकटादिना सदैव शोभिताम्,
माँग को सुधार हैट खोपड़ा महोदिताम्।
कुरसियान टूल के लगे हमेश मिस्टरम्,
इस प्रकार के प्रभु नमामि देवविस्टरम्।"[२]

आज "खुशामद" और खुशामदियों का बोल बाला है। जीवन के अनेक कार्यों में खुशामद का प्रयोग किया जाता है। शिवनाथ शर्मा जी ने 'खुशामदियों' का स्तुति-गान करके कितना सुन्दर परिहास लिखा है—

"बन्दन करहुं खुसामद चारी,
इनको प्रकट प्रभाव विचारी।
हाँ में हाँ करि जीतैं सबहीं,
हाकिम विमुख न इनसों कबहीं।
साहब घर लै डाली डोलें,
गिड़गिड़ाय बत्तीसी खोलैं।
झुकि झुकि करें बंदगी ऐसी,
साखी साख बोझ जुत जैसी।

---

१. मि० व्यास की कथा—पृष्ठ ३६०.

२. ,, ,, ,, ३६८.

'जी हजूर' को मंत्र उचारें
'खुदावन्द' के बहैं पनारे ।"[1]

ब्रिटिश काल में अँग्रेज़ के घर जन्म होना एक बड़े सौभाग्य की बात थी उन्हें सुख और चैन था। "पढ़ीस" जी ने अँग्रेज के घर जन्म लेने का कितना चुटीला परिहास उपस्थित किया है—

"काकनि जब रामु घरयि जायउ,
इतनी फिरियादि जरूर किह्यउ ।
जो जलमु दिह्यहु हमका स्वामी,
अँगरेजनि के बच्चा कीनह्यउ ।"[2]

बच्चा अपने काका से कहता है कि मृत्यु के बाद आप अँग्रेज़ के घर जन्म लेने का वरदान माँगना। कैसा मार्मिक परिहास है! अपनी 'धमकच्चरु' शीर्षक कविता में एक वकील साहब के त्याग की प्रशंसा कर उनकी आमदनी का विरोधाभास दिखाकर परिहास किया गया है—

"बड़े भइया उकीली का अङ्गरखा ओढ़ि दीन्हिनि हयि,
इललु. बी. का कठिन कंठारे मा बाँधि लिन्हिनि हयि ।
रही कुछु हाँसियति, गहना गरीबी माँगि रउँ गाँठ्यन,
पढ़ाई पूरि होययि दामु-दामुपि पूरि दीन्हिनि हयि ।
कच्यहरी जाति हयि रोजयि यी हँसि हँसि बहँसि व्यालपि,
मुलउ महिना कि म्यहनति पारु पयिना आठ पायिनि हयि ।"[3]

पं० हरिशंकर शर्मा का परिहास भी सुन्दर होता है। वक्र वचन कहना ही परिहास की जान है। दीन दुखियों की सहायता करना, ब्राह्मणों को दान देना आदि भारतीय संस्कृति में श्लाध्य माने गये हैं लेकिन अविद्यानन्द जी उपदेश देते हैं—

"सुधी साधु को मान खाना न दो,
किसी दीन को एक दाना न दो ।
कभी गाय बूढ़ी नहीं पालना,
किसी मिश्र को दान दे डालना ।"[4]

---

१. मिस्टर व्यास की कथा—पृष्ठ ३००.
२. चकल्लस—पृष्ठ ५६.
३. चकल्लस—पृष्ठ १८.
४. चिड़ियाघर—पृष्ठ ४५.

अन्धविश्वास, जातीय-संकोच आदि पर भी शर्मा जी ने परिहास लिखे हैं—

"रचो ढोंग पाखण्ड छूटे नहीं,
छुआछूत का तार टूटे नहीं।
× × ×
महामूढ़ता के संगाती रहो,
दुराचार के पक्षपाती रहो।
जुड़ें चौधरी पंच पोंगा जहाँ,
न बोला करो बोल बाले वहाँ।"

इसी प्रकार शर्मा जी ने अपने समय की वृत्तियों तथा सामाजिक कुसंस्कारों पर भी परिहास लिखा है। भगवान से आशीर्वाद माँगते हुए लिखते हैं—

"नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद।
हो जावें हम भारतवासी, सब के सब बरबाद,
भारत पड़े भाड़ में चाहे, घटे न पद मर्याद।
रहे गुलामी के गड्ढे में, करें न दाद फ़िराद,
ज़रा ज़रा के वाक़यात पर बरसा करें फ़िसाद।"[1]

ये प्राचीन संस्कृति के पक्षपाती थे और आर्य समाजी थे। नवयुवकों पर पड़ते हुए पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को यह नहीं सह पा रहे थे। इनके परिहास में घृणा तथा भर्त्सना की मात्रा अधिक है। "अल्हणराम की रें रें" शीर्षक कविता में ये कहते हैं—

"हिन्दू सुनो खोल कर कान,
हो जाओ बिलकुल बीरान।
ऋषि मुनियों को जाओ भूल,
काटो वैदिक धर्म बबूल।"[2]

ऋषि मुनियों को भूल जाने की सलाह और वैदिक धर्म को बबूल की भाँति निरर्थक बताकर उसे काटने का निमंत्रण व्याज-निन्दा का कितना सुन्दर उदाहरण है।

---

१. चिड़ियाघर—पृष्ठ ६५.

२. चिड़ियाघर—पृष्ठ ५५.

बेढब बनारसी "घूंस" की व्याज-स्तुति करते हुए लिखते हैं—

"खुदा से रात दिन हम खैरियत उनकी मनाते हैं,
निडर होकर मजे से घूस लेना जो सिखाते हैं।"[१]

इसी प्रकार आधुनिक तीर्थों का परिहास देखिए—

"न बदरीनाथ जाते हैं न अब जाते हैं वह काशी,
मिसों के दर्शनों को लंदनों पेरिस वह जाते हैं।"[२]

आधुनिक साहित्य के गीतकारों पर रचा परिहास देखिए—

"रच रहे आप हैं साहित्य नया क्या कहना,
गीत का रूप है धुन उसमें है क़व्वाली की।"[३]

श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने भी परिहास लिखा है। "पत्नी-पूजकों" को उपदेश देते हुए लिखते हैं—

"तुम उनसे पहले उठा करो,
उठते ही चाय तैयार करो।
उनके कमरे के कभी अचानक,
खोला नहीं किवाड़ करो।
उनकी पसन्द से काम करो,
उनकी रुचियों को पहिचानो।
तुम उनके प्यारे कुत्ते को,
बस चूमो चाटो प्यार करो।"[४]

इसी प्रकार आपने आलसियों के मुख से "आराम" शब्द का महत्व कहलवाया है—

"आराम शब्द में राम छिपा जो,
भव बन्धन को खोता है।
आराम शब्द का ज्ञाता तो,
बिरला ही योगी होता है।
इसलिए तुम्हें समझाता हूँ,

---

१. बेढब की बहक—पृष्ठ ३३.
२. ,, पृष्ठ ३३.
३. ,, पृष्ठ ७८.
४. अजी सुनो—पृष्ठ ८९.

मेरे अनुभव से काम करो
ये जीवन यौवन क्षण भंगुर,
आराम करो, आराम करो।"[1]

और यदि कुछ करना ही पड़ जाए तो—

"यदि करना ही कुछ पड़ जाए,
तो अधिक न तुम उत्पात करो।
अपने घर में बैठे बैठे बस,
लम्बी लम्बी बात करो।"[2]

कान्ता नाथ पांडे "चोंच" की कविता में भी परिहास यथेष्ट मात्रा में मिलता है। ज्यों-ज्यों समय बदलता गया त्यों-त्यों हास्य के आलम्बन बदलते गये। जबसे कांग्रेस का राज्य हुआ, नेताओं का प्रभुत्व बढ़ा। चोंच जी अपनी "वन्दना" शीर्षक कविता में व्याज-स्तुति की शैली में परिहास करते हैं—

"बन्दौं कांगरेसी राज।
कृपा पाकर जाहि की सब ओर सुख का साज,
सब प्रजा इमि है सुखी ज्यों चटक पाकर बाज।

× × ×

बढ़ें यों नेता हमारे सभी बेअन्दाज़,
आजकल ज्यों मूलधन से बढ़ा करता व्याज।"[3]

मुहर्रिर भी समाज का एक विशेष जन्तु होता है। उसकी महिमा का वर्णन "चोंच" जी करते हैं—

"तुम परिवर्तन करने वाले,
तुम नव-नर्तन करने वाले।
तुम कितनों की ही जेबों का,
हो कल कर्तन करने वाले।
पबलिक कपोत के हेतु बाज,
मद-मस्त मुहर्रिर महाराज।"[4]

---

१. अजी सुनो—पृष्ठ १४१.
२. ,, ,, पृष्ठ १४२.
३. खरीखोटी—पृष्ठ २२.
४. ,, पृष्ठ ६६.

विरोधाभास द्वारा भी परिहास की सृष्टि की जाती है। "उल्फत" शीर्षक कविता में "चोंच" जी ने इसी शैली द्वारा परिहास की सृष्टि की है—

"मुझको क्या तू ढूंढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में,
ना मैं सिनेमा, न मैं थियेटर, न टिकट, ना फ्री पास में।
ना गाँधी में, ना जिन्ना में, ना राजेन्द्र, सुभाष में,
ना खद्दर में, ना चरखा में, ना मोहर, चपरास में।
ना प्रोफेसर में, ना टीचर में, ना स्टूडेन्ट, ना क्लास में,
ना मलमल में, ना मखमल में, नहीं सिल्क या क्लास में।
× × ×
मुझे ढूँढ़ना चाहे तो तू पल भर की तालास में,
तो तू जा ससुरार रे बन्दे, ढूँढ ससुर औ सास में।"[1]

कुंज बिहारी पाँडे ने भी परिहास सुन्दर लिखा है। भाषण का महत्व उनके शब्दों में—

"अच्छा भाषण दिये बिना, थैली चन्दे की हजम न होती,
बिना हार में पड़े न सुन्दर, हो कितना ही सुन्दर मोती।
× × ×
स्मित-भृकुटि विलास बिना, फीका लगता है प्रेम प्रदर्शन,
रगड़े बिना नहीं पीतल का, फीका लगता है प्रेम प्रदर्शन,
बिना मंच पण्डाल, न अच्छा लगता गीता का भी दर्शन।"[2]

इसी प्रकार मंत्री जी का पछतावा देखिए—

"कसम तुम्हारी खाकर कहता, मैं मंत्री बनकर पछताया।
जितनी मांगें हुईं कभी उससे कम नहीं दिये आश्वासन,
हैं इतने आदेश दे दिये बाकी रहा नहीं अनुशासन।
एक एक दिन में कितनी ही, प्रदर्शिनी परिषदें सम्हालीं,
जहाँ जहाँ पहुंचा, दे भाषण उजलीं करदीं रातें काली।"[3]

भुशंडिजी ने "हिंजड़ा" शीर्षक कविता में अपनी वक्रोक्तियों द्वारा इस समाज के विशिष्ट व्यक्तियों को हास्य का आलम्बन बनाकर परिहास किया है। वे उनकी वीरता का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

---

१. खरीखोटी—पृष्ठ १०५.

२. उपवन—पृष्ठ १३.

३. उपवन—पृष्ठ ३२.

"हे भारत के दिग्गज महान् !
तुम वृहन्नला के अनुयायी,
द्वापर युग के पक्के निशान।
तुम अवसरवादी नेता से,
गागर में सागर भरते हो।"

अपनी सुकीर्ति से पुरखों का,
तुम नाम उजागर करते हो।
तुम तीसमारखाँ बन कर भी,
ना मार सके कोई मक्खी।
अँग्रेजियत न अब तक हटा सके,
जो अपने घर में है रक्खी।
लेकिन तुमने तो बदल दिया,
निज बल से विधना का विधान।
हे भारत के दिग्गज महान् !"[1]

श्री वंशीधर शुक्ल ने परिहास 'वोटर' भगवान की स्तुति रूप में लिखा है-

"जय वोटर भगवान् !
आपकी टूटी फूटी मूक अविकसित वाणी पर,
नाचा करते हैं नूतन युग निर्माण।
जय वोटर भगवान् !
आप के नगन नील धूलि-धूसरित चरणों पर,
नत मस्तक, त्याग, तपस्या, सेवा।
साहस, बुद्धि, योग्यता, विद्याडिग्री न्याय,
नीति, छल रीति, जाल तिकड़म, कूटनीति।
कुलरीति, धर्म, जातीय वंधुता, जेल-यातना,
गड्डों भरी तिजोरी खाता।
तन, मन, धन, सर्वस्व समर्पण,
जब तक वोट नहीं देते हो।
तब तक ब्रह्म समान,
जय वोटर भगवान् !"[2]

---

१. जमालगोटा—पृष्ठ ८.

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—७ दिसम्बर १९५२, पृष्ठ २६.

स्नेह हास (Humour)

स्नेह हास ही शुद्ध हास्य होता है। इसमें आलम्बन के प्रति ममता के भाव होते हैं। इसमें जो वक्रता, विकेन्द्रियता, असंगति या आकस्मिकता देखने को मिलती है उसमें इतनी हार्दिकता रहती है कि आलोचना, उपहास या जुगुप्सा के लिए अवसर ही नहीं रह जाता। इसमें आत्मीयता रहती है, जिस पर हम हँसे वह हमारा प्रिय भी होता है, अतः ऐसा हास तरल हो जाता है।

स्नेह हास के लिए प्रयोजन, सामान्यता, अतिवादिता, ईर्ष्या और अस्वीकृति घातक होते हैं। इस समाज-सुधार अथवा किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन से कोई सरोकार नहीं। ईर्ष्या से प्रेरित होकर कलाकार और सब कुछ कर सकता है, स्नेह हास को जन्म नहीं दे सकता।

यद्यपि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने व्यंग्य तथा परिहास ही अधिक लिखा किन्तु तरल हास्य के छींटे भी उनके काव्य में यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। "मुशायरा" शीर्षक उनकी एक कविता में शुद्ध-हास्य की सुन्दर उद्भावना हुई है—

"गल्ला कटै लगा है कि भैया जो हैं सो हैं,
बनियन का गम्र भवा है कि भैया जो हैं सो हैं।
कुप्पा भये हैं फूल कै बनियाँ बफते माल,
पेट उनका दमकला है कि भैया जो हैं सो हैं।
अखबार नाहीं पंच से बढ़ कर भया कोऊ,
सिक्का वह जमगवा है कि भैया जो हैं सो हैं।"[1]

"कि भैया जो हैं सो हैं" इस तकिया क़लाम के द्वारा हास्य उत्पन्न होता है, विशुद्ध हास्य है। किसी उद्देश्य से नहीं लिखा गया। बनियों की हँसी भी उड़ाई जा रही है किन्तु ममता तथा स्नेह से सिक्त होकर द्वेष अथवा घृणा के भाव से नहीं उनकी "पाचन वाला" चूरन के लटके में शुद्ध हास्य की उद्भावना सुन्दरता पूर्वक हुई है—

"चूरन अमल वेद का भारी जिसको खाते कृष्ण मुरारी,
चूरन बना मसालेदार जिसमें खट्टे की बहार।
मेरा चूरन जो कोई खाय मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय,

---

१. हरिश्चन्द्रिका—अगस्त १८७९ (खण्ड ६—सं० १४)

चूरन नाटक वाले खाते इसकी नकल पचा कर लाते।
चूरन खावें एडिटर जात जिनके पेट पचै नहिं बात।"[1]

सम्पादकों के पेट में बात नहीं ठहरती, यह तरल हास्य है—निरुद्देश्य एवं स्नेहयुक्त। इसी प्रकार "चने जोर गरम" शीर्षक गीत भी शुद्ध हास्य युक्त है—

"चने बनावें घासी राम, जिनकी झोली में दूकान।
चना चुरमुर चुरमुर बोले, बाबू खाने को मुँह खोले।
चना खाते सब बंगाली, जिनकी धोती ढीली ढाली।
चना खाते मियां जुलाहे डाढ़ी हिलती गाहे बगाहे।।"[2]

पं० प्रताप नारायण मिश्र ने "बुढ़ापा" शीर्षक एक कविता लिखी जो विशुद्ध हास्यात्मक है। बुढ़ापे की दशा का वर्णन देखिये—

"हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तौ हम नकन्याय गयन।

× × ×

कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति, मूँड़इ कहै न दै मारन।
कहा चहौ कछू निकरत कुछ है, जीभ राँड का है यह हालु।
कोऊ याकी बात न समझै चाहै बीसन दाँय कहन।
डाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै, बिन दाँतन मुँह अस पोपलान।
डढ़िही पर बहि बहि आवति है, कबहुँ तमाखू जो फाँकन।।"[3]

भाव-व्यंजना एवं वस्तु-व्यंजना दोनों ही दृष्टि से कविता सफल बन पड़ी है। बुढ़ापे की विवशताओं का सहारा हास्य के उद्रेक करने के लिए लिया गया है।

बालमुकुन्द गुप्त ने यद्यपि राजनैतिक एवं सामाजिक व्यंग्य ही अधिक लिखे किन्तु तरल हास्य की दृष्टि से उनकी 'भैंस का मरसिया" शीर्षक कविता सुन्दर बन पड़ी है। 'भैंस" के स्वर्गवास हो जाने के उपरान्त उसके दुःख में गुप्त जी कहते हैं—

"खड़ी देखती है वह पड़िया बेचारी,
धरी है यों ही नाँद सानी की सारी।

---

१. भारतेन्दु नाटकावली—पृष्ठ ६६१.
२. ,, ,, ,, ६६३.
३. प्रताप लहरी—पृष्ठ ४०.

पड़ी है कहीं टोकरी और खारी,
वह रस्सी गले की रखी है सँवारी।
बता तो सही भैंस तू अब कहाँ है ?
तू लाला की आँखों से अब क्यों निहाँ है ?"[१]

"पढ़ीस" की "हम और तुम" शीर्षक कविता में फैशन परस्त युवक का हास्यमय चित्रण किया गया है। यद्यपि युवक को आलम्बन बनाया गया है किन्तु उसमें ममता का होना तथा घृणा के भाव के न होने से व्यंग्य नहीं बन पाया, शुद्ध हास्य रह गया है। देखिए—

"लरिका सब भाजयि चउंकि चउंकि,
रपटावाँय कुतवा भडंकि भडंकि।
तुम अजुभुतु रूप धरयउ भय्या,
जब याक बिलायिति पास किह्याउ।
बिल्लायि मेहारिया बिलखि बिलखि,
साथ की बंदरिया निरखि निरखि।"[२]

"जय नलदेव हरे" शीर्षक कविता में पं० हरिशंकर शर्मा ने शुद्ध हास्य की व्यंजना की है, क्योंकि परोक्ष रूप से भी इसमें किसी के ऊपर कटाक्ष नहीं है। अतएव यह विशुद्ध हास्य की कोटि में आता है। देखिए—

ओम् जय नल देव हरे।
कहुँ झर झर झरना सम झरकें सुषमा सरसाओ,
कहुँ भादों की भाँति मेघ बनि पानी बरसाओ।
ओम् जय नल देव हरे।
चढ़े चढ़ायो तुम पै सब को पै न सबै पाओ,
दीनन की पुकार सुनि-सुनि के बहरे बनि जाओ।"[३]

बेढब जी ने भी शुद्ध हास्य लिखा है जो कि भाषा की रवानगी की दृष्टि से सुन्दर है—

"बहुत है "इनकम" दिलों की तुमको कहीं न लग जाय टैक्स देखो,
जनाब आया है वह जमाना कि इससे कोई बरी नहीं है।

---

१. गुप्त निबन्धावली—पृष्ठ ७२४.

२. चकल्लस—पृष्ठ ६५.

३. बेढ़ब की बहक—पृष्ठ ११.

"नहीं हुकूमत चलेगी उन पर फजूल हैं कोशिशें तुम्हारी,
यह है मुहब्बत की एक दुनियाँ जनाब यह "टीचरी" नहीं है।
दिखाया टूटा हुआ दिल अपना जो मैंने सरजन को तो वह बोला,
बनेगा लंदन में दिल तुम्हारा यहाँ यह कारीगरी नहीं है।"[१]

चोंच जी ने "स्वयं" को आलम्बन बना कर "निराशा का गान" शीर्षक कविता में शुद्ध हास्य की सृष्टि की है—

"क्या बताऊं ?
"श्रीमती जी हैं गयी मैके चलूँ खाना पकाऊँ,
भूख जोरों से लगी है वीरता सारी भगी है।
चलूँ "नोट्स" तैयार करने की जगह चूल्हा जलाऊँ।
क्या बताऊँ ?
फूँक मैं चूल्हा रहा हूँ नहा स्वेदों से गया हूँ,
पर डटा हूँ युद्ध में, कैसा अनोखा बेहया हूँ।
लकड़ियाँ सब हैं सरस, इनको चलूँ नीरस बनाऊँ।
श्रीमती जी हैं गयी मैके, चलूँ खाना पकाऊँ।
क्या बताऊँ ?"[२]

श्री बेधड़क जी ने अपने "प्रियतम से बजट पास कराने" के माध्यम से शुद्ध हास्य की सृष्टि की है—

"बिट्टी की शादी करनी है,
लल्लू का मुंडन करना है।

जी हुआ जनेऊ कल्लू का,
उसका भी कर्जा भरना है।
यह दो हजार का खर्चा है,
इसमें न कटौती हो सकती।
हाँ यह मकान मालिक भी तो,
देता रहता नित धरना है।
ये सारे काम जरूरी हैं,
मत चेहरा अभी उदास करो।

---

१. खरीखोटी—पृष्ठ १८.

२. धर्मयुग हास्यरसांक—मार्च १९५४.

करती हूँ घर का बजट पेश,
प्रियतम तुम इसको पास करो।"[१]

रमई काका ने "तैं कहयौं वाह रे तोंद वाह" में तोंद की महिमा का वर्णन किया है—

"उइ उपरै ऊपर खैंचि लिहिनि, तौ सब धरु पल्ले पार भवा।
मुलु तोंद न निकरा खिरकी ते, मैं कह्यों ग्राह रे तोंद ग्राह॥
जब सहर गयन रिक्सावाले, हमका द्यखतै कतराय जाँय।
औ डबल केरावा दिहे बिना, ताँगा वाला भन्नाय जाँय।"[२]

कविवर "भुशंडि" ने कुछ साहित्यिकों के शब्द-चित्रों में सुन्दर हास्य का सृजन किया है। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का हास्य-रस शब्द-चित्र देखिए—

"गोरे से पतले दुबले पर हिन्दी में हैं गामा,
प्यारी रिस्टवाच से ज्यादा जिन्हें साइकिल श्यामा।
अपटूडेट ब्रिटिश माडेल पर रोली तिलक लगाते,
एक साथ पंडित मिस्टर का जो हैं नियम निभाते।
अपनों से खुलकर मिलते हैं बाकी से तो मौन हैं।
जो 'वियना की सड़क' सुनाते बाबूजी ये कौन हैं।"[३]

श्री गोपाल प्रसाद व्यास की कलम खो गई। उसके विरह का हास्यमय वर्णन अतुकान्त छन्द में देखिए—

"वह थी कलम,
फाउन्टेन कहा करता था,
लिखता था जिससे,
नित्य पत्र ससुराल को,
क्योंकि श्रीमती जी के,
रिश्ते थे अनेक,
और उन सबको,
निबाहना जरूरी था।

---

१. धर्मयुग हास्यरसांक—मार्च १९५४.
२. भिनसार—पृष्ठ ६३.
३. जमालगोटा—पृष्ठ ४७.

मेरी मुनीम,
जो रोज लिखा करती थीं
धोबी का हिसाब
नई लिस्ट खरीदारी की
कर्ज़ दोस्तों को
औ अशेष हाल वेतन का
सोते वक्त डायरी
रिकार्ड गए जीवन का
हाय चिरसंगिनी
अजस्त्र मसि-धारिणी
जो भावों के बिना ही
नये गीत लिख देती थी
खुद न खरीदी
किसी मित्र की धरोहर थी
आज देखी जेब तो
प्रतीत हुआ खो गई।
खोगई—खोगई।"[1]

पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने "घंटाघर" शीर्षक कविता में शुद्ध हास्य की सृष्टि की है—

यू० पी० में एक प्रयाग नगर,
उसके बाज़ार में घंटाघर।
× × ×
वह गति-मुग्धा, वह प्रगतिशील,
प्रतिपल वह आगे चले बढ़ी।
लड़कों से कहती बजे तीन
अब बजे चैन की मधुर बीन।
दफ्तरवालों से कहे पाँच,
काग़ज़-फाइल में लगे आँच।
सिनेमाप्रेमी से कहे चलो,
साढ़े छै बजते होता शो"।[2]

---

१. अजी सुनो—पृष्ठ १५.
२. छेड़छाड़—पृष्ठ ११.

कवि देहाती जी के इन दोहों में शुद्ध हास्य की अभिव्यक्ति है—

"पिय आवत मग विलमगे, मिली सौति बेपीर,
मानों चलती रेल की खैंची कोऊ जन्जीर।
नेही सों मिलिबे चली तबलौं पिय गये आय,
बिना टिकट के सफर में ज्यों चेकर मिलि जाय।"

पैरोडी (Parody)

"पैरोडी" के साहित्यिक मूल्यांकन के वारे में पिछले अध्यायों में पर्याप्त विवेचन किया जा चुका है। यहाँ हमें हिन्दी में "पैरोडी साहित्य" का विवेचन ही अभीष्ट है। "पैरोडी" का जन्म भारतेन्दु काल में ही हो चुका था। श्री राधाचरण गोस्वामी ने अपने पत्र "भारतेन्दु" में एक "पैरोडी" लिखी—

"आज हरि हाईकोर्ट सिधारे !
पुरी द्वारिका मध्य सुधर्मा सभा मनों पग धारे।
परम भक्त साहब नौरिस को निज कर दर्शन दीनों॥
बहुत दिनन को ताप आपने पापसहित हरि लीनों।
आवत समै सुरेन्द्र नाथ कों कारागार पठायो॥
को कहि सकै विचार विवेचन यह मूरख मन मोरो।
सूरदास जसुदा को नन्दन जो कुछु करे सो थोरो॥"[1]

उक्त "पैरोडी" का सामाजिक पहलू उत्कृष्ट है। पं० बालकृष्ण भट्ट ने संस्कृत में कुछ "पैरोडियां" लिखीं। उर्दू तथा संस्कृत मिश्रित एक पैरोडी देखिए—

"दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरुलतां मैं था गया बाग में,
काचिन्तत्र कुरंग शावनयना गुल तोरती थी खड़ी।
उद्यद्रम् धनुषाकटाक्ष विशिरवैधायिल किया था मुझे,
मज्जानी तवरूप मोह जलधौ हैदर गुजारे शुकुर।"[2]

बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने भी "पैरोडी" लिखी। सती अनुसुइया के सदुपदेश का परिहासमय अनुकरण देखिए। इसमें वर्तमान युग के पतिव्रत धर्म पर व्यंग्य है—

---

१. भारतेन्दु मासिक—२० जून १८८, ३पृष्ठ ४४.

२. हिन्दी प्रदीप—दिसम्बर १९०६, पृष्ठ १३.

"एकहि धर्म, एक व्रत नेमा, काय वचन मन, पति पद प्रेमा,
पै पति सो जो कहं भावे, रोम रोम भीतर रम जावे।
बालकपन को पति जो कोई, तासों प्रीति करो मत कोई,
एक मरे दूसर पति करहीं, सो तिय भव सागर उतरहीं।"[1]

पं० हरिशंकर शर्मा ने सुन्दर "पैरोडियाँ" लिखीं। तुलसीदास जी की पैरोडी देखिए—

"सब यानन तें श्रेष्ठ अति, द्रुति-गति गामिनि कार,
धनिक जनन के जिय बसी, निस दिन करत बिहार।
मंजुल मूर्ति सदा सुख देनी,
समुझि सिहावहिं स्वर्ग नसैनी।
× × ×
पों पों करति सुहावति कैसे,
मुनि मख शंख बजावहिं जैसे।
× × ×
वाहन-कुल की परम-गुरु, सब कहँ सुलभ न सोय
रघुबर की जिन पै कृपा, ते नर पावहिं तोय।"[2]

उपरोक्त पैरोडी में तुलसी दास जी का छन्द-साम्य ही नहीं है वरन् जो तुलसी की शैली की विशेषताएँ हैं उन्हें भी हास्यमय बनाया गया है।

अतुकान्त कविता को लेकर "निराला" की एक पैरीडी और देखिए—

"खट्वा।
ओहो, चतुष्पदी, निष्पदी तथा—
निर्भ्रान्त, अलक्षिता, एवम् सापेक्ष सत्ता, सुरम्या—
महत्त्वमयं-मत्कुण सेविता
तक्षा, एवम्
रथकार ....शयनाकार संयुक्ता
सम्पृक्ता—सुकीर्तिता।
सुधीन्द्र, रज्जु—रसरी।
रता—नता, खवम् अवनता॥"[3]

---

१. गुप्त निबन्धावली—पृष्ठ ६७६.
२. पिंजरापोल—पृष्ठ २८.
३. चिड़ियाघर—पृष्ठ २८.

पं० ईश्वर प्रसाद शर्मा ने तुलसीदास जी के एक दोहे की "पैरोडी" की है—

"चित्रकूट के घाट पर, भइ लंठन की भीर,
बाबा खड़े चला रहे, नैन सैन के तीर।"[१]

बेढब जी ने कई सुन्दर "पैरोडियाँ" लिखी हैं। प्रसाद जी के प्रसिद्ध गीत "बीती विभावरी जाग री" की पैरोडी देखिए—

बीती विभावरी जाग री।
छप्पर पर बैठे काँव काँव,
करते हैं कितने कागरी।
तू लम्बी ताने सोती है,
बिटिया माँ कह कह रोती है।
रो रो कर गिरा दिये उसने,
आँसू अब तक दो गागरी।
बिजली का भोंपू बोल रहा,
धोबी गदहे को खोल रहा।
इतना दिन चढ़ आया लेकिन,
तूने न जलायी आग री।
उठ जल्दी दे जलपान मुझे,
दो बीड़े दे दे पान मुझे।
तू अब तक सोती है आली,
जाना है मुझे प्रयाग री।
बीती विभावरी जाग री।"[२]

बेढब जी ने "बच्चन" की "पैरोडी" भी की है—

"जीवन में कुछ कर न सका,
देखा था उनको गाड़ी में।
कुछ नीली नीली साड़ी में,
वह स्टेशन पर उतर गयीं।
मैं उन पर थोड़ा मर न सका,
वह गोरी थीं, मैं काला था।

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—पृष्ठ ५६.
२. साहित्य सन्देश—अप्रैल १६४०, पृष्ठ ३६.

लेकिन उन पर मतवाला था,
मैं रोज रगड़ता साबुन पर,
चेहरे का रंग निखर न सका।"[1]

श्री श्यामनारायण पाण्डेय की "हल्दीघाटी" की सुन्दर "पैरोडी" "चूनाघाटी" शीर्षक से चोंच जी ने की है—

"नाना के पावन पाँव पूज,
नानी पद को कर नमस्कार।
उस अण्डी की चादर वाली,
साली पद को कर नमस्कार।
उस तम्बाकू पीने वाले के,
नयन याद कर लाल लाल।
डग डग सब हाल हिला देता,
जिसके खों-खों का ताल ताल।
घन घन घन घन घन गरज उठी,
घण्टी टेबुल पर बार बार।
चपरासी सारे जाग पड़े,
जागे मनीआर्डर और तार।
कविवर श्रीनारायण जागे,
दफ्तर में जगमोहन जागे।
घर घर कवि सम्मेलन जागे,
बेढब जागे, बच्चन जागे।" [2]

कबीरदास के दो दोहों की पैरोडियाँ भी 'चोंच' लिखित देखिए—

"नेता ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
चन्दा सारा गहि रहै, देय रसीद उड़ाय॥
यह घर थानेदार का खाला का घर नाँहि।
नोट निकारै पग धरै, तब बैठे घर माँहि॥" [3]

बेधड़क बनारसी ने चन्द्रप्रसाद वर्मा "चन्द्र" के प्रसिद्ध गीत "मेरे आँगन में भीड़ लगी मैं किसको कितना प्यार करूँ" की पैरोडी की है—

---

१. हास-परिहास—पृष्ठ १०८.
२. खरीखोटी—पृष्ठ ७६.
३. खरीखोटी—पृष्ठ ६८.

"मेरे आँगन में भीड़ लगी, मैं किसको किसको प्यार करूँ ?
ये सास-ससुर साली-साले,
बीबी बच्चे और घरवाले,
ये दिली दोस्त गोरे-काले,
सब मुझे "डियर" कहते हैं प्रिय, किसका किसका इतबार करूँ ?
कुछ कविवर हैं, कुछ शायर हैं,
कुछ डायर हैं, कुछ कायर हैं,
कुछ ट्यूब और कुछ टायर हैं,
भारत रक्षा का भय मुझको, कैसे इनका व्यापार करूँ ?" [१]

"बच्चन" की कविताओं की "पैरोडियाँ" विशेष लिखी गई हैं। "भैयाजी बनारसी" ने बच्चन के "तुम गा दो मेरा गान अमर हो जाये" की "पैरोडी" लिखी है—

"तुम रो दो मेरा गान अमर हो जाये।
मेरा हृदय बड़ा उच्छृंखल—
उछल उछल रह जाये।
दोनों हाथ दबाकर इसको,
मैंने छन्द बनाये।
किन्तु रेडियो सम्मेलन में,
मैं जाकर पढ़ आया—
तुम छू दो, मेरा कान अमर हो जाये।" [२]

उपरोक्त "पैरोडी" उच्च कोटि की नहीं कही जा सकती। इसमें न बच्चन की शैली का ही परिहास हो पाया है और न छन्द-साम्य ही है। केवल एक पंक्ति का उलटफेर कर देना अच्छी पैरोडी के लिए पर्याप्त नहीं होता।

श्री गोपालप्रसाद व्यास ने तुलसी तथा रहीम के दोहों की पैरोडियाँ लिखी हैं—

"रहिमन लाख भली करो, जिन्ना जिद्द न जाय,
राग सुनत, पय पियत हू, साँप सहजि धर खाय।

---

१. हास परिहास—पृष्ठ ४५.
२. हास परिहास—पृष्ठ ८६.

तुलसी या संसार में, कर लीजै दो काम,
भरती हूजै फौज में, वारफन्ड में दाम।" [१]

श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी जो मिस्टर चुकन्दर के नाम से हास्य-रस लिखते हैं, "रत्नाकर" के उद्धवशतक की पैरोडी में लिखते हैं—

"कीजै देश-भक्ति को प्रचार गिरि-शृङ्गन पै,
हिय में हमारे अब नेकु खटिहै नहीं।
कहै "रत्नाकर" जे हँसिया हथौड़ा छाँड़ि,
हाथ में "तिरंगा झण्डा" आजु सटि है नहीं।
रसना हमारि चारु चातकी बनी है ऊधो,
"लेनिन" बिहाय और रट रटि है नहीं।
लौटि पौटि बात को बवण्डर बनावत क्यों ?
नैन ते हमारे अब रूस हटि है नहीं॥" [२]

पं० सोहनलाल द्विवेदी की "वासवदत्ता" शीर्षक कविता की उत्कृष्ट कोटि की पैरोडी पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने "महाश्वेता" शीर्षक में लिखी है। छन्द-साम्य एवं शैली के हास्यमय अनुकरण दोनों ही दृष्टि से यह सुन्दर बन पड़ी है—

"आतुर पुण्डरीक ने,
फेंकी निज साइकिल
और बैठा घुटनों के बल
देवी की प्रार्थना में भक्त जैसे बैठा हो,
बोला—
यौवन यह अर्पित पद-पद्म में है।
इसे स्वीकार करो,
यह न तिरस्कार करो।
रूप यह,
यौवन यह,
जिसने प्राप्त करने को

---

१. अजी-सुनो—पृष्ठ ११२.
२. पेरौड्यावली—पृष्ठ १३.

अपनी कन्याओं के लिए
कितने कलक्टर और डिप्टी कलक्टरों ने,
× × × ×
चक्कर हैं काटे मेरे पिता के घर के।
× × × ×
अर्पित है यौवन यह
अर्पित कैरियर है यह
प्रणय निवेदित है।
हृदय निवेदित है।
करो स्वीकार मुझे
तृप्ति वरदान मुझे।
तप्त उर शीतल करो गाढ़ परिरम्भन दे।" [१]

श्री ऋषिकेश चतुर्वेदी ने बच्चन की "मधुशाला" की पैरोडी "विजय-वाटिका" शीर्षक लिखी।

अन्त में श्री बरसाने लाल चतुर्वेदी की "सुदामा चरित" की पैरोडी से इस प्रकरण को समाप्त करते हैं—

"सोने की कमानी को चश्मा सुलोचन पै,
खद्दर की टोपी को मुकुटधरे माथ हैं।
पहिने कारी अचकन औ पायजामा चूड़ीदार,
अभिनन्दन ग्रन्थन के पद्म धरे हाथ हैं।
मिडिल तक संग पढ़े आगे वे छोड़ि गये,
तुमही कहत जेल गये एक साथ हैं।
लखनऊ के गये दुख दारिद हरेंगे नाथ,
लखनऊ के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।

आम की गुठली से मुख सो, प्रभु जाने को आय बसै केहि ग्रामा।
खद्दर को एक थैला है हाथ में, "बाटा" की चप्पल सोहत पामा॥
द्वार खरो स्वयं-सेवक एक रह्यो चकिसो, वसुधा अभिरामा।
पूंछत दीनदयाल को धाम औ कागज पै लिखि दीनो है नामा॥"

१. छेड़छाड़—पृष्ठ ७४.

उपसंहार

भारतेन्दु काल में हास्यरस की कविता का अच्छा प्रचलन था। तत्कालीन पत्रों में बराबर हास्य रसमय काव्य प्रकाशित होता था। सरकार के खुशामदी, सरकारी अफसर, हिन्दी के विरोधी आदि आलम्बन बनाये जाते थे। द्विवेदी युग में साहित्यिक वाद विवादों में हास्य रस की कविता का उपयोग किया गया। इसके अतिरिक्त धार्मिक पाखंडी एवं असामाजिक लोग, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, आदि आलम्बन बनाये गये। वर्तमान युग में राजनैतिक नेता, सरकारी योजनाएँ, फैशनपरस्त युवक, कालिज के छात्र, आदि आलम्बन बनाये गये। पैरोडी का प्रचलन भारतेन्दु काल में ही हो गया था किन्तु उसकी समृद्धि आधुनिक युग में ही हुई।

हास्य के प्रभेदों में सबसे अधिक व्यंग्य ही मिलता है। सबसे अधिक कमी स्नेह-हास्य की कविताओं की रही है।

●

: ११ :

हास्य रस के पत्र-पत्रिकाएँ

भारतेन्दु-काल में ही हिन्दी-गद्य-साहित्य का विकास हुआ। समाचार-पत्र तथा साहित्यिक मासिक एवं पाक्षिक पत्रों तथा पत्रिकाओं का प्रकाशन भी भारतेन्दु काल में हुआ। यद्यपि प्रमुख रूप से भारतेन्दु काल में हास्य-रस का कोई पत्र नहीं निकला किन्तु उस समय के अधिकांश पत्रों में हास्य एवं विनोद का महत्वपूर्ण स्थान रहता था।

"हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन" सन् १८७३ में निकली। पत्रिका का विवरण प्रथम पृष्ठ पर इस प्रकार छपा है—

"A monthly journal published in connection with the Kavivachan-Sudha containing articles on literary, scientific, political and religious subjects , antiquities, reviews, dramas, history, novels, poetical selections, **gossip, humour and wit.**"
हास्य एवं व्यंग्य भी उसके उद्देश्यों में से एक था।

हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन का नाम बदल कर "हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" हो गया। इसके ही खण्ड १ संख्या ६ सन् १८७४ के अंक में शिवप्रसाद गुप्त की उर्दू-प्रियता पर "है है उर्दू हाय हाय" शीर्षक "स्यापा" छपा था। भारतेन्दु बाबू की इच्छा थी कि अँग्रेज़ी के "पंच" पत्र की भाँति हिन्दी में भी एक विशुद्ध हास्य रस का पत्र प्रकाशित किया जाये जैसा कि उनकी सूचना से स्पष्ट है—

> **"मेरी बहुत दिनों से इच्छा है कि एक हास्य रस का हिन्दी भाषा में पंच पत्र प्रचलित करूँ, सब हिन्दी के रसिकों से सहायता की प्रार्थना है। अभी केवल १३ ग्राहक हुए हैं और १०० ग्राहक होने पर पत्र छपेगा।"[1]**

---

१. श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—अक्टूबर १८७७ ई०, संख्या १.

"हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में "चोंज़ की बातें" शीर्षक से मनोरंजक चुटकुले बराबर प्रकाशित होते थे। इसी में उनकी "बन्दरसभा", "ठुमरी जुबानी शुतर-मुर्ग परी के", "चिड़ीमार का टोला" शीर्षक हास्य-कविताएँ भी प्रकाशित हुई। इसमें हास्यमय "चित्रकाव्य" भी छपते थे, यथा—

"ABB GIO PK ढिग तजि CS
ठानिस YR मत करो E स सों T स।"[1]

"हिन्दी-प्रदीप" का सम्पादन पं० बालकृष्ण भट्ट ने सन् १८७८ में प्रारम्भ किया। उस समय भारतेन्दु जी जीवित थे। इसके मुखपृष्ठ पर सूचना रहती थी—

"विद्या, नाटक, समाचारावली, इतिहास, परिहास, साहित्य, दर्शन इत्यादि के विषय में।"

"हिन्दी प्रदीप" में तत्कालीन टैक्स इत्यादि पर स्यापे लिखे गये जो व्यंग्यात्मक हैं। भट्ट जी हिन्दी प्रदीप में हास्य-मय परिभाषा ही दिया करते थे, यथा—

"डाक्टर—**बेपरवाह बैद्य।**

चुंगी—**व्यापार का नफ़ा चट कर जाने वाली डाइन।**

टैक्स—**जबरदस्त का ठेंगा सिर पर, दाल भात में मूसलचन्द, हो या न हो, सरकार का भरना भरो।**

पुलिस—**भले मानुसों के फजीहत की तदबीर।**"[2]

'प्रश्नोत्तर' के रूप में भी भट्ट जी हास्य रस की सामग्री बराबर देते थे—

"स्वर्ग क्या है?—**विलायत।**

महापाप का फल क्या?—**हिन्दुस्तान में जन्म लेना।**

महापापी कौन?—**देशभाषा के अखबारों के एडीटर।**"[3]

इसके अतिरिक्त हास्य रसमय विज्ञापन, उर्दू तथा संस्कृति मिश्रित पैरोडियाँ आदि बराबर उसमें निकला करती थीं। यहाँ तक कि वे समाचार भी हास्यमय भाषा में अधिकतर देते थे—

---

१. श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—सितम्बर १८७४, खण्ड ६, संख्या १२.
२. हिन्दी प्रदीप—मार्च १८७६, पृष्ठ ७६.
३. हिन्दी प्रदीप—सितम्बर १८७६, पृष्ठ ६.

"पुलिस इंस्पेक्टर की कृपा से दिवाली यहाँ पन्दरहियों के पहिले से शुरू हो गई थी, पर अब तो खूब ही गली गली जुआ की धूम मची है। खैर, लक्ष्मी तो रही न गई जो दीपमालिका कर महालक्ष्मी पूजनोत्मक हम लोग करते तो पूजनोत्साह कर लक्ष्मी की बहिन दरिद्रा ही का आवाहन सही।"[1]

"ब्राह्मण" मासिक पत्र पं० प्रतापनारायण मिश्र ने १५ मार्च सन् १८८३ को नामी प्रेस कानपुर से निकाला और जून सन् १८९१ तक बराबर इसे निकालते रहे यद्यपि इसके लिए उन्हें अनेक कष्ट सहने पड़े। इसमें हास्य रस का प्रमुख स्थान था। पं० प्रतापनारायण मिश्र अक्खड़ प्रकृति के थे। उनकी ग्राहकों से चन्दा न मिलने पर बराबर चलती रहती थी। वे उन पर मृदुल व्यंग्य की वर्षा किया करते थे—

"हजरात नादिहंद साहब अब तक तो हम समझे थे कि थोड़ी बात पर क्यों रंजिश हो पर आप अब तक न समझे तो खैर जनवरी में हम आपकी ईमानदारी, जमामारी और मान की ख्वारी करेंगे, क्षमा कीजिए।"[1]

उनका चन्दा माँगने का ढंग भी हास्यपूर्ण था, देखिए—

हरगंगा

"आठ मास बीते जजमान, अब तौ करौ दक्षिणा दान। हर०
आजु कालिह जो रुपया देव, मानौ कोटि यज्ञ करि लेव। हर०
मांगत हमका लागै लाज, पै रुपया बिन चलै न काज। हर०
तुम अधीन ब्राह्मण के प्रान, ज्यादा कौन बकैं जजमान। हर०
जो कहुँ देहो बहुत खिझाय, यह कौनिउ भलमंसी आय। हर०

× × ×

चार महीने हो चुके, ब्राह्मण की सुधि लेहु।
गंगा माई जै करैं, हमें दक्षिणा देहु।

जो बिन माँगे दीजिए, दुहुँ दिशि होय आनन्द।
तुम निश्चिंत को हम करैं, मांगन की सौगन्द।"

---

१. हिन्दी प्रदीप—नवम्बर १८७८, पृष्ठ १६.
२. ब्राह्मण—१५ दिसम्बर १८८४ (भाग २, संवत १९१०)

ब्राह्मण के प्रति अंक में "गपशप" शीर्षक स्तम्भ में मनोरंजक टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं। "तृप्यंताम" शीर्षक उनकी हास्य-रसात्मक कविता १५ दिसम्बर, १८८४ के अंक में प्रकाशित हुई थी। "ब्राह्मण" की फाइलों में सैकड़ों हास्य-व्यंग्य पूर्ण लेख एवं कविताएँ मिलेंगी जिनको एकत्रित कर प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

'भारतेन्दु' को पं० राधाचरण गोस्वामी वृन्दाबन से निकालते थे। यह मासिक छपता था। इसका प्रथम अंक २२ अप्रैल, सन् १८८३ को प्रकाशित हुआ। इसके पहले अंक की सूची इस प्रकार है—

इसके प्रत्येक अंक में हास्य रस की कोई कविता, प्रहसन, निबन्ध अथवा टिप्पणी अवश्य रहती थी। इसमें "समाचार" भी व्यंग्यात्मक छपते थे। वृदावन में हैज़ा फैलने पर गोस्वामी जी ने सूचना निकाली है—

"**इश्तिहार !!!**

बहुत से आदमी दर्कार हैं

जनाब नव्वाब हैजा खाँ बहादुर रिसालदार मलिकुल मौत इन दिनों शहर मथुरा में तशरीफ लाये हैं, और हर रोज चार बजे सुबह से चार बजे शाम तक अच्छे खूबसूरत जवानों को भरती करते हैं जिस किसी को इनके रिसाले में भरती होना हो इनके हैड क्वार्टर दशाश्वमेध घाट या ध्रुव घाट पर जाकर नाम दर्ज रजिस्टर करावे।"

(ध्रुव घाट पर मथुरा का श्मशान स्थित है)

इसी प्रकार इसमें "रेलवे स्तोत्र", "कलयुग राज्य का सर्क्यूलर", "इलवर्ट बिल पर स्यापा" आदि अनेक हास्य रसात्मक कृतियाँ प्रकाशित हुई।

लखनऊ से **"रसिक-पंच"** नामक हास्य रस का मासिक पत्र भी निकला। **"भारतमित्र"** कलकत्ते से सन् १८७८ में निकला इसमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त के हास्य-रसपूर्ण लेख व कविताएं प्रकाशित होती थीं। "हिन्दी—बंगवासी" में भी बाबू बालमुकुन्द गुप्त हास्य रस की कविता तथा लेख लिखते थे।

द्विवेदी युग में "मतवाला" हास्य रस का अत्यन्त प्रसिद्ध साप्ताहिक निकला। कलकत्ते से महादेव प्रसाद सेठ इसे निकालते थे। इसके सम्पादक मंडल में थे बाबू नवजादिक लाल श्रीवास्तव, निराला एवं आचार्य शिवपूजन सहाय। सन् १९२३ में यह निकला था। इसके मुख पृष्ठ पर यह दोहा प्रकाशित होता था—

"अमिय गरल शशि शीकर, राग विराग भरा प्याला,
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला'।"[1]

मूल्य इस प्रकार लिखा जाता था—

"एक प्याले का एक आना नगद, वार्षिक बोतल तीन रुपये पेशगी।"

सम्पादकीय के ऊपर यह दोहा छपता था—

"खींचो न कमानो न तलवार निकालो,
जब तोप मौकाबिल है तो अखबार निकालो।"

इसमें अधिकतर लेख गुप्त नामों से प्रकाशित होते थे। "चाबुक" शीर्षक स्तम्भ में साहित्यिक चोरों पर व्यंग्य वाण बरसाए गये थे। "मतवाला की बहक" शीर्षक स्तम्भ में सामयिक विषयों पर हास्यमय टिप्पणियाँ दी जाती थीं। "चलती चक्की" शीर्षक स्तम्भ में समाचारों के सार हास्यमय शैली में दिये जाते थे। इस शीर्षक को श्री चक्रधर शर्मा लिखते थे।

इस पत्र की अपने समय में बड़ी धूम रही। इसके जवाब में कलकत्ते से "मौजी" नामक हास्य रस का पत्र निकला। इसकी तथा "मतवाला" की खूब नोक-झोंक रहती थी। इसमें "भास्कतरानन्द" नामक लेखक प्रति अंक में मनोरंजक निबन्ध लिखा करते थे। "मतवाला" के "होलिकाँक" में तत्कालीन प्रसिद्ध लेखक एवं कवि यथा प्रसाद, प्रेमचन्द आदि सब लिखते थे। उग्र जी का "दिल्ली का दलाल" तथा "चन्द हसीनों के ख़तूत" मतवाला में ही धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए।

---

१. भारतेन्दु—२२ अप्रैल सन् १८८३, मुख पृष्ठ का अन्तिम पृष्ठ।

कलकत्ते से "हिन्दू-पंच" निकलता था। इसके सम्पादक थे पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा तथा प्रकाशक थे आर० एस० वर्मन। इसमें भी हास्य-रस की कविताएँ तथा लेख बराबर छपते थे।

आर्य समाजियों के मुखपत्र "आर्यमित्र" में भी हास्य-रस की सामग्री यथेष्ट मात्रा में निकलती थी। सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त शर्मा "पंच-प्रपंच" शीर्षक प्रहसन इसमें लिखते थे जिनकी उस समय बड़ी धूम थी। "कण्ठी जनेऊ का व्याह" तथा "स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी" इसी में प्रकाशित हुए। पं० हरिशंकर शर्मा भी "विनोद-विन्दु" स्तम्भ में "विनोदानन्द" के नाम से हास्य रस की चीज़े इसमें बराबर लिखते रहे।

हरिद्वार से "सरपंच" नामक हास्य रस का एक पत्र थोडे दिनों निकला। "प्रेमा" नामक पासिक पत्र लोकनाथ सिलाकारी के सम्पादकत्व में जबलपुर से निकलता था। उसका "हास्यरसांक" श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा के सम्पादकत्व में निकला जिसमें हास्य रस के अनेक लेख तथा कविताएँ निकलीं।

इलाहाबाद से "मदारी" नामक हास्य रस का साप्ताहिक कई वर्षों निकला। इसका मूल्य "फी तमाशा दो पैसे" था। इसके सम्पादक एस० पी० श्रीवास्तव थे। इसके मुखपृष्ठ पर यह दोहा छपता था—

"सोटा लेकर नये ठाठ से, सदा मदारी आवेगा,
जो भारत का अहित करेंगे, उनको पकड़ नचायेगा।"[1]

इसके स्थायी स्तम्भों के शीर्षक थे—"मदारी का सोटा", "बानर का नाच", "घंटाघर के कंगूरे से", "डमरू की डिमडिम," आदि।

लखनऊ से अमृतलाल नागर तथा नरोत्तम नागर के सम्पादकत्व में "चकल्लस" हास्यरस का साप्ताहिक कई वर्षों निकला। अमृतलाल नागर "तस्लीम लखनवी" उपनाम से "नवाबी मसनद" शीर्षक कहानियाँ प्रति अंक में लिखते थे। इसके "फूल अंक" में पं० गोविन्द वल्लभ पन्त, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन आदि ने हास्य रस के लेख लिखे। "गुस्ताखीनामा" तथा "कुकड़ूँ-कूँ" इसके स्थायी स्तम्भ थे।

"नोंक-झोंक" मासिक जनवरी सन् १९३७ में आगरा से निकला था तथा पिछले १९ वर्षों से निरन्तर निकल रहा है। यह विशुद्ध हास्यरस का पत्र

१. मदारी—सितम्बर १९३२.

है। केदारनाथ भट्ट इसका सम्पादन करते हैं। पिछले कई वर्षो से भगवत-स्वरूप चतुर्वेदी भी इसका सम्पादन कर रहे हैं। "हमारी-आपकी नोंक-झोंक" स्तम्भ में पाठकों के प्रश्न तथा उनके मनोरंजक उत्तर रहते हैं। सामयिक विषयों पर मनोरंजक लेख एवं व्यंग्यपूर्ण कविताएँ निकलती हैं।

बनारस भी हास्यरस के पत्रों का केन्द्र रहा है। "तरंग" पाक्षिक पिछले कई वर्षों से निरन्तर निकल रहा है। प्रारम्भ में सम्पादक बेढ़ब बनारसी थे, आजकल इसके सम्पादक "बेधड़क बनारसी" हैं। कुंज बिहारी पाण्डे, राधाकृष्ण, बेढ़ब बनारसी, चोंच, भैयाजी बनारसी, आदि इसमें बराबर अपनी हास्यमय कृतियाँ दिया करते हैं। इसमें व्यंग्य चित्र भी बराबर निकलते हैं। प्रतिवर्ष होली के अवसर पर "होलिकांक" तथा १ अप्रैल को "फूल अंक" प्रकाशित होते रहते हैं। "तरंग के छींटे" शीर्षक में हास्य-रस की टिप्पणियाँ निकलती हैं। "अजगर", "करेला" तथा "भूत" नामक हास्य-रस के पत्र भी थोड़े-थोड़े दिन बनारस से निकल कर काल-कवलित हो गये। "खुदा की राह पर" काशी से मुंशी खैराती खाँ के सम्पादकत्व में मासिक के रूप से कई वर्ष निकला। इसके मुख पृष्ठ पर एक व्यंग्य चित्र निकलता था। "खैराती खाँ की झोली से" शीर्षक हास्य रस की टिप्पणियाँ इसमें बराबर निकलती थीं। "बनारसी बैठक" शीर्षक स्तम्भ में हास्य-रस की कविताएँ निकलती थीं। "बिखरे हुए फूल" स्तम्भ में उर्दू की हास्य रस की कविताएँ प्रकाशित होती थीं। १५ जौलाई, सन् १९४० के अंक के मुखपृष्ठ पर एक नवाब साहब का व्यंग्य चित्र है और नीचे निम्नलिखित पद्य छपा है—

> **"सड़ा हुआ सामान सजा कर सन्मुख बैठे,**
> **कसे कसाए देश-नाश का काठी दुमचा।**
> **बदबू से है नाक फटी लोगों की जाती,**
> **लेकिन "लीद नवाब" अकड़ कर बेचें खुमचा।"[1]**

जनवरी सन् १९४१ से एक वर्ष तक "बेढ़ब" मासिक हास्य रस का पत्र निकला जिसके सम्पादक श्री किशोर वर्मा "श्रीश" थे। इसमें हास्य-रस की कहानियाँ, कविता, आदि बराबर प्रकाशित होते थे। "बीबी और शौहर के खत" शीर्षक रत्ननाथ शरशार, लखनवी के पत्रों का उर्दू से अनुवाद क्रमशः प्रकाशित होता था।

---

१. खुदा की राह पर—प्रेदी ४, भाग ६.

"किसमिस" हास्य-रस मासिक कानपुर से सन् १९४८ से एक वर्ष तक निकला। इसके सम्पादक वागीश शास्त्री रहे। इसने हास्य-रस के प्रसिद्ध कवि रमई काका के सम्मान में "रमई काका विशेष अंक" फरवरी सन् १९५३ में निकाला। इसमें देहाती जी, भुशंडिजी, रमई काका, वंशीधर शुक्ल, हास्य-रस की कविताएँ बराबर लिखते रहे। इसमें अधिकतर अवधी भाषा की कृतियाँ ही निकलीं। प्रहसन भी इसमें पर्याप्त प्रकाशित हुए।

बँगला के प्रसिद्ध हास्य-रस पत्र "सचित्र भारत" का हिन्दी संस्करण "हिन्दी सचित्र भारत" में पाक्षिक रूप से बराबर निकलता है। श्रीनारायण झा इसके सम्पादक हैं। इसमें व्यंग्य चित्र भी बराबर प्रकाशित होते हैं। "चाचा उवाच" शीर्षक में सामयिक समाचारों पर हास्यमय टिप्पणियाँ छपती हैं। "ज्ञान से बाहर" शीर्षक स्तम्भ में कहानियाँ छपती हैं। "चकाचौंध" नाम से हास्य रस की कविताएँ प्रकाशित होती हैं। "लबड़ धौं-धौं" शीर्षक स्तम्भ में "लबाल बलास" पाठकों के प्रश्नों के मनोरंजक उत्तर देते हैं।

पटना से पिछले दो वर्षों से मासिक पुस्तिका के रूप में "चाणक्य" प्रकाशित हो रहा है। इसके सूत्राधार "शिवनन्दन-सांस्कृत्यायन" एवं "सुरेन्द्र कौडिल्य" हैं। "कौमुदी महोत्सव" शीर्षक स्तम्भ में व्यंग्यात्मक कविता प्रकाशित होती है। "राक्षस-मान-मर्दन" में सामयिक प्रसंगों पर कटु आलोचना, तथा "शकटार-दर्प-दलन" शीर्षक स्तम्भ में साहित्यिक व्यंग्य, "आकाशवाणी" शीर्षक में रेडियो विषयक व्यंग्य, "शिक्षा-परीक्षा" में शिक्षा विषयक समस्याओं पर व्यंग्यात्मक आलोचना तथा "खूबी-खराबी" में पुस्तकों की हास्य-रसपूर्ण आलोचनाएं निकलती हैं।

१५ जनवरी, सन् १९५६ को पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने "हिन्दी-पंच" नामक पाक्षिक हास्य-रस का अंक निकाला है। मुख पृष्ठ पर गणेश जी का खद्दर की टोपी लगाये व्यंग्य चित्र प्रकाशित हुआ है। "पंचायत" स्तम्भ में साहित्यिक एवं राजनैतिक समाचारों पर व्यंग्यपूर्ण टिप्पणियाँ हैं। "उल्टी-सीधी बातें" स्तम्भ में हास्य-रसपूर्ण कविताएँ हैं। "कसौटी" में साहित्यिक आलोचनाएँ हैं।

उपसंहार

अंग्रेज का "पंच" जोकि सैंकड़ों वर्षों से अनवरत निकल रहा है; ऐसा अभी तक हिन्दी में हास्य-रस का कोई पत्र नहीं निकला। "मतवाला" कलकत्ता

बहुत समय तक निकला और उसकी खूब धूम रही। उसका स्तर भी ऊँचा था। बाद में मिर्जापुर से "मतवाला" उग्र जी के सम्पादन में पुनः निकला, किन्तु वह भी काल-कवलित हो गया। "जोधपुर" से भी कुछ उत्साही साहित्य प्रेमियों ने "मतवाला" निकाला परन्तु वह भी बन्द हो गया। दिल्ली से "शंकर वीकली" जिस प्रकार निकल रहा है उस प्रकार के पत्र निकलने की हिन्दी में आवश्यकता है।

: १२ :

अनुवादित गद्य साहित्य में हास्य

हिन्दी साहित्य में विदेशी लेखकों तथा प्रान्तीय भाषाओं की हास्य रस की कृतियों के अनुवाद मिलते हैं। फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के अनुवाद तो कई लेखकों ने किये हैं। इसके अतिरिक्त साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों के होलिकांकों एवं हास्य-रस विशेषांकों में तथा कभी-कभी साधारण अंकों में भी अन्य भाषाओं के प्रसिद्ध हास्य-रस के लेखकों की कृतियों के अनुवाद भी प्रकाशित होते रहते हैं।

प्रसिद्ध विदेशी व्यंग्यकार "स्विफ्ट" के "गुलीवर ट्रेविल्स" का अनुवाद पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने "विचित्र विचरण" नाम से किया। इन्होंने ही प्रसिद्ध विदेशी हास्य-रस लेखक "मार्क ट्वेन" की रचना "डान क्युवज़ोट" का अनुवाद "विचित्र वीर" नाम से किया।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर के नाटक Le Mariage Force का अनुवाद "नाक में दम" नाम से किया था Law Jalousie Dn. Barhonille का अनुवाद "जवानी बनाम बुढ़ापा" नाम से तथा La Misan Thrope का अनुवाद "मार-मार कर हकीम" नाम से किया। श्रीवास्तव जी ने अनुवाद में मूल नाटकों के रीति-रिवाजों तथा नामों में परिवर्तन कर भारतीय वातावरण में ढालने का सफल प्रयत्न किया है। जैसे "नाक में दम" के पात्र हैं—मुसीबत मल, झटपट राम, पं० संकोचानन्द, घर बिगाड़, मैडम कुलच्छनी। "जवानी बनाम बुढ़ापा" में मुन्शी बरबाद मुन्शीवर, मिस्टर धरपकड़ तथा "मार-मार कर हकीम" में लालबख्श, हर्रेखाँ, खूसट बेग, आदि। Le Mariage Force का अनुवाद "रावबहादुर" नामसे पं० लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय ने किया है।

बंगला से विश्वकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के "नाट्य कौतुक" का अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेय ने "हास्य-कौतुक" के नाम से किया है। इसमें

छात्र की परीक्षा पेट और पीठ, अभ्यर्थना, आदि १५ हास्य-रस की कहानियाँ हैं। राजशेखर वसु जो बंगला में "परशुराम" नाम से हास्य-रस की कहानियाँ लिखते हैं उनके दो कहानी-संग्रह "लबड़ धों धों" तथा "भेड़िया धसान" नाम से हो चुके हैं। रवीन्द्र नाथ मैत्र की हास्य-रस की कहानियों के एक संग्रह का अनुवाद "चित्रलोचन कविराज" के नाम से हुआ है उसमें "प्रेम व्याधि", "आलस्टार ट्रेजेडी", "ज्वार-भाटा", "समाज सुधारक" नामक कहानियाँ हैं।

"धूर्ताख्यान" एक श्वेताम्बर भिक्षुक कृत संस्कृत ग्रन्थ का अनुवाद है इसमें "एलाषाड़", "शंस" तथा "खंडवरणा" नामक पात्रों का मनोरंजक वार्तालाप है।

मराठी के प्रसिद्ध लेखक स्व. श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर के प्रसिद्ध ग्रन्थ "सुभाषित आणि विनोद" का अनुवाद हिन्दी रूपान्तर श्री रामचन्द्र वर्मा ने "हास्य-रस" के नाम से किया है। इसमें हास्य रस का शास्त्रीय विवेचन एवं अनुशीलन है।

उर्दू के प्रसिद्ध लेखक "रत्ननाथ सरशार" का कथा-ग्रन्थ "फ़िसानये आज़ाद" का अनुवाद स्वर्गीय प्रेमचन्द जी ने "आज़ाद कथा" नाम से किया। उर्दू के प्रसिद्ध कहानी लेखक मिर्ज़ा अज़ीम बेग चग़ताई की कहानियों का अनुवादित संग्रह "चग़ताई की कहानियाँ" तथा उनका उपन्यास "कोलतार" का अनुवाद हिन्दी में "कोलतार" के नाम से हुआ है। शौकत थानवी के उपन्यास "राजा साहब" का अनुवाद भी "राजा साहब" के नाम से हुआ है।

प्रसिद्ध गुजराती हास्य-लेखक ज्योतीन्द्र दुबे की कहानियों के अनुवाद "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में प्रकाशित हुए हैं।

हिन्दी में विदेशी तथा प्रान्तीय भाषाओं की हास्य रस की कृतियों के अनुवादो की बहुत आवश्यकता हैं।

●

: १३ :

रेडियो-रूपक साहित्य

रेडियो-रूपक हिन्दी साहित्य में नवीन वस्तु है। साधारण नाटक एवं रेडियो रूपक में भेद है। दोनों के तन्त्र (टेकनीक) एवं प्रयोग भिन्न-भिन्न हैं। नाटक जहाँ दृश्य-काव्य है वहाँ रेडियो रूपक श्रव्य-काव्य है। रेडियो नाटक में ध्वनि ही प्रमुख साधन है। रंगमंच पर नृत्य एवं आंगिक अभिनय द्वारा रस की सृष्टि की जाती है जबकि रेडियो रूपक में इन साधनों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। रेडियो नाटक · देश, काल एवं स्थान के बन्धनों से मुक्त होता है। रेडियो-रूपकों में स्वगत-भाषण, स्वप्न-सम्भाषण स्वाभाविक होते हैं किन्तु रंगमंच पर ये अस्वाभाविक लगते हैं। हृदय-गत भाव स्वगत कथन द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से व्यंजित किये जा सकते है।

दिल्ली आकाशवाणी केन्द्र से **भगवतीचरण वर्मा** के हास्य-रस प्रधान नाटक "सबसे बड़ा आदमी" एवं "दो कलाकार" प्रसारित हो चुके हैं। **विष्णु प्रभाकर** का "कांग्रेस मैन बनो" तथा **उदयशंकर भट्ट** का "दस हज़ार" भी दिल्ली से प्रसारित होने वाले प्रसिद्ध हास्य-रस प्रधान नाटक हैं। इधर "चिरंजीत" के कई व्यंग्यात्मक नाटक दिल्ली आकाशवाणी से प्रकाशित हुए हैं जिनमें "दफ्तर जाते समय" एवं "अखबारी विज्ञापन" सुन्दर हैं। दफ्तर जाते समय एक बाबू साहब कंघा न मिलने से घर में तूफान खड़ा कर देते हैं। अन्त में जब कंघा मिल जाता है तो पता लगता है कि आज रविवार की छुट्टी है। "अखबारी विज्ञापन" में एक साहब नौकरी पाने के लिए विज्ञापन देते हैं, पोस्ट बाक्स नम्बर ग़लत हो जाने से विवाह योग्य लड़कियों के अभिभावकों के पत्र मय चित्रों के उनके पास अखबार के दफ्तर से भेज दिये जाते हैं और उनकी स्त्री यह जान कर कि उसके पति दूसरा विवाह करने जा रहे हैं, घर में क्लेश मचाती है। अन्त में अखबार का **मैनेजर** आकर भ्रम का निवारण करता

है। इस नाटक का कथोपकथन सजीव एवं प्रभावोत्पादक है। मदनमोहन की स्त्री दुर्गा उससे कहती है—

"मदनमोहन (घबराया हुआ सा)—**दुर्गा, मैं सच कहता हूँ मुझे इसका नहीं। मैंने विज्ञापन... .....।**

दुर्गा (गुस्से से तिलमिला कर)—**यों झूठ बोलने से अब कोई फायदा नहीं। आपका सारा षड़यंत्र प्रमाण-सहित मेरे कब्जे में है। (एक चिट्ठी दिखाकर) यह देखिए, इलाहाबाद से आये इस पत्र के साथ इश्तिहार की कतरन भी नत्थी है। इस पर बक्स नं० ३११ ही दिया हुआ है। इश्तिहार में आप लिखते हैं— "जरूरत है ४०० रु० मासिक वेतन पाने वाले सभ्रान्त कुल के एक सुयोग्य उन्नतिशील ३० वर्षीय वर के लिए एक सुन्दर पढ़ी-लिखी कुमारी कन्या की। जात-पांत का कोई बन्धन नहीं। पत्र व्यवहार के लिए पता, बक्स नं० ३११ मार्फत नेशनल पत्रिका। (सव्यंग्य) ऐसे वर के चरणों पर कौन कुँआरी कन्या अपना तन मन धन अर्पण नहीं कर देगी ?"**

—(अखबारी विज्ञापन)

रेडियो-रूपक में वार्तालाप का सजीव होना आवश्यक है क्योंकि वही प्रभाव डालने का एक प्रमुख साधन है।

लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र से "**रमई काका**" के अवधी के प्रहसन लोक-प्रिय हुए हैं। उनका "रतौंधी" नाटक तो कई बार विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित किया जा चुका है। नाटक के नायक "बिरजू" को रतौंधी आती है। वह अपने ससुराल एक विवाह में जाता है और साथ में अपने गाँव के नाई को ले जाता है। नाई की हाजिरजवाबी बिरजू की रतौंधी को ससुराल में छिपाने में बराबर सफल होती है। कई बार पोल खुलते-खुलते रह जाती है। ससुराल में खाने को बिठाते हैं, बिरजू खाने की तरफ पीठ तथा दीवाल की तरफ मुँह करके बैठ जाता है, नाई स्थिति को तुरन्त सँभाल देता है।

"अँगनू—**अरे द्याखौ मालिक देवाल तन मुँह कीन्हे बइठ हैं।**

नाऊ काका—**वाह मालिक ! ससुरारिऊ माँ ठेहलाव कै आदति नहीं छुटि। भोजन पाछे धरा है औ मुँह देवाल तन कीन्हें बइठ हो।**

विरजू—**नाऊ काका हमका दुभाँति नहीं नीकी लागति। तुम हुमारे आहिउ तौनु हम कहा जब तक भीतर न आय जइहौ तब तक भोजन खायकी को कहै हम आँखिन ते द्याखब तक ना।"**

इसी प्रकार की अनेक घटनाएँ घटित होती हैं किन्तु नाई उन्हें सँभालता जाता है और बिरजू विवाह सम्पन्न कराकर वापिस लौटते हैं। इनके अन्य नाटक जो प्रसारित हुए है वे हैं—दुसाला, बहिरे बाबा, तीन आलसी, नटखट पूसी, अफीमी चाचा तथा 'का हम कोहू ते कम हन।

श्री रामउजागर दुबे के भी कई प्रहसन लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र से प्रसारित हो चुके हैं। उनमें "सुर्जनसिंह–इन्टर क्लास में" अधिक लोकप्रिय हुआ है। इस नाटक में एक सफ़ेदपोश बाबू की बेईमानी और असभ्यता की पोल खोली गई है जो स्वयं बिना टिकट सफर करते हुए भी ड्योढ़े दरजे का टिकट लेकर यात्रा करने वाले एक सीधे सादे ग्रामीण सज्जन को सताता है। साथ ही साथ उन ग्रामीण सज्जन की उदारता का भी चित्रण किया गया है जो उन सफेदपोश बाबू की लाज बचाते हैं। इसका रोचक वार्तालाप देखिए—

"(गाड़ी का सीटी देना तथा धीरे धीरे चलना। प्लेटफार्म की भीड़ कुछ कम। मुसाफिर अपने मित्रों से विदाई के संकेत कर रहे हैं)

सुर्जन सिंह—**मुझे क्या देखने सुनने आवेंगे। दिखलाना है तो सुर्जनसिंह के लड़के को दिखलाइये। सुर्जनसिंह का तो अब चालीसा लगा है।**

बाबूजी—**तुम अपनी बेजा हरकतों से बाज़ नहीं आओगे? अभी भी टर्रा रहे हो।**

सुर्जन सिंह—**इसमें टर्र की कौन सी बात है। मैं कोई जनाना थोड़े ही हूं कि अपनी मदद के लिए अपने आदमी को बुलाऊँ। मुझे तो अपने बलबूते पर भरोसा है। अगर टर्र-टर्र कर भी रहा हूँ तो इसमें किसी का क्या इजारा।"**

इसमें रेल के सफर में ही सब घटनाएँ घटित होती हैं जो कि रेडियो द्वारा ध्वनि की सहायता से सुनाई जा सकती हैं। रंगमंच पर यह उतनी सफलतापूर्वक नहीं खेला जा सकता।

इलाहाबाद ग्राकाशवाणी केन्द्र से **केशवचन्द्र वर्मा** के दो रूपक जो प्रसारित हो चुके हैं, देखने में ग्राये—"शहनाइयाँ" तथा "जैसे कोल्हू में सरसों"। दोनों ही प्रहसन सामाजिक हैं। "जैसे कोल्हू में सरसों" में चिरंजीव, रेखा एवं कैप्टेन प्रमुख पात्र हैं। रेखा को चिरंचीव तथा कैप्टेन दोनों प्यार करते हैं। हास्य का सृजन कैप्टेन साहब के कुत्ते के माध्यम से किया गया है जिससे चिरंजीव बहुत भयभीत होते हैं। इसमें ग्राजकल के उन नवयुवकों पर व्यंग्य किया गया है जो सस्ते प्रेम के चक्कर में पड़ कर ग्रपना जीवन नष्ट करते हैं। कैप्टेन के कुत्ते को देख कर प्रेमी चिरंजीव दीवाल के ऊपर चढ़ जाते हैं—

"चि०—**(घबड़ाते हुए) देखिए, वह कुत्ता ग्रलग कर दीजिए, मिस्टर। (कुत्ता भौंकता है) ये......ग्ररे बाबा। ग्रजी साहब, ग्राप इसे तो ग्रलग कर दीजिए......ग्राप जो कहियेगा फिर समझ कर बताऊँगा......(कुत्ता फिर भौंकने लगता है) ग्रजी साहब, भगवान् के लिए......।**

कै०—**देखो जी चिरौंजी लाल......मैं जो कह रहा हूँ उस पर ग़ौर करो।**

चि०—**(कुछ बिगड़ते हुए से) देखिए जनाब, मेरा नाम चिरंजीव है......चिरौंजी लाल नहीं है।** You can correct yourself. **ग्रपनी जबान दुरुस्त कर दीजिए** What is this? **चिरौंजी लाल?**

कै०—Shut up. This is non-sense. **(कुत्ता भौंकने लगता है) दोनों एक ही बात है।**

(सहसा कुर्सी गिरने की ग्रावाज होती है ग्रौर चिरंजीव मेज़ पर चढ़कर खड़ा हो जाता है ग्रौर चिल्लाता भी है, "ग्ररे बाप ग्ररे !!)"

श्री विजयदेव नारायण साही का "एक निराश ग्रादमी" शीर्षक रेडियो रूपक इलाहाबाद ग्राकाशवाणी केन्द्र से प्रसारित हो चुका है। इसमें राजशेखर ग्रग्रवाल, मैनेजर गुप्ता एवं शास्त्री तथा निराश ग्रादमी ग्रादि पात्र हैं। समाज में फैली हुई "सिफारिश" पर इसमें व्यंग्य किया गया है। एक व्यक्ति जिस की सिफारिश नहीं है लेकिन एम० ए० पास है वह नौकरी पाने से रह जाता है किन्तु एक कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति उसी स्थान को सिफारिश के बलबूते पर प्राप्त कर लेता है। सिफारिश-पसन्द व्यक्ति "सिफारिश" का महत्व बतलाता हुग्रा कहता है—

"निराश आदमी—क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ। यह लीजिए मैं अपना एम० ए० का सार्टीफिकेट भी लेता आया हूँ क्योंकि आज इसके भी राख होने की बारी आ गई है।

(सार्टीफिकेट निकालकर फेंक देता है।)

गुप्ता—तो यह आधार है कि आप की योग्यता का जिस पर आप नौकरी चाहते हैं। अच्छा कारण है। मेरी समझ में नहीं आता कि किसी यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर का हस्ताक्षर किया हुआ यह सिफारिशी कागज किस तरह दूसरी सिफारिशों से भिन्न हैं। मिस्टर निराश आदमी, क्या आप कहना चाहते हैं कि अगर कोई वाइस-चांसलर या प्रोफेसर साहब अपने हस्ताक्षर से मुझे किसी की योग्यता के बारे में पत्र भेजें और जबानी सिफारिश करें इन दोनों में कोई मौलिक अन्तर हो जायगा।"

—(एक निराश आदमी)

श्री भारतभूषण अग्रवाल का "इन्ट्रोडक्शन-नाइट" शीर्षक रूपक आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र से प्रसारित किया जा चुका है। यह विशुद्ध हास्यात्मक है। कालिज-जीवन की रंगरेलियों को लेकर इसमें हास्य का सृजन किया गया है। इसमें गीत भी अच्छे हैं। नाटक इस "कोरस" से प्रारम्भ होता है—

"हम कालिज वाले है,
हम कालिज वाले हैं।
कदम कदम पर बिछे,
हमारे गड़बड़ झाले हैं।
हम कालिज वाले हैं,
हम बेकारी के डर से घर से पढ़ने जाते हैं,
फिर पढ़ने के डर से हरदम सूखे जाते हैं।
दिल में छाले हाथ हमारे मुँह पर ताले हैं,
हम कालिज वाले हैं,
हम कालिज वाले हैं।"

वार्तालाप की सजीवता इस रूपक की विशेपता है—

"प्रश्नकर्ता—किस व्यक्ति को कैसे जूते पसन्द हैं, वह आप कैसे पहचानेंगे ?

उत्तर—उसके स्वभाव और व्यवहार से।
प्रश्न—आप कौन-सा जूता पहनते हैं ?
उत्तर—जब जो मिल जाय।
प्रश्न—आपकी रिसर्च कब समाप्त होगी ?
उत्तर—नौकरी मिलते ही।
प्रश्न—अगर आपको यह नौकरी मिल जाय तो सबसे पहिले आप क्या करेंगे ?
उत्तर—शादी करूँगा।"

—(इंट्रोडक्शन-नाइट)

रेडियो-रूपक साहित्य में हास्य-रस का विशेष स्थान है। भारतेन्दु बाबू, जी० पी० श्रीवास्तव के तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के कई प्रहसनों का रेडियो-रूपान्तर हो चुका है तथा उनका प्रसारण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है।

: १४ :

अँग्रेज़ी साहित्य में हास्य रस

हास्य रस की दृष्टि से अँग्रेजी साहित्य समृद्ध है। चौदहवीं शताब्दी में इंगलैण्ड में फ्रांस निवासी नारमन लोगों का आधिपत्य था। उस समय में लिखी गई "उल्लू और बुलबुल" शीर्षक हास्य-रस पूर्ण कविता आज तक प्रसिद्ध है। इसमें हास्य की वह छटा है जो नन्ददास के "भ्रमरगीत" की याद दिला देती है। बुलबुल कहती है, "चल, चल तू क्या बहस करेगा, तेरा तो सिर ही तेरे शरीर से बड़ा है।" इसके बाद राज-दरबार में फ्रांसीसी भाषा का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया। उस समय "**चासर**" हास्य-रस की कविता के जनक रूप में आये। जिस प्रकार "**अमीर-खुसरो**" की मुकरियों में जन साधारण की समस्याओं को लेकर हास्य का सृज़न किया गया है उसी प्रकार इनके काव्य में साधारण मनुष्यों के विराग, हर्ष, और ग्लानि मिलती हैं।

शेक्सपीयर के नाटकों में हास्य का सुन्दर सृजन हुआ है। उनकी कला में पद-पद पर मानवतावादी दृष्टिकोण और काव्योचित कल्पना का एक अद्‌भुत सम्मिश्रण मिलता है। उनके हास्य में कटुता नहीं है। उनके पुरुष-पात्र बहुत बातूनी मिलते हैं तथा स्त्रियाँ मितभाषी हैं। शेक्सपीयर का सबसे प्रसिद्ध नाटक है "मिडसमर नाइट्स ड्रीम"। इसमें "बाटम" महोदय नाटक करते हैं और इस कदर उत्साह दिखाते है कि प्रत्येक पात्र का अभिनय स्वयं ही कर डालना चाहते हैं। आखिरकार "बाटम" महोदय का सिर गधे के सिर में परिवर्तित हो जाता है और अपने "ढेंचूराग" में तन्मय होकर वह परियों की रानी "टाइटेनिया" की खिदमत में प्रेम निवेदन करते हैं। हिन्दी के हास्य प्रधान नाटकों में शेक्सपीयर जैसा मानवतावादी हास्य का अभाव है। दूसरी बात जो कि शेक्सपीयर में अद्वितीय है, वह है उसके मसखरों का मूर्ख न होना। शेक्सपीयर के मसखरों की बाह्य मूर्खता के अन्तराल में अनन्त दार्शनिकों की गम्भीरता और मनन है। प्रसिद्ध नाटक "साइमन आफ़ एथेन्स" में, जो वास्तव

में एक गम्भीर रचना है, यह पूछे जाने पर कि कौन-सा समय है, उत्तर मिलता है "ईमानदार रहने का समय।"

जानसन का व्यंग्य कटु होता था। अपने कोष में जानसन ने बहुत-सी मनोरंजक परिभाषाओं का संकलन किया है। मछली पकड़ने के काँटे की परिभाषा को इस प्रकार कर देते हैं—"एक ऐसी डण्डी जिसके एक सिरे पर मछली और दूसरे सिरे पर मुर्ख हो।" भारतेन्दु युग में प्रकाशित "हिन्दी-प्रदीप" एवं "ब्राह्मण" में इस प्रकार की हास्य-मय परिभाषाएँ पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। जानसन हाजिर-जवाब भी थे। एक वार जानसन अपने एक मित्र से बातें कर रहे थे कि हज्जाम आ पहुँचा। जानसन बोले—"महाशय, कृपया मुझे छुट्टी दीजिए क्योंकि मुझे कर्तन-कलाचार्य से भेंट करनी है।" पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी भी अत्यन्त विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके विनोदपूर्ण चुटकुलों का संग्रह किया जाय तो वे हिन्दी के जानसन प्रमाणित होंगे।

गोल्डस्मिथ सुधार-वृत्ति के उपन्यासकार थे। उनकी "वह जीतने को ही हारती है" हास्य साहित्य की अमर कलाकृति है। उसका नायक एक बग्घी में बैठाकर अपनी माँ और बहिन को गाँव ले जाने का वायदा करता है। अंधेरी रात में बग्घी मकान के ग्राम के बगीचे में ही घूमती रहती है और उन्हें पता भी नहीं चलता। उपन्यास-साहित्य में हास्य हिन्दी में बहुत कम मिलता है और गोल्डस्मिथ-सी प्रतिभा अभी हिन्दी में नही हुई।

एडीसन तथा **स्टील** ने तत्कालीन इंगलैण्ड में "छैला" बनकर भटकने वाले युवकों पर करारे व्यंग्य किये है। एक जगह तो एक छैला की खोपड़ी की शल्य-क्रिया की जाने पर उसमें से औरतों के हेअरपिन, बालों के स्मृति-रूप में दिए गुच्छे और न जाने क्या-क्या उल-जलूल निकलता है। बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा नाथूराम शंकर शर्मा ने भी अपनी गद्यात्मक तथा पद्यात्मक कृतियों द्वारा तत्कालीन समाज के फैशन-परस्त युवक-युवतियों पर व्यंग्य वाण छोड़े थे।

ड्रायडेन के काव्य में राजनीतिक व्यंग्य का प्राधान्य था। वह राजा का समर्थक था तथा राजा के विरोधियों पर व्यंग्य वाण छोड़ता था। इसके विपरीत बालमुकन्द गुप्त में भी ड्रायडेन की भांति राजनीतिक व्यंग्य प्राधान्य था किन्तु उनके आलम्बन तत्कालीन राज्य के अधिकारी एवं गवर्नर आदि थे।

ड्रायडेन के शिष्य **अलैक्जैन्डर पोप ने** "रेप आफ दी लोक" शीर्षक काव्य पुस्तक में महाकाव्यों का तथा समाज में फैली हुई फैशन की पोल खोली

है। एक युवती के बालों की एक लट कट जाने पर महाभारत का-सा संग्राम करवाया गया है। हिन्दी-साहित्य में भी "हल्दीघाटी" की पैराडी "चोंच" ने "चूनाघाटी" नाम से की है किन्तु उसमें पोप जैसा निर्वाह नहीं हो पाया है।

थैकरे तथा **डिकेन्स** भी हास्य-रस लिखने में प्रसिद्ध थे। "पिकविक-पेपर्स" **डिकेन्स** द्वारा हास्य-रस की अमर कृति है। "मिस्टर पिकविक" ऐसी कलाबाजियाँ दिखाते हैं कि उनकी तोंद पर तरस आता है। प्रेमचन्द ने "मोटे-राम शास्त्री" को नायक बनाकर हिन्दी में "मिस्टर पिकविक" के सृजन करने का सफल प्रयास किया था।

"डेविड कापरफील्ड" के मिस्टर मिकाबर दीवार चढ़ कर घर के अन्दर पहुँचते हैं और घर वालों से मिलकर दीवार-दीवार ही चढ़कर बाहर निकल जाते हैं जबकि कर्जदार घर के बाहर ही खड़े रह जाते हैं। "दि ओल्ड क्यूरिआसिटी शाप" के "डिक सिलवर" जिस गली से उधार लेता है उस गली से आना-जाना छोड़ देता है।

महारानी विक्टोरिया-युग में **"जेरोम के जेरोम"** हास्य-रस के प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक "थ्री मैन इन ए बोट" में स्वास्थ्य पर आवश्यकता से अधिक चिन्ता करने वालों पर व्यंग्य किया है। तीन व्यक्ति स्वास्थ्य-लाभ के हेतु नौका भ्रमण का एक लम्बा कार्यक्रम बनाते हैं। एक स्थान पर नाव कीचड़ में फँस जाती है। एक साहब चप्पू को कीचड़ में गढ़ा कर जोर लगाते हैं। नाव निकल जाती है पर वह साहब चप्पू पर टँगे रह जाते हैं और वह चप्पू वहीं गढ़ा रह जाता है।

आधुनिक युग में **आस्कर वाइल्ड** तथा **बरनार्ड शा** सर्वप्रथम आते हैं। दोनों चमत्कारवादी थे। दोनों एक तरह से जिन्दगी का मखौल उड़ाना चाहते थे। शा ने "जान बुलस आयरलैंड" में अंग्रेजों की साम्राज्य-लिप्सा का अच्छा विश्लेषण किया है। शा में "वाक्छल" प्रधान है। उनका व्यंग्य भी कटु है। उपेन्द्रनाथ "अश्क" ने सामयिक समस्याओं पर शा की पद्धति पर सुन्दर हास्य व्यंग्य-प्रधान नाटक लिखे हैं। **चेस्टरटन** ने साहित्यिक हास्य अधिक लिखा। "चेस्टरटन" की भाँति हिन्दी में पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने साहित्यिक हास्य अधिक लिखा है। "स्विफ्ट" भी अंग्रेजी साहित्य का प्रमुख व्यंग्यकार था। "गुलीवर्स ट्रेविल्स" उसकी प्रसिद्ध कृति थी। ऐसा ही प्रखर व्यंग्य पद्य में "महाकवि निराला" ने, तथा गद्य में शिवपूजन सहाय तथा भारतेन्दुकाल के राधाचरण गोस्वामी में मिलता है।

निबन्ध साहित्य में **ए० जी० गार्डिनर** तथा **चार्ल्स लेम्ब** छोटे-छोटे विषयों पर सुन्दर हास्य-रस पूर्ण निबन्ध लिखने में प्रसिद्ध हैं। गार्डिनर ने अपने एक लेख में प्रश्न उठाया है कि जब पुरुषों के वस्त्रों में इतनी जेबें होती हैं तब स्त्रियों के वस्त्रों से जेब का फैशन ही क्यों उठ जाना चाहिए। जेबों के फैशन उठ जाने के कारण ही उन्हें इतने बड़े बटुए की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार भारतेन्दु काल में बालकृष्ण भट्ट ने दाँत, भौं, आँख, इत्यादि छोटे-छोटे शीर्षकों से सुन्दर हास्य-रस के लेख लिखे थे तथा आधुनिक युग में बेढ़ब बनारसी तथा प्रभाकर माचवे ने स्नेह-हास्य युक्त निबन्ध लिखे हैं।

"**पी० जी० वुडहाउस**" हास्य-रस के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए हैं। उन्हीं की शैली में हाल ही में श्री द्वारका प्रसाद लिखित उपन्यास "गुनाह बेलज्जत" प्रकाशित हुआ है। अमेरिकन लेखक "**स्टीफेन ली काक**" भी हास्य के सुन्दर निबन्ध लेखकों में गिने जाते हैं। उनके निबन्ध भी आधुनिक समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। रूस का "**गोगोल**" अपने व्यंग्य के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है।

वास्तव में देखा जाय तो हास्य-रस की दृष्टि से अँग्रेजी साहित्य हिन्दी साहित्य से कहीं अधिक समृद्ध है। जैसाकि पूर्व अध्यायों में बताया जा चुका है कि हास्य स्वाधीन तथा धनाधान्य से पूर्ण देशों में न पनपेगा तो कहाँ पनपेगा, किन्तु हिन्दी साहित्य में भी पिछले वर्षों में हास्य-रस की जो कृतियाँ निकली हैं उनमें यह आशा होती है कि शीघ्र ही हमारे यहां का हास्य-रस का साहित्य भी दिन प्रति दिन अधिक समृद्ध होता जा रहा है।

●

: १५ :

कार्टून कला

"कार्टून" शब्द का शाब्दिक अर्थ चित्र का कच्चा खाका या "रफ डिज़ाइन" बनाना है। सन् १८४३ में इंगलैड की पार्लियामेंट के भवनों की भित्तियों पर अंकित करने के लिए चित्रों के कच्चे खाकों की एक प्रदर्शिनी की गई थी। इंगलैड के प्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार (कार्टूनिस्ट) श्री "लीच" को यह काम सौंपा गया था। ये चित्र इंगलैड के सुप्रसिद्ध हास्य-पत्र "पंच" में प्रकाशित हुए थे। उसी समय से कार्टून शब्द का महत्व लोगों ने समझा तथा इसका व्यापक प्रयोग होने लगा। कार्टून-कला हमारे जीवन की मूक आलोचना है। व्यंग्य-चित्रकार अपनी तूलिका के सहारे समाज और मानव के घट में कड़वी आलोचना को हँसी-हँसी में उतार देते हैं। लोकतंत्रीय देश में वे जनता की आवाज बुलन्द कर मीठे विरोधी दल का काम करते हैं। इन व्यंग्य चित्रकारों ने राजनीति में एक रस की सृष्टि की है। हमारे बहुरंगी जीवन पर प्रकाश डालने वाली इकरंगी व्यंग्य-रेखाएं यथार्थ और आदर्श का अनोखा सम्मिश्रण है। भारतीय जनना की रुचि इस ओर बढ़ती जा रही है। आज उस समाचार पत्र को अधिक पसन्द किया जाता है जिसमें व्यंग्य-चित्र प्रकाशित होते हैं।

प्रारम्भिक काल में व्यंग्य चित्रों में हास्य और व्यंग्य का समन्वय बहुत सफल ढंग से नहीं होता था। एक चित्र के नीचे कुछ हास्योत्पादक बातें लिख दी जाती थीं। यहाँ तक कि साधारण कहानी के चित्रों में और इन कार्टूनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं होता था। राजनीतिक कार्टूनों के साथ भी यही बात थी। व्यंग्य चित्रकार अधिकतर लाक्षणिक संकेतों का उपयोग करते हैं। यद्यपि आज के व्यंग्य चित्रकार भी यदाकदा इन संकेतों का प्रयोग कर लेते हैं। हाँ, इस परिपाटी का यह परिणाम अवश्य हुआ कि अधिकतर देशों को प्रस्तुत करने के लिए सांकेतिक चिन्ह मिल गए, जैसे अमरीका के लिए "चाचा सेम" और इंगलैंड के लिए "जौन बुल"। व्यंग्य और हास्य कार्टून के अभिन्न अंग बन गए। अब तो कदाचित हास्यहीन कार्टून की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इतिहास

मिश्र, चीन तथा भारत में चित्रों द्वारा परिहास, विनोद एवं कटाक्ष प्रस्तुत करने के प्राचीन नमूने मिलते हैं। दो हजार वर्ष पुरानी अजंता की गुफाओं की चित्रावलियों में व्यंग्य चित्रों के सुन्दर नमूने मिलते हैं। उन चित्रों में हमें मोटे पेट वाले वामन जी, परिचारिकाएं तथा अन्य पात्र उपलब्ध होते हैं। मध्ययुगीन देव मन्दिरों और हस्तलिखित पुस्तकों में भी कहीं-कहीं विनोद-भरी आकृतियां मिल जाती हैं। भृगु-संहिता में व्यंग्य चित्र का उल्लेख आता है।

१७वीं शताब्दी में चित्रों द्वारा विरोध प्रदर्शित करने का प्रयोग इटली में हुआ था। रोमन एकेडेमी के अध्यक्ष 'एनीबाल केरास्त' ने पोप के विरुद्ध चित्रों को प्रदर्शित किया था। इटालियन भाषा में ऐसे चित्रों को उस समय "कैरीकेचर" कहा जाता था। विरोधी की हीनता प्रकट करने के लिए उसका विकृत चित्र ता मूर्ति रची जाती थी। अपने देश में समाज-विरोधियों की विकृत आकृतियाँ बनाकर उन्हें जलाया जाता था।

इटली के "केरीकेचरों" को फ्रांस ने ग्रहण किया और उनका नाम "केरीकेचर" रक्खा। फ्रांस ने उसे इंगलैंड से लिया और उसका नाम "कार्टून" रख दिया। इसके पहले कटाक्ष चित्रों को "कैरीकेचर" ही कहा जाता था। आजकल तो "कैरीकेचर और कार्टून" शब्द पृथक् पृथक् अर्थों में व्यवहृत होते हैं। कार्टून द्वारा राजनीतिक या सामाजिक प्रसंग, घटनाएं या मनोभावनाएं मीठा परिहास करती हुई अंकित की जाती हैं। "कैरीकेचर" में व्यक्ति का ठठ्ठा चित्र प्रस्तुत किया जाता है जिसमें व्यक्ति की मौलिक विद्रूपताएँ अद्भुत व्यंग्यपूर्ण भंगिमाओं में अलिखित होती हैं।

इंगलैण्ड में निपुण चित्रकार "विलियम होगार्थ" (१६९७-?७६४) ने बड़ी खूबी भरे कटाक्ष चित्र बनाये। होगार्थ को हम ब्रिटिश कटाक्ष-चित्रों का पितामह कह सकते हैं। इसकी बनाई चित्रावलियाँ अभी तक सेंट गेलरी तथा सोन म्युज़ियम में सुरक्षित हैं। पहले-पहल विनोद पूर्ण चित्रों का सामयिक पत्र "चारी-वारी" फ्रांस में प्रकट हुआ था। उसकी खूबी और सफलता से प्रेरित होकर सन् १८४१ में इंगलैण्ड में "पंच" का प्रकाशन शुरू हुआ जो अबतक प्रकाशित हो रहा है। "पंच" के कटाक्ष चित्रकारों में "जान लीच" बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसके लगभग ३००० व्यंग्य चित्रों में विनोद की बड़ी सामग्री भरी पड़ी है।

आजकल के ब्रिटिश कार्टूनकारों में डेविड लो, फुगास, ई० एच० शैफार्ड, डेविड लेंगडन, सिलिस, फ्रैंक रेनोल्ड्स, हिथ रौलिन्सन, आदि की अच्छी ख्याति है। इंगलैण्ड के पंच से प्रेरणा प्राप्त करके बीसवी सदी के प्रारम्भ में विभिन्न देशों में अनेक विनोदी चित्रमय सामयिक पत्र प्रकाशित होने प्रारम्भ हुए जिनमें भारत में "हिन्दी-पंच", कनाडा में "ग्रिप", आस्ट्रेलिया में "सिडनी पंच" और अहमदाबाद में "गुजराती पंच" मुख्य है।

भारत में उन्नीसवीं सदी के अन्त में तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में कटाक्ष चित्रों का प्रारम्भ हुआ। अनेक वस्तुओं की तरह कटाक्षपूर्ण चित्रपट की शुरूआत भी एक पारसी सज्जन ने की है। अंग्रेजी चित्र-पत्र "पंच" से प्रेरणा पाकर भारत में "हिन्दी-पंच" शुरू हुआ। इसके संपादक बरजोर जी थे। अपने कटाक्ष चित्रों के लिए यह देश विदेश दोनों में लोकप्रिय हो गया था। राजनैतिक पुरुषों के व्यंग्य-चित्र बनाना और सत्तारूढ़ लोगों की त्रुटियों के विरुद्ध चित्रों द्वारा प्रहार करना इसकी विशेषता थी। इसका मुखचित्र तो अंग्रेजी "पंच" से भी अधिक कलात्मक था। सन् १९३५ में "हिन्दुस्तान टाइम्स" और "हिन्दुस्तान" में श्री शंकर के व्यंग्य चित्र प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। ये चित्र अत्यन्त लोकप्रिय हुए। कुछ वर्ष बाद शंकर ने अपना "शंकर्स वीकली" नामक हास्य-रस प्रधान साप्ताहिक अंग्रेजी में निकालना प्रारम्भ किया जो बराबर प्रकाशित हो रहा है। शंकर के कटाक्ष-चित्र जबसे उसी में निकलते हैं।

शंकर के अतिरिक्त आर० एम० नायडू, माली, मून, मनरो, वासु, वीरेश्वर, अहमद, आर० के० लक्ष्मण, दलाल, ग० ना० जाधव, बाल ठाकरे, शिक्षार्थी, प्रथम, शैल, कडीरवां, शिशिर दे, चकोर और कांजिलाल अग्रगण्य हैं। शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के भाई स्वर्गीय गगनेन्द्र नाथ ठाकुर के कार्टून बड़े प्राणपूर्ण होते थे। उनका एक संग्रह भी छपा था। इसके अतिरिक्त श्री शंकर, मनु, मनरो, किर्लेस्किर, दलाल, शनि, अहमद और चकोर की चित्र-पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

राजनैतिक कार्टून

राजनैतिक व्यंग्य चित्रकार को सदा दैनिक खबरों से सुपरिचित रहना पड़ता है। यही नहीं, किसी भी घटना की पृष्ठ-भूमि से भी पूर्णतया अवगत होना आवश्यक है। इसके बिना वह सही दृष्टिकोण नहीं बना सकता। उसे

राजनैतिक व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन और आदतों से परिचित होना चाहिए। राजनैतिक व्यंग्य चित्रकार सदा व्यापक प्रभाव डालने वाले विषय ही चुनता है। कलाकार एक समानान्तर परिस्थिति की खोज में साहित्य, इतिहास और पौराणिक कथाओं का सहारा लेता है। राजनैतिक व्यंग्य चित्रकार को चित्र बनाने के लिए बहुत कम समय मिलता है और यही कारण है कि उसे बड़ी तेज़ी से काम करना पड़ता है।

सामाजिक कार्टून

इनमें समाज की परिहासपूर्ण आलोचना रहती है। इस क्षेत्र में उदीयमान व्यंग्य चित्रकार सैमुएल और प्रकाश का कार्य विशेष सराहनीय है। सैमुएल ने "मुसीबत है", "दिल्ली के स्वप्न", "यह दिल्ली है" शीर्षक से जो हमारे जीवन पर व्यंग्य किये हैं वे हँसाये बिना नहीं रहते। सुनील चट्टोपाध्याय ने अति आधुनिकता के "तिकोनिया फैशन" पर अच्छे व्यंग्य चित्र बनाए हैं। अनवर ने पाकिस्तान में फैले भ्रष्टाचार पर बड़ी गहरी चोटें की हैं। एक बालक यात्री को कहते दिखाया कि मैं उस कुली को लूँगा जिसके पास मिनिस्टर की सिफारिश का पत्र होगा।

व्यंग्य पट्टियाँ

इनके बनाने का प्रचार भी खूब हो गया है। "खूरो की बड़ी-बड़ी मूँछें", "चन्दू की पगड़ी" और "पोपट का बड़ा पेट" नित्य पाठकों को हँसाते हैं। ये अधिकतर कथा-प्रधान होती हैं। वे बालकों के लिए बहुत आकर्षक होती हैं।

हिन्दी की साहित्यिक मासिक पत्रिकाओं में भी समय समय पर व्यंग्य चित्र प्रकाशित होते रहते हैं। "सरस्वती" में द्विवेदी जी ने कई वर्षों तक सामयिक विषयों पर व्यंग्यचित्र प्रकाशित किये। माधुरी, सुधा, मतवाला, नोंक-झोंक आदि में भी व्यंग्य चित्र छपे हैं। प्रसिद्ध व्यंग्य चित्रकार "शिक्षार्थी" ने हास्य-प्रधान "मुसकान" मासिक में अपने व्यंग्य चित्र प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया है। पुराने मासिक एवं साप्ताहिक पत्रों के देखने से प्रतीत होता है कि साहित्यिक क्षेत्र में व्यंग्य चित्रकारों के शिकार अनाड़ी आलोचक, छायावादी कवि, प्रेमी तथा फैशनेबिल नवयुवक नवयुवतियाँ रहे हैं। "नवभारत टाइम्स" दैनिक एक छोटा-सा व्यंग्य चित्र प्रतिदिन मुख पृष्ठ पर प्रकाशित करता है और उसका विषय सामाजिक अथवा राजनैतिक रहता है।

हमारे देश में कटाक्ष-चित्रण-कला के विकास की बड़ी सम्भावनाएँ हैं। चित्रमय विनोदपूर्ण सामयिक पत्र तो देशी भाषाओं में नहीं के बराबर हैं। कार्टून कला से लोकमानस को विनोदप्रिय और प्रबुद्ध बनाया जा सकता है। सरकारी कलाशालाओं में जहां चित्र विद्या के अन्य अंकों की शिक्षा दी जाती है वहाँ कार्टून और कटाक्ष-चित्रण का व्याकरण भी सिखाना चाहिए, क्योंकि स्वाधीन भारत में देशी भाषा के पत्रों का विकास हो जाने पर कार्टूनकारों की बड़ी आवश्यकता है।

: १६ :

उपसंहार

मानव जीवन में हास्य का विशिष्ट स्थान है। जातीय सजीवता के साथ साथ यह सुधार का माध्यम भी है। मनुष्य और पशु में एक विशेष अन्तर यह है कि मनुष्य हँस सकता है, व्यंग्य समझ सकता है और हास्य पर मुस्करा सकता है। जो मनुष्य जितना अधिक "प्रकृत" होगा उसमें हास्य से आनन्द उठाने की उतनी ही मात्रा अधिक होगी। हमारा साहित्य प्रारम्भ से ही प्रकृतस्थ रहा है क्योंकि भारतेन्दु काल की कृतियों ही से हमें व्यंग्य-विनोद के छींटे मिलने लगते हैं।

शास्त्रीय-विवेचन

संस्कृत के आचार्यों ने शृङ्गार-रस को ही प्रधान माना है। संस्कृत साहित्य में हास्य-रस की कृतियाँ भी अपेक्षाकृत कम मिलती हैं। अँग्रेज़ी साहित्य में हास्य-रस का विवेचन अधिक मिलता है। "हम क्यों हँसते हैं ?" इस प्रश्न पर विदेशी विद्वानों ने विशद विवेचन किया है। यद्यपि असंगति हास्य का मूल सर्वमान्य रहा है। हमने प्रतिपादित किया है कि हास्य रस भी रसराज माना जा सकता है। वास्तव में हास्य रस आचार्यों की दृष्टि से अब तक उपेक्षित रहा है। भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक सभी आचार्यों ने हास्य रस के लक्षण तथा उदाहरण देकर इसको समाप्त कर दिया है। हास्य के प्रभेद विदेशी साहित्य में स्पष्ट मिलते हैं। उनका अलग अलग विवेचन भी मिलता है, किन्तु हमारे यहाँ जो वर्गीकरण किया गया है वह हसन-क्रिया का है, हास्य का नहीं।

अभाव के कारण

पराधीनता, शृङ्गार रस का प्राधान्य, अद्वैतवादी दार्शनिक दृष्टिकोण आदि ही हिन्दी में हास्य रस के अभाव के कारण रहे हैं किन्तु यह धारणा गलत मालूम पड़ती है कि हिन्दी साहित्य हास्य रस की दृष्टि से बहुत पीछे है।

अमीर खुसरो से आज तक पद्यात्मक साहित्य में हास्य रस प्रमुख मात्रा में मिलता है, हाँ गद्य में हास्य विदेशी साहित्य की अपेक्षाकृत कम है किन्तु भारतेन्दु काल से इस दिशा में भी समृद्धि हो रही है।

नाटक

भारतेन्दु काल में हास्य रस के प्रहसनों का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। उनके जमाने में प्रचुरमात्रा में प्रहसन लिखे गए। उनमें वार्तालाप प्रधान था। धार्मिक रूढ़ियाँ, विधवा विवाह, बाल विवाह, बहुविवाह, नशेबाजी के दुष्परिणाम, आदि सामाजिक विषय प्रधान रहे। एक एक समस्या पर कई लेखकों ने प्रहसन लिखे। कलात्मक दृष्टि से वे उच्च कोटि के नहीं थे। उस समय के कई प्रहसनकारों ने भारतीय एवं पाश्चात्य—दोनों प्रकार की नाट्य-शैलियों का मिश्रण किया तथा अपने प्रहसनों को इसी मिश्रित शैली में लिखा। द्विवेदी युग में प्रहसनों की गति मन्थर रही द्विवेदी युग के बाद प्रहसनों की पुनः बाढ़ आई। रेडियो पर प्रहसनों के प्रसारण ने भी प्रहसनों की सृजन को प्रोत्साहित किया। कलात्मक दृष्टि से आधुनिक युग के प्रहसनों में निखार आया। आलम्बन धार्मिक रूढ़ियों से बदल कर फिल्मी जीवन, घरेलू समस्याएँ तथा राजनैतिक नेता हो गए।

कहानी

भारतेन्दु काल में हास्य रस प्रधान कहानियों का प्रायः अभाव ही रहा। द्विवेदी युग में हास्य रस प्रधान कहानियों का श्री गणेश हुआ किन्तु शिल्प की दृष्टि से वे अपरिपक्व ही रही। वर्तमान युग में हास्य रस की कहानियों से हिन्दी साहित्य सन्तोषजनक रूप से पल्लवित हुआ। भाषा, कथावस्तु एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से हास्य रस प्रधान कहानियाँ अब प्रचुर मात्रा में मिलती हैं।

उपन्यास

हास्य रस प्रधान उपन्यासों का अभाव भारतेन्दु काल से ही रहा है। यद्यपि द्विवेदी काल के उपरान्त कुछ प्रयास इस ओर हुआ है किन्तु वह नगण्य है अंग्रेजी साहित्य के "वुड-हाउस", "डिकेन्स", "डीफो" की सी प्रतिभा अभी हिन्दी में नहीं हुई।

निबन्ध

भारतेन्दु काल से ही हास्य-रस के सुन्दर निबन्धों का सृजन प्रारम्भ हो गया था। द्विवेदी युग में भी इस ओर लेखकों का झुकाव रहा। आधुनिक युग में भी हास्य रस के सुन्दर निबन्ध मिलते हैं। हास्य रस की दृष्टि से हिन्दी का निबन्ध साहित्य पर्याप्त मात्रा में समृद्ध रहा है।

कविता

हास्य रस पूर्ण काव्य हिन्दी के प्रारम्भिक काल से ही मिलता है। भारतेन्दु काल के काव्य में हास्य रस प्रचुर रूप में मिलता है। "स्यापा" उस समय की हास्य रस कविता की विशिष्ट शैली थी। फैशनेबुल युवक युवतियाँ, टैक्स, अंग्रेज़ी राज्य के अधिकारी गण, कंजूस कविता के आलम्बन थे। उस समय का हास्य प्रकट हास्य था। उसमें स्नेह हास्य का अभाव था। व्यंग्य में कटुता विशेष थी। द्विवेदी युग के बाद हास्य रस की कविता कम लिखी गयी। वह समय ही गम्भीरता एवं भाषा परिष्कार का था। द्विवेदी युग के बाद हास्य रस की कविता की एक बाढ़ सी आई। भारतेन्दु काल तथा द्विवेदी युग में मुक्त छन्द ही हास्य रस के अधिक मिलते हैं। किन्तु पिछले ५० वर्षों में ऐसे कवि बहुत मिलते हैं जिन्होंने केवल हास्य रस में ही अपनी कविताएँ लिखीं तथा वे हास्य रस के कवि के रूप में ही प्रख्यात हैं।

हास्य के प्रभेदों में व्यंग्य ही कविता में अधिक मिलता है। यह बात जो भारतेन्दु काल के लिए लागू होती थी वह आज भी है। परिहास उससे कम मिलता है। विशुद्ध हास्य का अभाव हिन्दी कविता में प्रारम्भ से ही रहा है जो आज तक चला आ रहा है। वैसे हास्य रस की कविता में प्रौढ़ता एवं परिष्कार दृष्टिगोचर अवश्य होता है किन्तु बौद्धिक हास्य की कमी खटकती है यही कारण है कि आधुनिक गौरव प्राप्त मासिक पत्र तथा पत्रिकाओं में हास्य रस की कविताओं के दर्शन दुर्लभ हैं। हाँ, होलिकांकों में अवश्य प्रतिवर्ष हास्य रस पूर्ण कवितायें देखने को मिल जाती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि अभी पाठकों में हास्य रस की कविता में आनन्द लेने की रुचि उचित मात्रा में जाग्रित नहीं हो सकी है। लोग हलके से व्यंग्य के छींटे से तिलमिला जाते हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

हास्य रस प्रधान पत्र-पत्रिकाएँ भारतेन्दु काल में नहीं थीं। हास्य रस की कृतियाँ अवश्य हर पत्र में निकलती थीं। द्विवेदी युग में इनका प्रारम्भ

हुआ । आजकल लगभग पाँच छः हास्य रस प्रधान पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं किन्तु उच्च कोटि की एक भी नहीं कही जा सकती । व्यंग्य चित्र के बिना हास्य रस का पत्र कुछ मूल्य नहीं रखता । वर्तमान पत्र पत्रिकाओं में व्यंग्य-चित्रों का अभाव है, यदि निकलते भी हैं तो दूसरे पत्रों से उद्धृत करके या किसी नवसिखिए व्यंग्य चित्रकार के प्रयोगावस्था में बनाए हुये । इंग्लैड के "पंच" तथा भारत के "शंकर वीकली" (अंग्रेज़ी) जैसे हास्य एवं व्यंग्य चित्र पत्र की अत्यन्त आवश्यकता है ।

अनुवाद

विदेशी साहित्य एवं प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य के हास्य रस के ग्रन्थों के बहुत कम अनुवाद हिन्दी में मिलते हैं । कम से कम प्रसिद्ध अंग्रेजी के हास्य रस की कृतियों का अनुवाद तो हिन्दी में शीघ्र हो जाना चाहिए जिससे नए लेखकों को इस बात का ज्ञान हो जाय कि हास्य का स्तर कैसा होना चाहिए ।

रेडियो-रूपक साहित्य

आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से हास्य रस पूर्ण नाटक प्रसारित होते रहते हैं । हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककारों के अतिरिक्त रेडियो-टेकनीक से प्रहसन लिखने वालों का एक नया लेखक-मण्डल तैयार हो गया है । इन नाटकों में ध्वनि की सहायता से प्रभाव उत्पन्न किया जाता है ।

कार्टून-साहित्य

हास्य रस का "व्यंग्य-चित्र" एक प्रमुख रूप है । आज के युग में इनका महत्व बहुत अधिक है । राजनैतिक एवं सामाजिक विषयों को लेकर अनेकों कार्टून समाचार पत्रों में प्रतिदिन निकलते हैं । "व्यंग्य-पट्टियाँ" आधुनिक युग की विशेषता है ।

आज का हास्य-साहित्य हँसने हँसाने के मजमे की सीमा को लाँघ चुका है । आज के हास्य में सामाजिक चेतना मुखरित हो चुकी है । "स्थूल" हास्य का स्थान "बौद्धिक हास्य" ने ले लिया है । साहित्य के अन्य अंगों की समृद्धि के साथ साथ हास्य-रस के अभाव को पूरा करने की ओर भी विद्वानों का तथा लेखकों का ध्यान गया है और अब यह आशा होने लगी है कि शीघ्र ही हिन्दी साहित्य का हास्य साहित्य पूर्ण समृद्ध हो सकेगा ।

परिशिष्ट—१

उर्दू में हास्य की परम्पराएँ

काव्य में

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में "भड़ौए" लिखे गये थे। "भड़ौओ" में उपहास-पूर्ण निन्दा रहती थी। कवि-गण जब अपने आश्रयदाताओं से बिगड़ते थे, तो उन पर "भड़ौए" लिखते थे। उधर उत्तर-रीतिकाल में उर्दू-साहित्य में "हजोएँ" लिखी गई थीं। 'हजो' उर्दू में उपहास-पूर्ण निन्दा काव्य को कहते हैं। हिन्दी और उर्दू में इस प्रकार से साम्य मिलता है। बेनी कवि को किसी ने मरियल घोड़ा दे दिया, वे उस पर लिखते हैं—

"घोड़ा गिर्‌यो घर बाहर ही,
महाराज कछू उठवावन पाऊँ।
ऐड़ो परे बिच पैंड़ोई माँझ,
चलै पग एक ना कैसे चलाऊँ।
होय कहारन कौ जु पै आयसु,
डोली चढ़ाय यहाँ तक लाऊँ।
जीन धरौं कि धरौं तुलसी,
मुख देउँ लगाम कि राम कहाऊँ।"

"सौदा" उर्दू साहित्य में 'हजो' लिखने में माहिर थे। उन्होंने भी एक मरियल घोड़े पर 'हजो' लिखी है—

"ना ताक़ती का उसके कहाँ तक करूँ बयाँ,
फ़ाकों का उसके अब मैं कहाँ तक करूँ शुमार।
मानिन्द नक़शे नाल जमी से बजुज़ फ़ना,
हरगिज न उठ सके वह अगर बैठे एक बार।
है इस क़दर ज़ईफ़ कि उड़ जावे बाद से,
मेखें गर उसकी थान की होवें न उसत्वार।

है पीर इस क़बर कि जो बतलावे उसका सिन,
पहले वह ले के रेगे बयाबाँ करे शुमार।
लेकिन मुझे ज़रूए तवारीख याद है,
शयताँ इसी पे निकला था जन्नत से हो सवार।"

एक दूसरा ढंग और था। आपस में भी कवियों द्वारा एक दूसरे पर छींटाकशी की जाती थी। बेनी कवि ने लखनऊ के ललकदाम महंत पर एक कवित्त लिखा—

"घर-घर घाट-घाट बाट-बाट ठाट ठटे,
बेला औ कुबेला फिरैं चेला लिए आस-पास।
कविन सों बाद करैं, भेद बिन नाद करैं,
महा उन्माद करैं धरम करम नास।
बेनी कवि कहै विभिचारिन को बादसाह,
अतन प्रकासत न सतत सरम तास।
ललना ललक, नैन मैन की झलक,
हँसि हेरत अलक रद खलक खलकदास।।"

सौदा के मित्र मीर ज़ाहिक पेटू थे। अपने किसी मित्र के यहाँ दावत खाने गये। लोग बातचीत ही कर रहे थे कि मीर ज़ाहिक भण्डारे में जा पहुँचे—

"जाके मतबख़ पे यह पड़ा इस तरह,
मैं बयाँ उसका अब करूँ किस तरह।
लाठियाँ ले ले हाथ पीरो जवाँ,
करते ही रह गये, सभी हाँ! हाँ!
गोश्त, चावल, मसाल, तरकारी,
सब समेट उसने एक ही बारी।
रख के कल्ले में कर गया सब चट,
मुतलक उसने न मानी डाँट-डपट।
जिन हैं या आदमी है या क्या है,
या कोई देव बौखलाया है।
नहीं डरता वह लाठी पाठी से,
क्या करे लाठी इसकी काठी से।"

उस समय हास्य की प्रवृत्ति व्यक्तिनिष्ठ थी। निन्दा एवं घृणा की मात्रा मुखर हो उठी थी। शब्द-जन्य हास्य ही अधिक लिखा जाता था। 'सौदा'

का कार्यकाल सन् १७१३ ई० से १७८१ ई० तक रहा। सन् १७५० से १८५० ई० तक ही भड़ौवे अधिक संख्या में लिखे गये। १८७० ई० से भारतेन्दुकाल में हास्य-काव्य की प्रवृत्तियों ने मोड़ लिया।

सन् १८१७ ई० के लगभग आते हैं इंशा अल्ला खाँ। ये मस्त तबियत के शायर थे। इन्होंने हास्य और सेक्स का समन्वय करके कवितायें लिखीं—

"ख़याल कीजिए क्या आज काम मैंने किया,
जब उसने दी मुझे गाली सलाम मैंने किया।"

उर्दू में व्यंग्य को 'तन्ज़' कहते हैं। इंशा साहब ने किसी महन्त को आलम्बन बना कर ये शेर लिखा—

"यह जो महन्त बैठे हैं राधा के कुँड पर,
अवतार बन के गिरते हैं, परियों के झुँड पर।"

मच्छर हास्य-रस के कवियों के प्रिय आलम्बन रहे हैं। हिन्दी साहित्य में भी मच्छरों पर हास्य-रस की कविताएँ बहुत मिलती हैं। इंशा साहब को भी मच्छरों ने परेशान किया और उन्होंने लिखा—

"मच्छरों को हुआ है अबके ये औज।
दब गई जिनसे मरहठों की फौज॥
सूखे सहमें हैं काले काले हैं।
यह भी पर कोई घोड़े वाले हैं॥

× × ×

हुए मच्छर बहुत से जो साथी।
जितने भैंसे थे हो गए हाथी॥
आगे क्या लिक्खे कोई इनका भेद।
पड़ गए कागजों में लाखों छेद॥
किस ने रक्खा है मच्छर इनका नाम।
इनको कहिए तो कहिए लश्करे शाम॥
यों हुई शाम, यों ये आ लागे,
आदमी इनसे अब कहाँ भागे?"

इंशा के हास्य में विनोद की मात्रा अधिक है। भाषा सरल एवं बोधगम्य है। उर्दू में एक स्कूल तो उन हास्य-रस के कवियों का है जिन्होंने स्वतंत्र रूप से हास्य-रस की कविताएँ लिखीं। दूसरा स्कूल उनका है जिन्होंने 'ग़ज़ल'

लिखते-लिखते भूले भटके कोई 'हज़ल' भी लिख दी। नज़ीर अकबराबादी दूसरे स्कूल के शायर थे। इनका आलम्बन इनका माशूक था। इनके कुछ शेर देखिए—

"कल शबे वस्ल में क्या खूब कटी थीं घड़ियाँ,
आज क्या मर गए घड़ियाल बजाने वाले।
हमारे मरने को हाँ तुम तो झूठ समझते थे,
कहा रकीब ने लो अब तो एतबार हुआ।

× × ×

सुबह जब बोल उठा मुर्ग—सहर कुकड़ूँ-कूँ,
उठ गए पास से वह रह गया मैं टुटरूँ टूँ।

× × ×

आदम एक दमड़ी की हुकिया को रहे आजिज़ सदा,
हमको क्या-क्या पेचवाँ और गुड़गुड़ी पर नाज़ है।
ग़ौर से देखा तो अब यह वह मसल है बे नज़ीर,
बाप ने पिदड़ी न मारी बेटा तीरंदाज है।"

नज़ीर साहब ने विनोदात्मक काव्य ही अधिक लिखा। इनके आलम्बन सामान्य व्यक्ति होते हैं।

महाकवि 'ग़ालिब' के काव्य में भी यत्र तत्र हास्य-रस के छीटें मिलते हैं। वैसे उनका काव्य दार्शिनकता से ओत-प्रोत है। ग़ालिब लिखते हैं—

"इश्क ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी थे काम के।

× × ×

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन,
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख़्याल अच्छा है।

× × ×

कर्ज की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ,
रंग लाएगी हमारी फ़ाकामस्ती एक दिन।

× × ×

पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है,
कोई बतलाओ कि हम बतलायँ क्या ?"

'ग़ालिब' का हास्य परिष्कृत एवं उच्चकोटि का है। वह गुदगुदाता भर है, चिकोटी नहीं काटता। ग़ालिब के बाद 'दाग़' आते हैं जिन्होंने हास्य रस पूर्ण शेर लिखे। इन्होंने भी प्रेम को लेकर हास्य-रस की सृष्टि की। 'सेक्स' इनके भी हास्य में प्रधान है। दाग़ फ़रमाते हैं—

"यह तौर दिल चुराके, हुआ उस निगाह का।
जैसे क़सम के वक्त हो झूठे गवाह का॥

× × ×

जिसमें लाखों बरस की हूरें हों।
ऐसी जन्नत का क्या करे कोई॥

× × ×

आके बाजार मुहब्बत में जरा सैर करो।
लोग क्या करते हैं, क्या लेते हैं, क्या देते हैं॥

× × ×

आ गया कुछ याद, दिल भर आया आंसू गिर पड़े।
हम न ऐसे थे तुम्हारे मुस्कराने के लिए॥

× × ×

रहता है इबादत में हमें मौत का खटका।
हम याद खुदा करते हैं कर ले न खुदा याद॥"

'दाग़' के हास्य में व्यंग्य की मात्रा अधिक है। व्यंग्य मृदुल है तीखा नहीं। इनके हास्य में मौलिकता है। आसी ग़ाजीपुरी ने भी कुछ हास्य रस के शेर लिखे हैं—

"हाय क्या बोझ बुढ़ापे में भरा था अल्लाह,
सर तो सीने में घुसा पीठ कमर तक ख़म है।

× × ×

दर्दे दिल इतना पसन्द आया उसे,
मैंने जब की आह उसने वाह की।

× × ×

बुरा क्यों मानें हम जो भेस चाहो शौक से बदलो,
हमारी ही नुमायश है तुम्हारी खुदनुमाई में।"

आसी में चमत्कार है, स्वाभाविक हास्य-सृजन की क्षमता कम दृष्टि-गोचर होती है।

अकबर "इलाहाबादी" को हम उर्दू-साहित्य का हास्य रस सम्राट् कह सकते हैं। इनमें विलक्षण प्रतिभा थी। इन्होंने सामयिक विषयों पर मर्म-स्पर्शी शेर लिखे। फ़ैशन-परस्ती, स्त्री-शिक्षा, बेकारी, धर्मान्धता, राजनैतिक विद्रूपताएँ आदि इनके आलम्बन थे। इनके शेर निशाने पर चोट करते थे। अपने समय के ये अत्यन्त लोकप्रिय शायर थे। अकबर इलाहाबादी के कुछ चुने हुए शेर मुलाहिज़ा फ़रमाइये—

"मेंबरी से आप पर तो वार्निश हो जायगी,
कौम की हालत में कुछ इससे जिला हो या न हो।

× × ×

कौम के ग़म में 'डिनर' खाते हैं हुक्कामों के साथ,
रंज 'लीडर' को बहुत है मगर आराम के साथ।

× × ×

महबूबा भी रुख़सत हुईं साक़ी भी सिधारा,
दौलत न रही पास, तो अब 'ही' है न 'शी' है।

× × ×

हुए इस क़दर मुहज़्ज़ब कभी घर का मुँह न देखा,
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर।

× × ×

बूट डासन ने बनाया, मैंने एक मजमूं लिखा,
मुल्क में मजमूं न फैला, और जूता चल गया।

× × ×

जान शायद फरिश्ते छोड़ भी दें,
डाक्टर फ़ीस को न छोड़ेंगे।

× × ×

शेख जी के दोनों बेटे बाहुनर पैदा हुए,
एक है खुफ़िया पुलिस और एक फाँसी पा गए।"

अकबर इलाहाबादी की भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों के सहज प्रयोग से विनोद उत्पन्न हो जाता है। इनका हास्य एवं व्यंग्य सोद्देश्य था। उसमें सुधार की भावना थी। तत्कालीन परिस्थितियों में इनके काव्य ने समाज सुधार का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया।

जरीफ लखनवी ने भी सामयिक विषयों पर मधुर छींटे कसे हैं। आज कल चुनावों का बड़ा महत्व है। 'शामते इलेक्शन' शीर्षक उनकी प्रसिद्ध कविता में एक 'वोटर' का ख़ाका खींचा गया है—

"उस जगह से उठ कर घर पर एक साहब के गए,
दस बरस नाकाम रहने पर हुए थे जो बी.ए.।
रेलवे में थे मुलाज़िम, ख़ुद भी थे चलते हुए,
आपकी तनख़्वाह तो कम, ठाठ थे लेकिन बड़े।
इंग्लिश स्टाईल पै रहने का जो इनको शौक था,
बूट बेड़ी पाँव की कालर गले का तौक था।
फूस के छप्पर में रहते थे, यह इस सामान से,
और फरनीचर तो खारिज इनके था इमकान से।
टूटी फूटी कुरसियाँ लेकर किसी दूकान से,
बैठते थे इनपै छप्पर में निहायत शान से।
नाम इक तख़्ती पै लिख रक्खा था यूं बहरे विकार,
मिस्टर अब्राहम बी.ए. टी० टी० सी० ई० आई० आर०।"

रियाज खैराबादी की गजलों में भी हास्य रस का समावेश हुआ है। शराब पीने से सम्बन्धित उनकी एक हास्यपूर्ण उक्ति देखिए—

"नीची दाढ़ी ने आबरू रख ली,
कर्ज पी आए इक दुकान से आज।
बड़े नेकतीनत, बड़े साफ़ बातन,
रियाज आपको कुछ हमीं जानते हैं।"

वर्तमान युग में कवि 'जोश' मलीहाबादी का उर्दू-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। राजनैतिक व्यंग्य लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। आपने कबीरदास के समान धर्मध्वजियों एवं पाखंडियों की भी खूब खबर ली है। पाश्चात्य शिक्षा का कुप्रभाव जो नवयुवकों पर पड़ा, उस पर एक तीक्ष्ण व्यंग्य देखिए—

"छीन ली तुमने नेसाईअत से हर शीरीं अदा,
मरहबा ! ऐ नाजुकन दामाने कालेज मरहबा।
ख़ालो खद से जज़्बा हाए सिन्फ़े नाजुक आशीकार,
कर्जनी चेहरों में ज़न बनाने के अरमाँ बेक़रार।
नाजुकी का मुक़तज़ा पतली छड़ी बांधे हुए,
शौक कंगन का कलाई पर घड़ी बाँधे हुए।

देर से तोपों के मुँह खोले हुए हैं रोज़गार,
सीनए गेती में है जिसकी धमक से खल्फेशार।
दागले ज़ीनत से तुम्हें फुरसत मगर मिलती नहीं,
क्या तुम्हारे पाँव के नीचे ज़मीं हिलती नहीं।"

आधुनिक हास्य-लेखकों में श्री अता हुसैन भी अग्रगण्य हैं। सामयिक विषयों पर उनकी कतिपय उक्तियाँ पठनीय हैं—

"ग्रेजुएट के मुकद्दर में नौकरी न हुई,
निकाह जैसे हुआ और रुख़सती न हुई।
महीने सब थे बराबर बराबरी न हुई,
कभी जमाने में इकतीस की फरवरी न हुई।
नहीं जवाल है उल्फत के कारनामे को,
वह जूये शेखी जो आज तक बरी न हुई।
सफेद जुल्म दवासे सियाह हो न सकी,
जो घास सूख गयी फिर कभी हरी न हुई।"

"विस्मिल इलाहाबादी" ने भी हास्य रसपूर्ण कुछ शेर लिखे जो काफ़ी पसन्द किये गये। कुछ देखिए—

"कुछ लिख नहीं सकते हैं, बेकार निकलते हैं।
किस वास्ते फिर इतने अख़बार निकलते हैं॥

× × ×

आज कल बदला हुआ मज़मून है।
हर क़दम पर एक नया क़ानून है॥

× × ×

बात यह मुझको पसंद आई जनाबे पोप की।
इस ज़माने में हुकूमत रह गई है तोप की॥"

इनके अतिरिक्त हास्य रस की शेर लिखने वालों में श्री "शौक" बहराइची माचिस साहब, 'जलाल' मशहूर हैं। श्री नर्मदेश्वर जी भी "अहमक जौनपुरी" के नाम से उर्दू की मजाहिया कविता करते हैं।

गद्य में

महाकवि ग़ालिब के कुछ पत्रों में व्यंग्य एवं विनोद मिलता है। उर्दू साहित्य में गद्यात्मक हास्य का विकास समाचार पत्रों द्वारा हुआ। देश गुलाम

था। लोग अपने असन्तोष की अभिव्यक्ति हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से ही कर सकते थे। 'जी हुजूरों' का बोलबाला था।

लखनऊ से 'अवध पंच' निकला। ये हास्य रसपूर्ण साप्ताहिक था। सम्पादक थे श्री सज्जाद हुसेन साहब। 'अवध पंच' के लेखकों में श्री रतननाथ सरशार बहुत प्रसिद्ध हुए। इस पत्र में सामयिक विषयों पर व्यंग्यपूर्ण लेख प्रकाशित होते थे। रतननाथ सरशार का "फ़िसानए आज़ाद" काफ़ी प्रसिद्ध हुआ। उसका एक नमूना देखिए—

"चोबदार—(हाथ जोड़कर) जां-बख़्शी हो, तो अर्ज़ करूँ। बटेर सब उड़ गये।

नवाब—(हाथ मलते हुए) सब !! अरे सब उड़ गये ! हाय मेरे वीर योधा को जो ढूंढ़ लाये हज़ार नक़द गिनवा ले। इस वक़्त में जीते जी मर मिटा, उफ़, भई अभी साँडनी सवारों को हुक्म दो कि पंचकोसी दौरा करे। जहाँ वह बाँका वीर मिले समझा बुझाकर ले ही आयें।"

उर्दू के वर्तमान हास्य-लेखकों में फ़रहत उल्ला बेग, सुलतान हैदर जोश, पितरस, मुल्ला रमूजी, शौकत थानवी, रशीद अहमद सिद्दकी, कन्हैयालाल कपूर तथा स्वर्गीय मिर्जा अजीमबेग चगताई हैं। इन लेखकों ने उपन्यास, कहानी, लघु निबन्ध आदि साहित्य के अनेक रूपों के माध्यम में राजनैतिक, सामाजिक एवं पारवारिक विद्रूपताओं पर व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। मुल्ला रमूजी गुलाबी हास्य लिखने में सिद्धहस्त हैं।

फ़रहतउल्ला बेग के "ऊँह" शीर्षक लघु निबन्ध का एक अंश देखिए—

"घरवाली की ऊँह ! सबसे ज्यादा भयानक ऊँह होती है। किसी दासी पर रुष्ट हो रही हैं। वह बराबर जवाब दिये जा रही है। यह 'ऊँह' ! करके चुप हो जाती है। लीजिये नौकर शेर हो गया। घर का सारा प्रबन्ध अस्त-व्यस्त, इनके अधिकार छिन गये......अब क्या है पिटारी में से कत्था, छालियाँ ग़ायब, कैश बक्स से रुपये गायब, सन्दूकों से कपड़े गायब। बच्चों ने कोयलों से दीवारों पर लकीरें खींचीं, दरवाजों पर पेन्सिल से कीड़े-मकोड़े बनाये, पहले तो श्रीमती जी कुछ थोड़ा बहुत बिगड़ीं। फिर 'ऊँह' करके चुप हो गईं। अब जाकर देखो तो थोड़े दिनों में सारा मकान भाँति-भाँति की चित्रकारी से अजन्ता की गुफाओं को मात कर रहा है।"

प्रो० रशीद अहमद सिद्दकी के हास्य में मधुरता अधिक मिलेगी। उनकी अपनी शैली है जो प्रसाद गुण युक्त है। "जीने का सलीका" शीर्षक लेख का प्रारम्भ देखिए—

"एक साहब पिटते भी जा रहे थे और हँसते भी जा रहे थे। जिस क़द्र बेतहाशा पिटते थे उसी क़द्र बेतहाशा हँसते थे। दरियाफ़्त करने पर मौसूफ ने बड़ी मुश्किल से बताया कि पीटने वाला गलत आदमी को पीट रहा था। इसलिए वह उसकी हिमाकत से लुत्फन्दोज हो रहे थे। तो हजरत यह तो रहा पिटने का तरीका ......।"

मिर्जा अजीमबेग चग़ताई ने पारिवारिक समस्याओं को विषयवस्तु बना कर मज़ेदार कहानियाँ तथा लेख लिखे हैं। ये परिस्थियों के निर्माण में अत्यन्त कुशल हैं।। भाषा चुस्त व सीधी सादी है। दुर्भाग्य है कि वे इस दुनियाँ से बहुत जल्दी कूच कर गये। चग़ताई साहब की 'पट्टी' शीर्षक कहानी का एक अंश देखिए—

"पट्टी एक तो होती है जो चारपायी में लगाई जाती है दूसरी वो जो सिपाहियों के पैरों पर बाँधी जाती है फिर और भी बहुत किस्म की पट्टियाँ हैं; लेकिन मेरा मतलब यहाँ उस पट्टी से है जो फोड़ा, फुन्शी और चोट चपेट के सिलसिले में डाक्टरों के यहाँ बाँधी जाती है।

× × ×

घरेलू बीबी हिन्दुस्तानी बीबी है जिसको फ़रीक़ैन के वालदैन व्याहते हैं, फ़रीक़ैन निबाहते हैं और मुल्क और मिल्लत सराहते हैं। दूसरी तरफ़ तालीमयाफ़्ता रौशन खयाल बीबी है जिसको फ़रीक़ैन के अहबाब व्याहते हैं, अहबाब ही निबाहते हैं और सोसायटी सराहती है।"

चग़ताई का हास्य परिस्थिति-जन्य अधिक होता है। हिन्दी में इनकी कृतियों के अनुवाद बहुत प्रचलित हैं। यह इनकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

पितरस विनोदपूर्ण लेख लिखने में प्रवीण हैं। पहले ये आकाशवाणी के डायरेक्टर जनरल थे। पाकिस्तान बनने पर आप वहाँ के डायरेक्टर जनरल होकर चले गये। 'कुत्ते' शीर्षक उनके एक हास्यमय लेख का ये अंश देखिए—

"कल ही की बात है कि रात के कोई ग्यारह बजे एक कुत्ते की तबियत जो जरा गुदगुदाई तो उन्होंने बाहर सड़क पर आकर तरह का एक मिसरा दे दिया। एक आध मिनट के बाद सामने के बँगले में से एक कुत्ते ने "मतला

अर्ज़ कर दिया। अब जनाब एक पुराने कवि सम्राट को जो गुस्सा आया एक हलवाई के चूल्हे में से बाहर लपके और भिन्ना के पूरी ग़ज़ल मक़ता तक कह गये। इस पर उत्तर पूरब की ओर से एक काव्य मर्मज्ञ कुत्ते ने ज़ोरों की दाद दी। अब तो हज़रत वह मुशायरा गर्म हुआ कि कुछ न पूछिये, कम्बख़्त बाज़ तो दो ग़ज़ले सेह गज़ले लिख लाये थे, बहुतोंने तो आशु कविता कही और क़सीदे पे क़सीदे कह गये। वह शोर मचा कि ठंडा होने में न आता था। हमने खिड़की में से हज़ारों दफ़ा "आर्डर-आर्डर" पुकारा लेकिन ऐसे मौकों पर सभापति की भी कोई नहीं सुनता अब इनसे कोई पूछे कि 'मियाँ' तुम्हें ऐसा ही ज़रूरी मुशायरा करना था तो दरिया के किनारे खुली हवा में जाकर "काव्य की सेवा" करते। यह घरों के बीच में आकर सोतों को सताना कौन सी शराफ़त है ?"

शौकत थानवी ने हास्य कम, व्यंग्य अधिक लिखा है। इनमें शब्द-जन्य हास्य की अधिकता है। इनका व्यंग्य मृदुल होता है। इनके कई उपन्यास एवं कहानी-संग्रह हिन्दी में भी अनुवादित हो चुके हैं। उनकी "स्वदेशी" शीर्षक कहानी का एक अंश देखिए—

"इस वक्त तमाम मोहज्जब अकवाम का यह हाल है कि वह अपने को मोहज्जब साबित करने के लिए कुत्ता जरूर हमराह रखती हैं। कोई जैण्टिल-मैन बगैर कुत्ते के कभी मुकम्मिल जैण्टिलमैन नहीं हो सकता। कोई लेडी बगैर कुत्ता बगल में दबाए कभी लेडी नहीं हो सकती। कोई मोटर बगैर कुत्ते के मोटर नहीं होता और कोई मकान बगैर कुत्ते के दौलतखाना नहीं होता।"

आधुनिक लेखकों में कन्हैया लाल कपूर अग्रगण्य है। इनके हास्य में गुदगुदाने का प्रभाव है। जहाँ उपहास किया है वह भी कटु नहीं है, आलम्बन के प्रति स्नेह के भावों में आप्लवित है। ये जीवित है किन्तु "अपनी याद में" शीर्षक लेख में लिखते हैं—

"उर्दू के इस मशहूर तनज़ निगार की मौत दिल के सदमे से हुई... प्रोफ़ेसर कन्हैयालाल कपूर बड़ी दिलचस्प शख़्सियत के मालिक थे। उन्हें देख कर एक बयक अब्राहीम लिंकन, कायदे आज़म मुहम्मद अली जिन्हा और आर० एल० स्टीविन्सेन का ख़्याल आ जाता था। वह हद से ज्यादा लम्बे और दुबले थे। जब बैठे होते तो मालूम होता कि खड़े हैं और जब खड़े होते तो ऐसा लगता कि खड़े नहीं बल्कि गिर पड़ने की तैयारी कर रहे हैं।......किशनचन्द

के क़ौल के मुताबिक उन्होंने कभी किसी से मुहब्बत नहीं की। दुनियाँ में किसी ने उनको मुहब्बत करने के क़ाबिल ही नहीं समझा। इस लेहाज से वह सिर्फ नाम ही को कन्हैया थे। हैरत इस बात पर नहीं कि उन्हें उम्र भर कोई राधा नहीं मिली बल्कि इस पर है कि उन्हें कभी कोई सुदामा भी नहीं मिला।"

वास्तव में उर्दू में भी हमें हास्य की स्वस्थ परम्परा मिलती है। गद्य तथा पद्य दोनों में प्रचुर मात्रा में हास्य रस की सामग्री उपलब्ध है।

परिशिष्ट—२

हास्य-साहित्य के विगत सात वर्ष

(१९५०—१९५७)

हिन्दी साहित्य में हास्य रस उपेक्षित रहा है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आधुनिक हिन्दी के आलोचकों ने सर्वसम्मति से इस कथन को दोहराया है कि हिन्दी में हास्य रस का अभाव है। मेरा यह मत है कि यह भावना साहित्यिक विद्वानों के मन में इतनी गहरी पैठ गई है कि वे इस ओर से प्रायः उदासीन हो बैठे हैं। यह धारणा यथार्थ से परे है। हास्य रस के साहित्य का सृजन भी द्रुतगति से हो रहा है। हास्य रसपूर्ण काव्य, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध बराबर लिखे जा रहे हैं। इन कृतियों का स्तर क्या है? यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। आज स्थिति यह है कि हास्य रस की कृतियों का लेखा-जोखा करना आधुनिक "आचार्य" अपनी शान के खिलाफ़ समझते हैं। क्या वास्तव में हास्य रस इतना उपेक्षणीय है? क्या इसी उपेक्षा के बल पर हम यह आशा कर सकते है कि भविष्य में हम अपने साहित्य के इस निर्बल अंग को शक्तिशाली बना सकेंगे? यदि उच्चकोटि का हास्य रस लेखक प्रशंसित न होगा तथा निम्नकोटि के "कवि सम्मेलन ब्रांड" लेखक अपनी निम्नस्तरीय रचनाओं से हास्य रस को बदनाम करने के लिए निरंकुश छोड़ दिये जायेंगे तो स्थिति गंभीर हो जायगी।

गत वर्षों में हास्य-साहित्य का सृजन सन्तोषजनक रहा है। काव्य, नाटक, कहानी, निबन्ध, आलोचना, प्रत्येक क्षेत्र में नवीन कृतियों का प्रकाशन हुआ है।

काव्य

बेढब बनारसी का नया संकलन 'बिजली' नाम से प्रकाशित हुआ है। बेढब जी का हास्य सेक्स संक्रांत है किन्तु इस संकलन की कविताओं में अश्लीलता कहीं नही आने पाई है। शिष्ट एवं परिष्कृत हास्य का ही सृजन हुआ है।

"जज़बाते ऊँट" के रचयिता हैं, 'ऊँट बिरहलवी'। इसमें संकलित हास्य-कविताएँ सामयिक विषयों पर लिखी गई हैं। इस संग्रह में रचयिता की उर्दू तथा हिन्दी दोनों भाषाओं की कविताएँ संग्रहीत है। कविताओं के नीचे पाद-टिप्पणियाँ दी गई हैं जो कविताओं में आये हुए प्रयोगों को स्पष्ट करती हैं। कविताएँ चमत्कार-प्रधान हैं। प्रौढ़ शिक्षा-आन्दोलन पर एक मृदुल व्यंग्य देखिए—

"समुझायो है सेर छटांक तुम्हें,
मन तो तुमहू समझाबो करौ।
दिखराई तुम्हें दुनिया सिगरी,
तुम आनन तो दिखराबो करौ।
तुम्हें पाठ पढ़ाए अनेक भटू,
तुम प्रेम को पाठ पढ़ाबो करौ।
कबहूँ तो सिलेट-किताबें लिये,
तुम 'ऊँट' की गैलिन आबो करौ।"

सम्भवतः कवि अध्यापक प्रतीत होते है जिन्हें प्रौढ़ शिक्षा में जोत दिया गया हो। वे अपनी शिष्या को गणित, भूगोल तथा हिन्दी-रीडर पढ़ाकर उसे अपने यहाँ पधारने का निमन्त्रण दे रहे हैं। हृषिकेश चतुर्वेदी कृत "छेड़-छाड़" उनकी विनोदपूर्ण कविताओं का संग्रह हास्य-काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हृषीकेश जी स्थायी हास्य साहित्य की रचना करते हैं। 'बारात या डाका' शीर्षक उनका एक कवित्त देखिए—

"शस्त्र-साज-बाज से सुसज्जित स-दल-बल,
आकर उन्होंने चट, घेर लिया नाका है।
माँग है सहस्त्रों की, न चिन्ता से है काम उन्हें,
द्रव्य आपका है, किसका है, या, कहाँ का है।
भूषण, बसन, पात्र, अन्न, पशु, वाहनादि,
हाथ लगा जो भी, सब उनके पिता का है।
ख़ातिर जमाई जैसी सभी चाहते हैं, भला,
आप ही बताइये, बरात है कि डाका है?"

भीष्मसिंह चौहान कृत "गुटरगूँ" तथा चन्द्रमोहन 'हिमकर' कृत "विडम्बना" दोनों ही हास्य-काव्य-संग्रह हैं। दोनों लेखकों में हास्य रस की कविता लिखने की प्रतिभा है किन्तु अभी भाषा तथा भाव-व्यंजना, दोनों में ही साधना अपेक्षित है।

विन्ध्य प्रदेश के हास्य कवि चतुरेश की कविताओं का संकलन "चटनी" शीर्षक प्रकाशित हुआ है। कुटिलेश की "गड़बड़ रामायण" में तुलसीकृत रामायण की हास्यानुकृतियाँ हैं। पैरोडी निम्नस्तरीय है। "खिचड़ी" निर्भय कवि की हास्य-कविताओं का संग्रह है। कहीं-कहीं इनकी कविताओं में अश्लीलता एवं कटुता आ गई है जो रसाभास कर देती है। इनके हास्य रसपूर्ण लोकगीत पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। एक लोक गीत देखिए—

"टेढ़ी टुपिया लगावें, कुरता खादी को सिमावें,
सखि! मौज उड़ावें, हो हमारे बालमा,
हो हमारे साजना।
जब ते भयौ स्वराज्य सखि, बालम के हैं ठाटि,
कुरता के उपर लई, नेहरू जाकट डाट,
अबतो नेता जी कहावें, खूब बोलत सभा में,
अपनो काम बनावें।
हो हमारे बालमा, हो हमारे साजना।"

श्रीमती कमला चौधरी की हास्य रस की कविताओं का संग्रह "आपन मरन जगत कै हाँसी" शीर्षक प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में उनकी अवधी, हिन्दी एवं उर्दू की हास्य कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं में राजनैतिक एवं सामाजिक व्यंग का मधुर समावेश हुआ है। "बहुपत्नी प्रथा" शीर्षक इनका एक राजनैतिक व्यंग देखिए—

"है प्रजातन्त्र का प्रथम नियम पार्टियाँ बहुत सी होती हैं,
जैसे राजों महराजों के रानियाँ बहुत सी होती हैं।
राजघराने में आते ही, सब पटरानी कहलाती है,
इसी भाँति से राजनीति में पार्टी भी मानी जाती हैं।
पर एक बात में एक सभी इस फन में सब लासानी हैं,
प्रेम जोग है लिया सभी ने सब जनता पर दीवानी हैं।
पर किसी एक की पाँचों घी में, शेष भाग को रोती हैं,
है प्रजातन्त्र का प्रथम नियम पार्टियाँ बहुत सी होती हैं।"

प्रभुलाल गर्ग 'काका' का संग्रह 'पिल्ला' नाम से निकला है। इसमें अन्य कवियों की कविताएँ भी संग्रहीत हैं। 'काका' ने अधिकतर सिनेमा के गानों की पैरोडियाँ लिखी हैं। इनकी हास्य-कविताओं में सुरुचि का अभाव है।

जो हो, श्री विश्वनाथ शर्मा एक अच्छे व्यंग्य लेखक थे। उन्होंने परिमाण में अधिक लिखा किन्तु जहाँ परिमाण में अधिक लिखा जाता है उसमें स्तर का कुछ गिर जाना स्वाभाविक ही है। ऐसा प्रतीत है कि इन्हें सम्पादक होने के नाते कुछ न कुछ नित्य लिखना पड़ता था। इनके व्यंग्य में अपेक्षित चोट का अभाव है। तुकबन्दी ही अधिक है। शब्द-जन्य हास्य है जो कि बहुत उच्च कोटि का नही है। उसमें साहित्यिकता कम तथा अस्वाभाविकता अधिक है।

भारतेन्दु युग में हास्य लेखकों की जो एक बाढ़ आ गई थी वह द्विवेदी युग में क्षीण हो गई। द्विवेदी जी गम्भीर व्यक्ति थे और उनके युग के साहित्य में इसका प्रभाव स्पष्ट है। भाषा-परिष्कार, खड़ी बोली की स्थापना आदि विषयों में लोगों की शक्ति का व्यय अधिक हुआ। द्विवेदी युग में गम्भीरता छाई रही। द्विवेदी युग में व्यंग्य चित्रों का प्रचलन अवश्य हुआ। उस युग की पत्र पत्रिकाओं में "आज" की "अरबी न फारसी", "संसार" की "छेड़छाड़" या "देशदूत" की "भंग की तरंग" न थी। हिन्दी जनता में पठन का प्रचार बहुत कम था। शिक्षित वर्ग अंग्रेजी पत्र का ही ग्राहक था। ऐसी परिस्थितियों में हिन्दी पत्रिकाओं को विशेष आकर्षक तथा रोचक बनाना अनिवार्य था। द्विवेदी जी को आधुनिक "बेधड़क" या "चोंच" की प्रतिभा नहीं मिली थी। वे सरस्वती में निम्नकोटि की सामिग्री जाने भी नहीं देना चाहते थे। उनका लक्ष्य था हिन्दी पाठकों की रुचि का परिष्कार। हिन्दी में ध्येय-पूरक वस्तु न पाकर उन्होंने संस्कृत का आश्रय लिया। "मनोरंजक-श्लोक" खण्ड के अन्तर्गत संस्कृत के मनोरंजक एवं उपयोगी श्लोक नियमित रूप से भावार्थ सहित प्रकाशित होने लगे।

केवल मनोरंजक श्लोकों को ही पाठकों की तृप्ति का अपर्याप्त साधन समझ कर द्विवेदी जी ने यथावकाश "विनोद और आख्यायिका" खंड का समावेश किया। "हँसी-दिल्लगी" खंड की एक-वर्षीय योजना सम्भवतः स्वरचित "जम्बुकी न्याय", "टेसू की टाँग" और "सरगौ नरक ठेकाना नाहिं" को विशेष महत्व देने और उनके व्यँग्य तथा आक्षेप की अप्रिय कटुता को सह्य बनाने के लिए ही की गई थी। ऐसा भी हो सकता है कि यह खंड प्रयोग रूप में समाविष्ट किया गया है परन्तु लेखकों और पाठकों की अरुचि के कारण बन्द कर दिया गया हो।

"द्विवेदी-युग" में हास्य की कमी पड़ गई। मिश्र जी (प्रताप नारायण) की भाँति सजीव तथा घर फूँक तमाशा देखने वाले लेखक इस समय नहीं रह गये थे। संघर्ष इस युग में बहुमुखी हो चला। फलतः लेखकों की प्रतिभा भी अनेक ओर बँट गयी थी। व्यंग्य का प्रयोग अब उतना अधिक न रह गया जितना भारतेन्दु-युग में था। तब भी हास्य रस के छींटे यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। द्विवेदी जी स्वयं पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वालों से चिढ़ते थे। ऐसे लोगों को आलम्बन बना कर उन्होंने "कल्लू अल्हैत" नाम से "सरगौ नरक ठिकाना नाहिं" शीर्षक व्यंग्य लिखा है—

"अचकनु पहिरि बूट हम डॉटा, बाबू बनेन डेरात डेरात,
लागे न जावे जाय समझ माँ, कण्ठु फूट तब बना बतात।
जब तक हमरे तन माँ तनिकौ, रहा गाँउ के रस का अंसु,
तब तक हम अखबार किताबें, लिख लिख कीन उजागर बंसु।"[1]

द्विवेदी जी ने अन्योक्ति के माध्यम से भी व्यंग्य की सृष्टि की—

"हरी घास खुरखुरी लगै अति, भूसा लगै करारा है,
दाना भूलि पेट यदि पहुँचै, काटै अस जस आरा है।
लच्छेदार चीथड़े कूड़ा, जिन्हें बुहार निकारा है,
सोई सुनो सुजान शिरोमणि, मोहन भोग हमारा है॥"[2]

इसमें उन सम्पादकों को जो रद्दी चीज़ों को छाप कर जनता की मनोवृत्ति बिगाड़ते थे और सुन्दर रचनाओं को लौटा देते थे, आलम्बन बनाया गया है। सत्साहित्य को हरी घास की उपमा तथा गन्दे साहित्य को, भैसे की उपमा देकर अन्योक्ति को सुन्दर रूप से निबाहा गया है।

द्विवेदी युग के हास्य कवियों में नाथूराम "शंकर" का विशिष्ट स्थान है। शंकर जो आर्य समाजी थे। वे अन्ध विश्वास के कट्टर विरोधी थे। उनके पास विरोध प्रदर्शन का अस्त्र था, व्यंग्य। ब्राह्मणों को आलम्बन बना कर उनका लिखा एक व्यंग्य यह है—

"ठेके पर लेकर वैतरणी देकर दाढ़ी मूँछ,
वाटर बाईसिकल के द्वारा बिना गाय की पूँछ;

---

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिंह, पृष्ठ १८०.
२. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिंह, पृष्ठ १८१.

"पहिले बिके धर्म पर
फिर बिके शील पर
रूप पर मध्य युग में बिके—
बिकना तो अपनी परम्परा है।
आज इस संकट की बाढ़ में
जब कहीं धर्म नहीं
शील नहीं
रूप नहीं,
हार कर हम बिके चाँदी के टुकड़ों पर ;
हम प्रसन्न,
हम कृत कृत्य हैं
हमने अपने पुरखों का आन
अक्षुण्ण रक्खी है !!"

विजयदेव नारायण साही की "माड, चमगादड़ और मैं" शीर्षक कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस कविता के माध्यम से इन्होने विभिन्न काव्य रूपों की पैरोडी की है। अवधी भाषा में इसका रंग देखिए—

"मुल अबतो माड चली आओ
मुल घिर्ररउआ केर बगैचा में,
हम घण्टन ताकेन टुकुर-टुकुर
डर लागै गजब अंधेरिया में,
मुल होय करेजा धुकुर-धुकुर
ई रात माघ कै जस पाला,
ददई ई कौन भई साँसत
का कही कुलच्छन आँख लड़ी,
कल जिउ न जाय खाँसत-खाँसत !
हम ठाढ़े इहाँ सुभीते से—
घर भर को छाँड़ चली आवो,
मुल अब तो मॉड चली आवो।"

आधुनिक व्यंग्य लेखकों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मनोहर प्रभाकर, लक्ष्मीकांत वर्मा तथा केशव चन्द्र वर्मा प्रमुख हैं। इनके हास्य में बौद्धिकता का प्रमुख स्थान है। हास्य-काव्य को इन कवियों ने नई दिशा में मोड़ा है, एक

गति दी है। केशव चन्द्र वर्मा की एक हास्य-कविता का एक अंश देखिए जिसमें वे धोख में अपनी 'शार्ट साइटेड' प्रेयसी से प्रणय निवेदन किये चले जाते हैं—

"जब-जब मैंने कनफुसकियों में
पार्क की बेंच पर साथ बैठ
गुनगुनाया।
'हाय प्रिया ! तूने तो जिया लिया।
तब तब तुम बराबर ही मुस्कराती ही रहीं
हाय राम !
तब मैं कहाँ जानता था कि—
यह मुसकराना
तो सिर्फ शिष्टाचार है !
तुम तो 'शार्ट साइटेड' हो !
और
काफी ऊँचा सुनती हो !"

बम्बई के भरत व्यास की हास्य कविताओं का संकलन 'ऊँट सुजान' के नाम से प्रकाशित हुआ है। हास्य के उन कवियों में जिनके संकलन प्रकाशित नहीं हुए हैं उनमें बालमुकुन्द चतुर्वेदी रामलला, कृष्णगोपाल शर्मा, बाबूराम-सारस्वत, चिरंजीत, गोपालकृष्ण कौल, विनोद शर्मा, देवराज 'दिनेश', राधे-श्याम शर्मा 'प्रगल्भ', परमेश्वर 'द्विरेक', चोंच अलीगढ़, गंगासहाय 'प्रेमी', राजेष दीक्षित, शांति सिंघल, प्रमुख है। श्री रामनारायण अग्रवाल का भी आधुनिक हास्य रस लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान है।

कहानी

हास्य रस के कथा साहित्य में मोहन लाल गुप्त "भैया जी बनारसी" का संकलन "मखमली जूती" उल्लेखनीय है। कहानियों की विषय-वस्तु सामा-जिक एवं राजनैतिक विषमताएँ हैं। भाषा विषय के अनुकूल है। शिल्प की दृष्टि से भी सभी कहानियाँ उत्कृष्ट बन पड़ी हैं। "महिला-शासन" चिरंजी-लाल पाराशर की हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण कहानियों का संकलन है। "शरियत का शास्त्र", "नीली साड़ी" एवं 'प्यार का बुखार" इस संकलन की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। इसमें स्थितियाँ अत्यन्त मनोरंजक है। श्री अलबर्ट अली के "ऊँट-पटाँग" संग्रह में स्थिति-जन्य हास्य का अच्छा परिपाक हुआ है। इसकी शैली ऊटपटाँग

ढंग की है। हास्य का उभार स्वाभाविक नहीं हो पाया; यत्नज है। स्वर्गीय बल्देवप्रसाद मिश्र के दो कहानी-संग्रह प्रकाश में आये हैं। प्रथम है "उलूक तंत्र" तथा द्वितीय है "मौलिकता का मूल्य"। हास्य के सृजन के लिए 'स्वप्न' का सहारा स्थान-स्थान पर लिया गया है। "मालिश" एवं "प्रोफेशनल" इस संग्रह की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। हास्य शिष्ट एवं परिष्कृत है। "अमृतराय" के "हाथी के दाँत" में राजनैतिक एवं सामाजिक विषमताओं पर श्रेष्ठ कहानियाँ संग्रहीत हैं। इनमें ढोंगियों की तथा पाखण्डियों की कलई खोली गई है। "उग्रसेन नारंग" का "आह बकरा" भौंड़े हास्य की कहानियों का संग्रह है। इसका हास्य मुँहफट है। अशिष्ट एवं निम्नस्तरीय उपहास सर्वत्र व्याप्त है। धर्मदेव चक्रवर्ती का कहानी संग्रह "कंगला और बंगला" उत्कृष्ट कोटि की हास्य-रस की कहानियो का सुन्दर संग्रह है। कहानियाँ कलापूर्ण एवं तरल हास्य से पूर्ण है।

निबन्ध

मोहन लाल गुप्त 'भैया जी बनारसी" के विनोदपूर्ण लेखों का संग्रह "बनारसी रईस" नाम से प्रकाशित हुआ है। "असत्य के प्रयोग", "खुशामद करिये", "बीबियाँ" शीर्षक लेखों में हास्य का सृजन उत्कृष्ट हुआ है। शैली विषय के सर्वथा अनुकूल है। हास्य स्वाभाविक है। "खुशामद करिये" शीर्षक लेख का एक अंश देखिए—

"खुशामद कोई बुरी चीज नहीं। अपनी तारीफ़ न कर दूसरों की प्रशंसा करना, अपने को नगण्य समझ दूसरों को बड़ाई देना आपके हृदय की महाशयता और महानता प्रगट करेगा। आप खुशामद नहीं कर सकते—इसका मतलब है आप दूसरों से खुशामद करवाना चाहते हैं। अपने को इतना ऊँचा समझते हैं कि दूसरे लोग आकर आप के पैर चूमें, आपकी प्रशंसा के गीत गायें। समझदार लोगों की राय है कि शिखर पर पहुँचने के लिये नीची सीढ़ी से चढ़ना चाहिए, इसलिए घमण्ड और गरूर को ताक पर रखकर मेरी बात मानिये—खुशामद करिये।"

श्री वासुदेव गोस्वामी कृत "बुद्धि के ठेकेदार" में उनके विनोदपूर्ण निबन्धों का संग्रह है। लेखों की भाषा दुरुह है। हास्य शब्द-जन्य है। यत्न करके हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। हास्य का सहज उभार नहीं है।

श्री हर्षदेव मालवीय के हास्य पूर्ण लेखों का संकलन "ढुलकते इक्के पक्के आम" में सामयिक विषयों पर मृदुल व्यंग्य कसे गये हैं।

श्री तिलक 'खानाबदोश' के हास्यपूर्ण निबन्धों का संकलन "बीबी के लेक्चर" के नाम से प्रकाश में आया है। लेखक उर्दू शायरी एवं उर्दू शैली से अधिक प्रभावित है। पारवारिक समस्याओं पर अच्छे व्यंग्य हैं। सस्ते प्रेम, नेतागीरी आदि समस्याओं को आलम्बन बनाया गया है। "वरना हम भी आदमी थे काम के" शीर्षक लेख का यह अंश देखिए—

"आखिर हम कोई वाजिदअली शाह तो थे नहीं, जो इन सब के नाज़ उठाते। न दिल को 'लेबोरेटरी' बनाना चाहते थे और उसका "पोस्टमार्टम" कराते भी डर लगाता था। वह इसलिये कि एक तो "सइयाँ दिल लेगए बटुवे में" वाले भजन से ही हमें दिल की कीमत का कुछ-कुछ अंदाज़ हुआ। और दूसरे हम यह भी बख़ूबी समझने थे कि "बहुत शोर सुनते हैं पहलू में जिसका, जो चीरा, तो एक कतरए ख़ूँन निकला।"

नाटक

संस्कृत साहित्य में प्रहसन बहुत कम मिलते हैं। पाश्चात्य "कामेडी" के "पेटर्न" पर हिन्दी में भी हास्य-एकांकी तथा हास्य-नाटक लिखे जाने लगे है। पाश्चात्य "कामेडी" को हम हिन्दी में "कामेदी" नाम से यदि पुकारें तो असंगत न होगा। "प्रहसन" तो वास्तव में "अंग्रेजी साहित्य के 'फार्स' (Farce) का रूपान्तर है। प्रहसन में बिलकुल ऊटपटाँग घटनाएं एवं चरित्र होते हैं। भारतेन्दु कालीन हास्य-नाटकों एवं हास्य-एकांकियों को हम प्रहसन ही कहेंगे किन्तु आधुनिक-युग में "कामेडी" का सृजन भी यथेष्ट हुआ है। डा० रामकुमार वर्मा के सोलह "कामेडियों" का संग्रह "रिमझिम" नाम से प्रकाशित हुआ है। पारवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को लेकर इन हास्य-एकांकियों का गठन हुआ है। चरित्र चित्रण स्वाभाविक है। विशुद्ध हास्य का सफल सृजन हुआ है। हास्य- एकांकियों के क्षेत्र में "रिमझिम" का प्रकाशन मील के पत्थर के समान है।

रामनरेश त्रिपाठी के "स्त्रियों की कौसिल" तथा "सीज़न डल है" व्यंग्य प्रधान हास्य-नाटक हैं। सेठ गोविन्ददास के तथाकथित हास्य-एकांकियों में हास्य के नाम पर नीरसता मिलती है। व्यंग्य भी तीखा है। "अधिकार लिप्सा", "वह मरा क्यों", "धोखेबाज", "चौबीस घण्टे", सेठ गोविन्द दास के उल्लेखनीय हास्य-एकांकी हैं।

उदयशंकर भट्ट प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार हैं। गम्भीर नाटकों एवं एकांकियों के सृजन के साथ-साथ जहाँ उन्होंने हास्य-प्रधान नाटक नाटिकाएँ लिखी हैं, वे भी उच्चस्तरीय स्थायी हास्य का सृजन करती हैं। "दस हज़ार", "गिरती दीवारें", "दो अतिथि", "नये मेहमान", एवं "वर-निर्वाचन" में सामाजिक विद्रूपताओं पर मृदुल व्यंग्य कसे गये हैं। शिष्ट एवं परिष्कृत हास्य के सृजन में भट्ट जी की हिन्दी साहित्य को यह अमूल्य देन है।

विष्णु प्रभाकर हिन्दी के यशस्वी नाटककार हैं। इनके हास्य-प्रधान नाटकों का प्रसारण आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रायः हुआ करता है। "काँग्रेस मैन बनो", "व्यंग्य", "भूख" तथा 'जीत के बोल" इनके प्रसिद्ध हास्य-रेडियो-रूपक हैं। "भूख" में एक पत्नी के होते हुए दूसरे विवाह करने के इच्छुक व्यक्तियों पर करारा व्यंग्य किया गया है। "पुस्तक-कीट" में विद्यार्थियों के रटने की आदत का मज़ाक बनाया गया है। "सरकारी नौकर" में क्लर्क जीवन पर सहानुभूतिपूर्ण व्यंग्य है। विष्णु प्रभाकर हास्य-एकांकियों के सृजन करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, सरल भाषा एवं स्थायी प्रभाव डालने में इनके एकांकी उच्च कोटि के हैं।

प्रभाकर माचवे ने भी इस क्षेत्र में यथेष्ट यश अर्जित किया है। "अदालत के पास होटल", "गली के मोड़ पर" तथा "यदि हम वे होते" उनके श्रेष्ठ हास्य-नाटक हैं। जयनाथ "नलिन" के "लोमड़ियों का शिकार" "लखनवी बहादुर" "नवाब का इसराज़" उत्कृष्ट हास्य प्रधान एकांकी हैं।

उपन्यास

हास्य-रस प्रधान उपन्यासों की हिन्दी में बहुत बड़ी कमी है। राधाकृष्ण के "सनसनाते सपने" में हास्य निर्जीव है। चरित्र-चित्रण भी अस्वाभाविक हो गया है। परिस्थितियों का निर्माण ठीक नहीं हो पाया।

उर्दू-लेखक कृष्णचन्द्र का "एक गधे की आत्मकथा" उच्चस्तरीय राजनैतिक व्यंग्य-प्रधान उपन्यास है। लेखक ने आधुनिक समाज एवं राजनीति के विकृत अंगों पर करारी चोट की है। समाज एवं राजनीति में फैली भ्रष्टाचारिता एवं अराजकता पर गहरे व्यंग्य किये गये हैं। आधुनिक फैशन-ग्रस्त नारी समाज की धन लोलुपता, दफ्तरों की लालफीताशाही का भी पर्दाफाश लेखक ने अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। भाषा मुहावरेदार एवं प्रसाद- गुण युक्त है। कहीं कहीं पर हास्य 'मुंहफट' हो गया है यथा गधे का नेहरू जी के यहाँ इंटरव्यू को जाना। उनकी बातचीत देखिए—

गधे ने नेहरूजी से कहा, "ग्रापसे पन्द्रह मिनट के लिए एक इंटरव्यू चाहता हूँ। कहीं ग्राप इसलिए इंन्टरव्यू इनकार न कर दें कि मै एक गधा हूँ।"

पंडित जी हँस कर बोले, "मेरे पास इन्टरव्यू के लिए एक से एक बड़ा गधा ग्राता है, एक गधा ग्रौर सही। क्या फ़र्क पड़ता है। शुरू करो।" यदि इसमें एक "वाद" विशेष के सिद्धान्तों के प्रचार की गन्ध न होती तथा केवल कलात्मक ग्रभिव्यक्ति ही लेखक का उद्देश्य होता तो यह उपन्यास प्रथम श्रेणी का हास्य-रसपूर्ण उपन्यास हो सकता था। ग्रतिरंजित परिस्थितियों एवं ग्रस्वाभाविक घटनाग्रों ने इस उपन्यास को नीचे ढकेल दिया है। बीच-बीच में कई कार्टूनों की छटा उपन्यास को मनोरम बनाती है।

'मोहब्बत, मनोविज्ञान ग्रौर दाढ़ी मूंछ', केशवचन्द्र वर्मा का उच्च-स्तरीय हास्य-प्रधान उपन्यास है जो कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

भगवती चरण वर्मा का "ग्रपने खिलोने" हास्य-रस प्रधान उपन्यासों में ग्रपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह कहना ग्रतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि हिन्दी में ग्रब तक के हास्य-रस प्रधान उपन्यासों में यह सर्वश्रेष्ठ है। चरित्रचित्रण, कथानक का विकास, परिस्थितियों का गठन, भाषा की मँजा-बट एवं सामयिक समाज के यथार्थ चित्रण में यह उपन्यास ग्रद्वितीय है। यदि हिन्दी हास्य के उपन्यासों में "वुड हाउस" तथा "वाल्तयर" के उपन्यासों के समकक्ष किसी उपन्यास को रख सकते है तो वह है "ग्रपने खिलौने"।

ग्रनुवाद

"दास्तवस्की" के प्रसिद्ध हास्य-पूर्ण उपन्यास का ग्रनुवाद "हिज़ एक्सेलेन्सी" के नाम से उपेन्द्रनाथ 'ग्रश्क' ने किया है। हास्य-रस के मराठी के सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखकों की कहानियों का संकलन 'ऐप्रिल फूल' के नाम से हिन्दी साहित्य में ग्राया है। मैथिली में लिखे गये ईशनाथ झा के लोकप्रिय हास्य-नाटक "चीनी-लड्डू" का ग्रनुवाद परमानन्द झा ने "चीनी के लड्डू" के नाम से किया है। इसमें एक ग्रादर्श संयुक्त परिवार में फूट डाल कर उसके सत्यानास करने की कथा है।

ग्रालोचना

हास्य-रस के शास्त्रीय विवेचन एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से प्रो० जगदीश पांडे का ग्रन्थ "हास्य के सिद्धान्त तथा मानव में हास्य" महत्वपूर्ण है। श्री प्रेमनारायण दीक्षित तथा श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित

द्वारा लिखी हुई "हास्य के सिद्धांत तथा आधुनिक हास्य साहित्य" भी उल्लेखनीय है। पाश्चात्य विचारकों के सिद्धांतों के स्पष्ट उद्घाटन की दृष्टि से डा० एम० पी० खत्री का ग्रन्थ "हास्य की रूप रेखा" उच्च कोटि का है। इसमें हास्य के सिद्धांतों का विवेचन एवं विश्लेषण पांडित्यपूर्ण ढंग से हुआ है। हास्य लेखक जी० पी० श्रीवास्तव के सिद्धान्त-विषयक लेखों का तथा भाषणों का संग्रह "हास्य-रस" के नाम से प्रकाशित हुआ है जो उनके हास्य-सम्बन्धी विचारों का द्योतक है। मराठी के विद्वान स्व० न० चि० केलकर के "हास्य आणि विनोद," का हिन्दी रूपान्तर प्रसिद्ध विद्वान श्री रामचन्द्र वर्मा द्वारा "हास्यरस" (द्वि० सं०) के नाम से हुआ है। विवेचन की गहराई तथा विश्लेषण की स्पष्टता की दृष्टि से यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट है।

उपसंहार

उपरोक्त विवेचन से इतना स्पष्ट है कि हास्य रस सम्बन्धी मौलिक एवं अनुवादित ग्रन्थों का सृजन हिन्दी में यथेष्ट मात्रा में हो रहा है। गुण की दृष्टि से भी अब यह निसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि हम हिन्दी के हास्य-सम्बन्धी कृतियों को किसी भी विदेशी अथवा प्रान्तीय भाषा की हास्य-कृतियों के समुन्नत गौरव के साथ रख सकते हैं।

अनुक्रमणिका

पुस्तक-सूची

लेखक-सूची

—:०:—